RNI No. MPHIN/2008/25073 डाक प्रेषण : प्रतिमाह की 7 तारीख डाक पंजीयन क्रमांक मालवा डिवीजन/324/2019-2021

AISECT™
GROUP OF UNIVERSITIES
India's Leading Higher Education Group

CHHATTISGARH | MADHYA PRADESH | JHARKHAND | BIHAR

The **AISECT Group of Universities** is India's leading higher education group whose mission is to establish world-class and affordable universities at locations that are in dire need of quality higher education. The Group's core ideology across all its higher education endeavors has been to groom its students into responsible, proficient and ethical professionals. With over three decades of unparalleled experience in skill development and job placement, the Group offers its students immense opportunities through its extensive industry linkages and expertise in entrepreneur development.

Awards & Accolades

Most Innovative University of Central India by News 18
RNTU awarded Madhya Pradesh Gaurav Samman 2018
ASSOCHAM INDIA Excellence in Education, Training & Development Award 2016
World Education Summit 2017 (Dubai)
World Education Summit 2016 (Dubai)
World Education Summit 2015 Award
NIELIT Award 2014
ASSOCHAM Excellence in Education Award 2014

32 Skill Courses in these skill-based universities

9 Centres of Excellence and Skills housed in the universities

15 International & 30 National Level collaborations
Huge in-house funding to promote research

State of Art Studio and Centre for e-Learning
Students from 23 states and 10 countries

First to establish IoT Lab by Frugal and Intel. Cloud Computing Lab by Microsoft

Where aspirations become achievements!
nirf INDIA RANKINGS 2017
AAA+ Ranking By Engineering Planning Survey 2017

Established Niti Aayog's prestigious Atal Incubation Centre

Over 1000 papers and 50 books published by faculty and students

Project Unnat Bharat awarded by MHRD

Excellent Hostel facility, canteen and sports facilities of international standard

Publication of 2 UGC Approved Copernicus Indexed Journals
A pool of 400+employers

Exclusive Campus Radio Channel 90.4 Radio AISECT
Microsoft Ed-Vantage Platinum Partnership Microsoft

Global University Linkages
• ICE WaRM (Australia) • University of SIGEN (Germany) • NCTU (Taiwan) • Rensselaer Polytechnic Institute (USA) • KAIST (South Korea) • KYIV University (Ukraine) • Tribhuvan University (Nepal) • Benaka Biotechnologies Inc. (USA) • Mol University Eldoret (Kenya)

Our Universities

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Ghhattisgarh, Bilaspur AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Approved by : AICTE | NCTE | BCI | AIU | Joint Committee : UGC | DEE | AICTE | Recognized by : UGC | A NAAC Accredited University

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY™
MADHYA PRADESH, BHOPAL (Formerly known as AISECT University)
AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Approved by : AICTE, NCTE, BCI, INC, M.P. PARAMEDICAL COUNCIL | Recognized by : UGC | Member of : AIU

AISECT UNIVERSITY™
JHARKHAND, HAZARIBAG AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Recognized by : UGC

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Bihar, Vaishali AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Recognized by : UGC

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Madhya Pradesh, Khandwa AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Recognized by : UGC Approved by : MP. Govt.

AISECT Group of Universities Headquarters :
RNTU Campus, Bhopal-Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, MP, India, Ph.: 0755-6766100, 6766113
Tel: +91-755-2499657, 3293214/16/72, 3207080, Fax: +91-755-2429096, Email: aisect@aisect.org, Web: www.aisect.org

For more information, call: **09893350135, 09993233374, 09113342042, 09827948482**

प्रेषक : मुकेश वर्मा (प्रधान संपादक)
'समावर्तन' (हिन्दी मासिक)
माधवी, 129, दशहरा मैदान
उज्जैन (म.प्र.) 456 010

पुस्त–प्रेष्य

यहां पते चिपकाएं

स्वामी, प्रकाशक और मुद्रक अजय भट्टाचार्य द्वारा आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन से मुद्रित एवं माधवी 129, दशहरा मैदान, उज्जैन से प्रकाशित। सम्पादक : श्रीराम दवे।

प्रकाशन की निरन्तरता का ग्यारहवाँ वर्ष
131 वाँ अंक

ISSN - 2348-8638

समावर्तन

वर्ष 11 ■ अंक 11 ■ पूर्णांक 131 ■ फरवरी 2019 ■ ₹ 60/– (व्यक्ति) ₹ 150/– (संस्था) मासिक पत्रिका

काव्यराग - 16

(कविता केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ)
काव्यभूमि : श्रीराम दवे
इस बार प्रदीप मिश्र की कविताएँ और उनका आत्मकथ्य
रानी श्रीवास्तव की कविताएं
जगदीशचंद्र पण्ड्या अक्स की ग़ज़लें और
सूर्यप्रकाश मिश्र के गीत

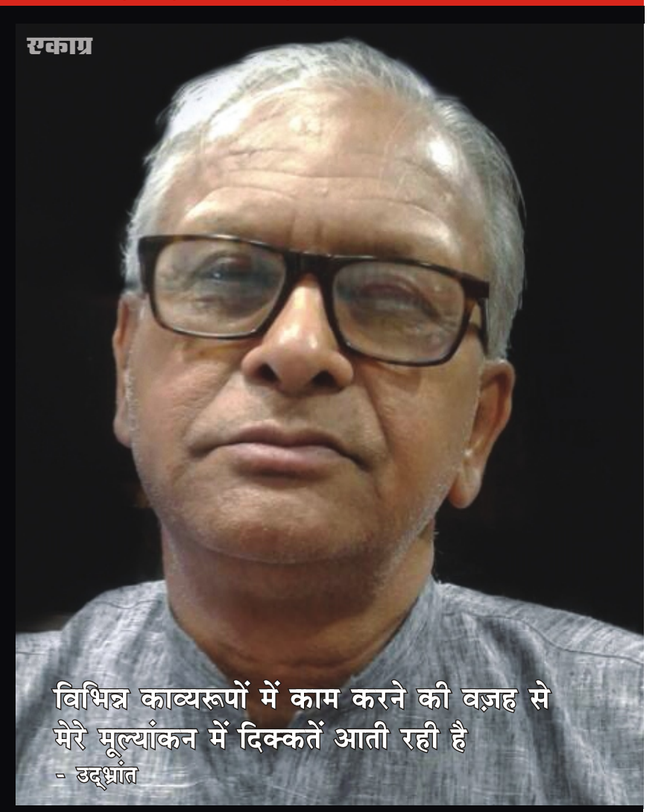

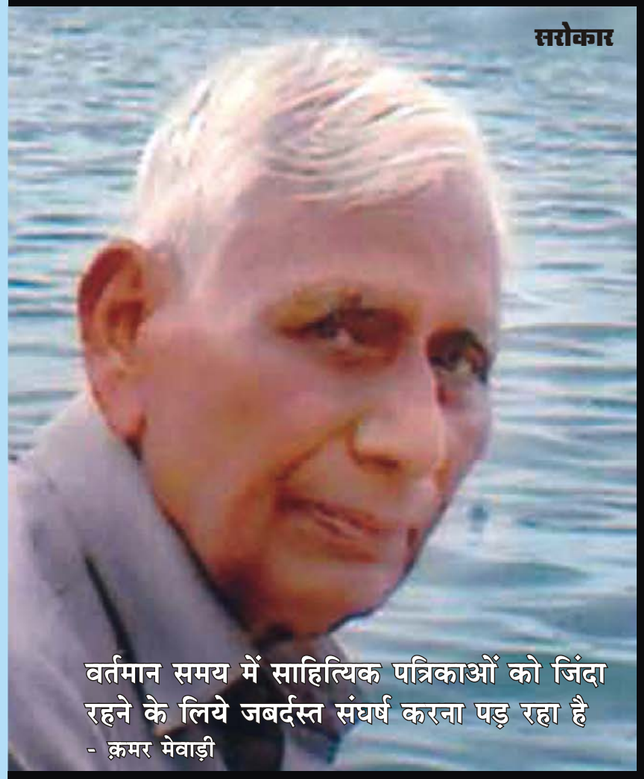

अभिमुख : रमेश दवे
अनन्तिम : मुकेश वर्मा
मेरा नमन : अजय भट्टाचार्य
रेखांकित : प्रदीप सैनी की कविताएँ
चयन : निरंजन श्रोत्रिय
कहानी : पीली तितलियाँ : रजनी मोरवाल
प्रथम पृष्ठ, वीक्षा, साहित्यिक हलचल

घरोंदे - 6 (लघुकथा केन्द्रित द्वैमासिक स्तम्भ)
चयन : वाणी दवे शर्मा

प्रतिश्रुति : 'दस्तावेज पत्रिका पर धारावाहिक आलेख
अभिषेक कुमार गौड़

समकाल-कथाकाल
कहानी : सपने और नियति : सुषमा मुनीन्द्र
चयन : मुकेश वर्मा
शख़्सियत : व्यंग्य में शालीनता के पक्षधर सूर्यकांत नागर
हरीशकुमार सिंह

ISSN - 2348-8638

वर्ष 11 ■ अंक 11 ■ पूर्णांक 131 ■ फरवरी 2019 ■ रू. 60/- (व्यक्ति) रू. 150/- (संस्था)

समावर्तन

मासिक पत्रिका

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नयीदिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त
दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय भोपाल द्वारा कमलेश्वर पुरस्कार वर्ष -2010
महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त

सम्पादक मण्डल

संस्थापक : सम्पादन समन्वयक
प्रभातकुमार भट्टाचार्य, उज्जैन

अध्यक्ष : सम्पादक मण्डल
रमेश दवे, भोपाल
मो. 94065 23071

निदेशक प्रबन्धन
रमेश सोनी, इन्दौर
मो. 99264 97611

प्रधान सम्पादक
मुकेश वर्मा, भोपाल
मो. 94250 14166

मुख्य सम्पादक
निरंजन श्रोत्रिय, गुना
मो. 98270 07736

सम्पादक
श्रीराम दवे, उज्जैन
मो. 94259 15010

कार्यकारी सम्पादक
हरीशकुमार सिंह, उज्जैन
मो. 94254 81195

प्रबन्ध सम्पादक
सदाशिव कौतुक, इन्दौर
मो. 98930 34149

कला सम्पादक
अक्षय आमेरिया, उज्जैन
फो. 0734 2561120

जनसम्पर्क अधिकारी
प्रकाश बांठिया, उज्जैन
मो.98260 69558

सह सम्पादक
राजीव शुक्ला (संस्कृति), इन्दौर
निवेदिता वर्मा (सरोकार), उज्जैन
राधेश्याम मिश्र (प्रबन्ध), उज्जैन

सहायक सम्पादक
वाणी दवे शर्मा, हरदीप दायले, उज्जैन

कार्यालय सहायक
संजय मालवीय,उज्जैन

सम्पादक मण्डल के सभी पद अवैतनिक है।

सम्पादकीय : प्रकाशकीय कार्यालय
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010
फोन : 0734 2524457
(समय प्रातः 10 से 2 बजे तक)
ईमेल : samavartan@yahoo.com
वेबसाइट : www.samavartan.com

सह संस्थापक : सम्पादन परामर्शी
अभिलाष भट्टाचार्य, मुम्बई

मुख्य संरक्षक
संतोष चौबे, भोपाल

संरक्षकद्वय
ओम अमरनाथ, उज्जैन
राजू पटेल, मुम्बई

परामर्श मण्डल
गिरिराज किशोर (कानपुर), रश्मि वाजपेयी (दिल्ली), नन्दकिशोर नौटियाल (मुम्बई), विश्वनाथ सचदेव (मुम्बई), सादिक (दिल्ली), मंजु तिवारी (भोपाल), उर्मिला शिरीष (भोपाल), महेन्द्र गगन (भोपाल), सत्यमोहन वर्मा (दमोह)

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक
डॉ. अजय भट्टाचार्य, सूरत

समावर्तन का मूल्य
व्यक्तिगत सदस्यता प्रति अंक : 60 रु. वार्षिक : 600/- संस्थागत प्रति अंक 150/- वार्षिक 1500/-
विदेश के लिए प्रति अंक : 10 $ वार्षिक : 100/- $

चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखें तथा चेक अथवा मनिआर्डर निम्नलिखित पते पर भेजें
डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान, उज्जैन (म.प्र.) 456010

समावर्तन का संचालक मण्डल
प्रनति भट्टाचार्य - अध्यक्ष, उज्जैन
कृष्णा बैनर्जी - संचालक, मुम्बई
तुहिन भट्टाचार्य - प्रबंध संचालक,सूरत

विशेष सम्पादक- वक्रोक्ति
सूर्यकान्त नागर, इन्दौर मो. 98938 10050

विशेष सम्पादक- नाट्यराग
भारतरत्न भार्गव - नयीदिल्ली, मो.98116 21626

विशेष परामर्शी - घरोंदे
प्रतापसिंह सोढ़ी, इन्दौर, मो.94795 60623

विशेष परामर्शी -लोकराग
शिव चौरसिया, उज्जैन, मो. 97700 78000

निदेशक - समावर्तन संकुल (प्रतिनिधि मण्डल)
प्रकाश रघुवंशी, उज्जैन, मो. 94250 91114

विशेष सम्पादक- साहित्य विचार
शैलेन्द्रकुमार शर्मा, उज्जैन मो. 98260 47765

दिल्ली ब्यूरो चीफ
परवेज़ अहमद
219, समाचार अपार्टमेन्ट मयूर विहार फेज़-1
दिल्ली-110054, मो. 098111 -54371

मुद्रणालय : आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.)

© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से 'समावर्तन' का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद उज्जैन न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

समावर्तन

फरवरी -2019

इस अंक में

प्रथम पृष्ठ : भूखे ही नहीं मरते संसार में : मुरलीधर चाँदनीवाला 05

अभिमुख : सांस्कृतिक देश साम्प्रदायिक क्यों ? : रमेश दवे 06

मेरा नमन : इनसे मिलिये : अजय भट्टाचार्य 07

सरोकार

उद्‌भ्रांत

परिचय : उद्‌भ्रांत : 08

आत्मकथ्य : उद्‌भ्रांत : 09

उद्‌भ्रांत की कविताएँ : 10

कहानी : वर्ग-भेद : 12

काव्य नाटक : एक भयानक शब्द : उद्‌भ्रांत : 14

उद्‌भ्रांत के कृतित्व पर लेखकों के विचार : 14

साक्षात्कार : उद्‌भ्रांत से अविनाश मिश्र की बातचीत : 17

चित्रों में उद्‌भ्रांत जी : 35

एकाग्र

क़मर मेवाड़ी

परिचय : क़मर मेवाड़ी : 25

आत्मकथ्य : क़मर मेवाड़ी : 26

क़मर मेवाड़ी की चार कविताएँ : 28

कहानी : ऊंचे क़द का आदमी : 29

मित्रों की दृष्टि में क़मर मेवाड़ी : 30

साक्षात्कार : क़मर मेवाड़ी की माधव नागदा से बातचीत : 32

चित्रों में क़मर मेवाड़ी : 38

रेखांकित : प्रदीप सैनी कविताएँ : चयन : निरंजन श्रोत्रिय : 21

समकाल-कथाकाल : सुषमा मुनीन्द्र की कहानी : सपने और नियति : चयन : मुकेश वर्मा : 39

शख़्सियत : व्यंग्य में शालीनता के पक्षधर - सूर्यकांत नागर : हरीश कुमार सिंह : 44

काव्यराग-16

(समावर्तन के अधबीच काव्य केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तंभ) 45-56

कहानी : पीली तितलियाँ : रजनी मोरवाल : 57

घरोंदे-6 लघुकथाओं पर केंद्रीत द्वैमासिक स्तम्भ , इस बार गरिमा संजय दुबे की लघुकथाएँ : चयन : वाणी दवे शर्मा : 60

प्रतिश्रुति : 'दस्तावेज' पत्रिका पर विशेष : अभिषेक कुमार गौड़ : 63 वीक्षा : बी.एल.आच्छा, रेशमी पाण्डा मुखर्जी : 66

साहित्यिक हलचल : 68, अनंतिम : मुकेश वर्मा : 70

अक्षर विन्यास : विवेक शर्मा * मुद्रण संशोधक : गरिमा दवे

प्रथम पृष्ठ

भूखे ही नहीं मरते संसार में

''केवलाघो भवति केवलादी''। जो अकेला खाता है, वह पाप खाता है, इतना उत्तेजक वाक्य देने वाला दानसूक्त ऋग्वेद के महासागर में अलग से पहचान में आता है। इस सूक्त में भिक्षु ऋषि ने उन धनी मित्रों की जमकर भर्त्सना की है,जो अपनी सुख- सुविधाओं से बाहर निकलने का कष्ट नहीं उठाते। ऋषि प्रशंसा करता है उनकी,जो अपना यत्किञ्चित् धन भी लुटा देते हैं उन पर,जो भूखे हैं, याचक हैं, असहाय हैं ।

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरूताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते॥

ऋग्वेद : दानसूक्त,10.117.1

भूखे ही नहीं मरते संसार में
मरते तो वे भी हैं, मित्र !
जो पेट भर जीमते रहते हैं अकेले ।
बाँट कर खाते -पीते, तो ठीक था ।
अकेले पेट भरते रहे अपना
तो हुआ क्या? मर तो वे भी रहे हैं ।।1।।

द्वार पर खड़ा हुआ भूखा
मांग रहा दो रोटियाँ,
तुम अनदेखा कर बैठे घर में
अपनी थाली सजाकर ।
मुँह में निवाला लेते हुए
मन में हुआ नहीं कुछ।।2।।

घर आये याचक को कुछ दे देते,
दुर्बल को देते थोड़ी सी शरण,
तो तुम अपने में ही ऊपर उठ जाते,
निर्वैर भाव से होते अपने ही सहायक।।3।।

वह मित्र कहलाने योग्य नहीं
जो सुख-दुःख में साथ नहीं होता ।
उसका घर तो घर ही नहीं,
साथ दे,तो पराया भी अपना है।4।।

'ना' बोलने से पहले
देख लो जीवन का लम्बा पथ ।
धन तो रथ के चक्र की तरह
आता, जाता ऊपर-नीचे ।
आज है तुम्हारे पास
चला जायेगा कल कहीं और।।5।।

व्यर्थ है अन्न के भंडार,
सच कहता हूँ,
जमाखोरी ही तुम्हारी मृत्यु है।
न राजा के काम आये तुम, न अपनों के।
अकेले खाने वाले तुम
पाप ही खाते रहे जीवन भर।।6।।

भूमि को जोतते हुए हल की लकड़ी
अच्छी है पड़ी हुई लकड़ियों से,
अपने पाँव चलता हुआ पथिक
अच्छा है सोये हुए लोगों से,
ज्ञानी अच्छा है अज्ञानियों से,
उदार निर्धन अच्छा है अनुदार धनी से।।7।।

थोड़े धन वाला देता है दोनों हाथों से
उससे कुछ बड़ा धनी
खींच लेता है हाथ कभी- कभी,
बड़े सम्पत्तिशाली मुट्ठी बाँधे हुए
देखते रह जाते
विशाल हृदयों के उदार चरित।।8।।

दोनों हाथ एक जैसे नहीं होते,
दाहिने हाथ की जगह
बायाँ हाथ नहीं ले पाता।
एक ही धेनु की बछियाएँ
एक जैसा दूध नहीं देती बड़ी होकर,
जुड़वाँ बच्चे एक जैसे नहीं होते,
सबकी वृत्तियाँ होती हैं अलग-अलग,
भावनाएँ भी अलग- अलग ।।9।।

डॉ.मुरलीधर चाँदनीवाला
मधुपर्क, 7, प्रियदर्शिनीनगर, रतलाम

सांस्कृतिक देश साम्प्रदायिक क्यों?

रमेश दवे

भारत की विश्व-छवि एक सांस्कृतिक देश की मानी जाती रही है। भारतीय साहित्य, संगीत और समस्त प्रकार की कलाएं देश की संस्कृति की प्रतीक रही हैं। हमने सदैव हमारे उस अतीत पर गर्व किया है जिसमें दुनिया का प्रथम और सर्वश्रेष्ठ साहित्य रचा गया है। अतीत को लेकर इसीलिए चीनी दार्शनिक कंफ्यूशस कहता था 'अतीत को जानो, अतीत को पहचानों।' भारत का अतीत-मोह कम नहीं है। आज हम अपने सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन एवं बौद्धिक-विमर्श में जितना अतीत का आभार प्रकट करते हैं, उतना वर्तमान का नहीं। टी.एस. जिसे अतीत की वर्तमानता कहता था, भारत उस अतीत के वर्तमान के गौरव-ग्राम में आज भी व्यस्त है। सांस्कृतिक आस्थाएं तो परम्परा रचती हैं और परम्पराएँ नित्य गतिमान रहकर हमें अतीत के साथ वर्तमान और संभावित भविष्य का भी बोध कराती है। हमारा अतीत उत्कृष्ट साहित्य, विश्व का प्रथम भाषाई व्याकरण, उत्कृष्ट राग- रागिनियों और वाद्यों के संगीत, श्रेष्ठ स्थापत्य, अजण्ता-बाघ आदि के गुफा-चित्रों, भीम-बैठका के आदिम शैल-चित्रों, दक्षिण भारत की सुरम्य मूर्तिकला और मंदिर गोपुरम शैली के साथ हमारे लोकाचारों से इतना सम्पन्न रहा है कि हमें अपना वर्तमान अतीत के समक्ष तुच्छ प्रतीत होता है।

भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि इतनी समावेशी रही है कि उसने समय-समय पर पड़ने वाले विदेशी प्रभावों को भी आत्मसात कर लिया। मुगलों के पूर्व से लेकर मुगल शासन के पतन तक जो फारसी साहित्य और गुम्बद-कला का स्थापत्य आया, सूफी संगीत आया और तदुपरान्त उर्दू में जो महान शइर हुए, ग़ज़ल, कव्वाली, मसनवी, मार्सिया आदि के नए छंद आए, उनसे हमें साहित्य में नई ऊर्जा और दृष्टि मिली। डच आए मगर ऐसा कुछ नहीं दे पाए जिसे हमं संजो कर रखते। फ्रेंच आए, अंग्रेजों से लड़े और अकेले पडुचेरी में सिमिट कर रह गए। अंग्रेजी शासक आए तो थे ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारी बनकर मगर राज कर गए डेढ़सौ साल से अधिक। अंग्रेजों से हम अपना सांस्कृतिक दामन सुरक्षित नहीं रख पाए। उन्होंने हमारी संस्कृतिक एकता भंग की, हमारी शिक्षा की देशजता का अपहरण कर दफ्तरी बाबू बनाने की पराधीन प्रणाली पैदा की, जाति-धर्म के आधार पर देश को तोड़ा और ब्रिटिश संसद में तो अनेक सांसदों ने यह आरोप लगाया कि अंग्रेज गवर्नर और वायसरायों ने अंग्रेजी-राज में अपना कर्त्तव्य ठीक से नहीं निभाया और भारत का ईसाईकरण करने से चूक जाने के वे अपराधी हैं। वे सिर्फ कमाने में लगए गए। शायद इसीलिए फ्रांस के लोग कहते रहे हैं कि इंग्लैण्ड इन ए कंट्री आफ शाप कीपर्स!

हमारी सर्व समावेशी संस्कृति के विघटन का अंग्रेजी काल से ही दुर्भाग्यपूर्ण प्रारंभ हुआ और वर्ष 1947 में आज़ादी के बाद जिस नए भारत का उदय हुआ वह खंडित भारत था। हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता का जो विष बीज अंग्रेजों ने बोया था उससे हिन्दुस्तान और पाकिस्तान मुल्क हो गए और 1971 के साथ तीसरा टुकड़ा बंगलादेश हो गया। यहाँ तक भी गनीमत है। आज हम विज्ञान, तकनीकी और विश्व-चेतना के समय में हैं। ऐसे में यदि देश में सांस्कृतिक सुगंध के बजाए साम्प्रदायिक दुर्गंध पैदा की जाती है तो यह देश के लिए अत्यन्त घातक होगी। अब इस देश में जन्म से मृत्यु तक रहने वाला हर व्यक्ति भारतीय नागरिक है फिर उसकी गति या धर्म कोई भी हो। जाति और धर्म की राजनीति से न केवल हमारा सांस्कृतिक कलेवर कलंकित होगा बल्कि हमारे राष्ट्रीय संवेदन को भी धक्का लगेगा। एक स्वतंत्र राष्ट्र में जो संवैधानिक शक्तियाँ जन को दी जाती हैं, उसी का परिणाम है कि हमारी जनता और व्यवस्था ने लोकतंत्र को जीवित रखा है। यदि अब ऐसा लगता है कि धर्म या मज़हब के नाम पर, क्षेत्र के नाम पर, पानी-बिजली, सार्वजनिक सुविधाओं के नाम पर भेदभाव होता है तो यह लोकतंत्र-विरोधी ऐसी राजनीति होगी जो देश को अस्थिर करेगी और भारत की छवि को धूमिल करेगी। साम्प्रदायिक सौहार्द्र हमारी मूल प्रवृत्ति है उसे हमें साम्प्रदायिक विकृति न बनने दें, यह दायित्व राजनेताओं, सरकारों, बौद्धिकों, साहित्यकारों आदि सब का है। इसे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और माँ कस्तूरबा गांधी के डेढ़सौ वें जन्म-वर्ष का संकल्प मानकर हमें अपनी सांस्कृतिक एकता को सम्प्रदायिकता के उन्माद से बचाना होगा।

इस अंक में वरिष्ठ कवि, गीतकार, कथाकार श्री उद्भ्रांत जी के सर्जक व्यक्तित्व पर 'एकाग्र' है तथा विगत पांच दशकों से राजस्थान के कांकरोली जैसे छोटे से शहर से 'संबोधन' जैसी महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका का संपादन कर रहे श्री क़मर मेवाड़ी के व्यक्तित्व पर 'सरोकार' संयोजित है। कविता केंद्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ 'काव्यराग' भी इस अंक को महत्त्वपूर्ण बना रहा है। समावर्तन के सुधी लेखकों, पाठकों, ग्राहकों एवं समस्त सहयोगियों को वसंतोत्सव की शुभकामनाएँ।

(अध्यक्ष, सम्पादक-मण्डल)
मो.94065-23071

इनसे मिलिये ....

डॉ.अजय भट्टाचार्य
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक 'समावर्तन'

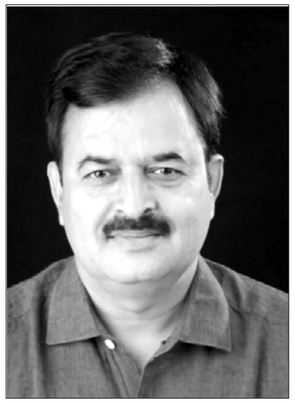

हरीशकुमार सिंह

समावर्तन परिवार में हाल ही में विधिवत रूप से शामिल किये गये डॉ.हरीशकुमार सिंह मेरे बाबा (डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य) के प्रिय हैं। एक व्यंग्यकार और संस्कृति सम्पन्न व्यक्तित्व के रूप में हरीश जी की सक्रियता को मैंने लगातार अनुभव किया है तथापि उनके बारे में समावर्तन के संपादक श्री श्रीराम दवे जी कुछ और भी बता रहे हैं -

हाल ही में म.प्र. संस्कृति परिषद-संस्कृति विभाग, भोपाल के प्रेमचंद सृजनपीठ उज्जैन का वर्ष 2016-17 के व्यंग्य के लिए 'कर्मभूमि सम्मान' से सम्मानित डॉ.हरीशकुमार सिंह जितने सौम्य और मितभाषी व्यक्तित्व के धनी है, उतने ही वे अपने लेखन और सांस्कृतिक साहित्यिक आयोजनों में सक्रिय और मुखर हैं। हिन्दी और अर्थशास्त्र विषयों में परास्नातक हरीश भाई एम.बी.ए. के साथ-साथ एल.एल.बी. और पी.एचडी. भी हैं। 'ये है इंडिया', 'लिफ्ट करा दे', 'सच का सामना', 'चुनिंदा व्यंग्य' जैसे चर्चित व्यंग्य संग्रहों, आंखों देखा हाल (हास्य व्यंग्य कविता संग्रह) तथा हास्य व्यंग्य के अखिल भारतीय आयोजन टेपा सम्मेलन पर 'टेपा हो गए टॉप', टेपा राग तथा टेपा यात्रा कृतियों का सम्पादन आपके सर्जक व्यक्तित्व को महत्त्वपूर्ण बनाते हैं।

भारतीय जीवन बीमा निगम में अधिकारी के रूप में अपनी उल्लेखनीय सेवाएँ दे रहे हरीश कुमार सिंह को यों तो कई संस्थाओं द्वारा समय-समय पर सम्मानित किया गया है किन्तु 'खेल मित्र' के रूप में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री द्वारा सम्मानित हरीश जी ने वर्षों तक खेल पत्रकारिता भी की है। अभी भी वे अपने नियमित लेखन और जीवन-बीमा निगम के दायित्वों का निर्वहन करते हुए भी अपने खेल प्रेम से विमुख नहीं है। समय-समय पर आकाशवाणी से खेल वार्ताओं के प्रसारण में उनकी भागीदारी और देश की गई पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनाओं का प्रकाशन उनकी सर्जनात्मकता का प्रमाण है।

समावर्तन के संस्थापक- सम्पादन-समन्वयक डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य द्वारा अगस्त 2018 में हरीश जी को समावर्तन का सह-कार्यकारी संपादक और बाद में अगले माह ही अर्थात सितम्बर 2018 में कार्यकारी संपादक का दायित्व देकर उनकी सर्जनात्मकता को मान्यता प्रदान की है। सही भी है, भाई हरीश कुमार सिंह अनन्त संभावनाओं से भरे व्यक्ति हैं। वे सदैव सक्रिय, मुखर और निर्विकार बने रहें- ऐसी मंगलकामनाएँ....

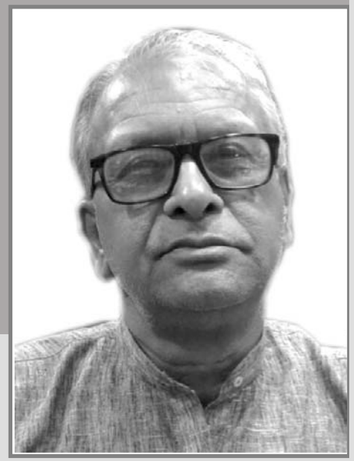

रमाकांत शर्मा 'उद्‌भ्रांत'

मूलतः आगरा (उ.प्र.) के एक प्रतिष्ठित सनाढ्य ब्राह्मण परिवार के वंशज कवि उद्‌भ्रांत का जन्म 4 सितम्बर, 1948 ई. को राजस्थान की विख्यात नगरी नवलगढ़में हुआ (प्रमाणपत्रों में जन्मतिथि है-छह मई, उन्नीस सौ पचास), जहाँ पिता पं. उमाशंकर शर्मा पोद्‌दार कॉलेज में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर थे। कुछ समय बाद ही उ.प्र. लोकसेवा आयोग से श्रम अधिकारी के रूप में चयनित होकर कानपुर आने और 1958 में वहीं स्थायी आवास बना लेने के कारण उनकी स्नातकोत्तर स्तर तक की अधिकांश शिक्षा-दीक्षा कानपुर में ही हुई। बाल्यावस्था से ही वहाँ के साहित्यिक बीज-संस्कार ग्रहण करते, सभी विधाओं में लेखन करते और देश की सर्वप्रमुख पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी और दूरदर्शन के माध्यम से सातवें दशक के प्रमुख नवगीतकार के रूप में उन्होंने पहचान बनाई। सातवें दशक के उत्तरार्ध से कहानियाँ लिखना प्रारम्भ करने के बावजूद उनका विलंब से प्रकाशन होने के कारण कथाकार के रूप में पहचान आठवें दशक के प्रारंभ में बनी। निजी व सरकारी दर्जन भर नौकरियाँ करने के बाद भारतीय प्रसारण सेवा, 1990 के पहले बैच के अधिकारी के रूप में दूरदर्शन के सहायक केन्द्र निदेशक के पद से कार्य प्रारम्भ करते हुए मैं, 2010 में दूरदर्शन के उप महानिदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुए। मध्य के ढाई वर्ष आकाशवाणी महानिदेशालय में भी वरिष्ठ निदेशक रहे। वर्ष 1992 में पुणे के विश्वविख्यात फिल्म एवं टेलीविजन प्रशिक्षण संस्थान से कार्यक्रमों के निर्माण का प्रशिक्षण लिया। प्रमुख गजलगो, समकालीन कविता के कवि, आलोचक, अनुवादक और प्रबन्धकाव्य रचयिता के रूप में भी प्रसिद्ध हुए। गीति कविताओं के संग्रह 'लेकिन यह गीत नहीं' पर हिन्दी अकादेमी, दिल्ली के 'साहित्यिक कृति सम्मान', नवगीत संग्रह 'देह चाँदनी' पर उ.प्र. हिन्दी संस्थान का निराला पुरस्कार, पुनः 'स्वयंप्रभा' पर वहीं के 'जयशंकर प्रसाद अनुशंसा पुरस्कार' (जिसे स्वीकारा नहीं) और समग्र लेखन के लिए वर्ष 1988 में शिवमंगल सिंह 'सुमन' पुरस्कार से सम्मानित। 'त्रेता' महाकाव्य पर वर्ष 2010 के लिए महाराष्ट्र का प्रतिष्ठित 'प्रियदर्शनी सम्मान' और 'अनाद्यसूक्त' पर मध्य प्रदेश सरकार की 'साहित्य अकादेमी' द्वारा वर्ष 2008 का 'अखिल भारतीय भवानी प्रसाद मिश्र' पुरस्कार। बाल-साहित्य लेखन के लिए वर्ष 1990 में अखिल भारतीय बाल-साहित्य परिषद, लखनऊ का 'बाल-साहित्य श्री' और वर्ष 2000 में 'भारतीय बाल कल्याण परिषद, कानपुर की ओर से वहाँ के मेयर द्वारा नागरिक अभिनंदन के साथ 'रतन लाल शर्मा स्मृति पुरस्कार', 'राधामाधव' (महाकाव्य) को वर्ष 2018 प्रथम 'गुरूदेव रवींद्रनाथ टैगोर अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मान' 2 जून, 2018 को रूस की राजधानी मास्को में दिया। ग़ज़लों का विख्यात गायकों द्वारा गायन। लम्बी छन्द कविता 'रूद्रावतार' को देश में असाधारण चर्चा मिली और अंग्रेजी सहित दर्जन भर भारतीय भाषाओं में अनूदित होकर हिन्दी की कालजयी कविताओं में परिगणित। 15 बालोपयोगी पुस्तकों सहित 100 से अधिक कृतियाँ प्रकाशित। विभिन्न विश्वविद्यालयों के अनेक शोध छात्रों ने कवि के विविध रचनाकर्म पर आधा दर्जन एम.फिल. एवं पी.एच..डी. की उपाधियां प्राप्त कीं। सृजन के विविध स्वरूपों के संदर्भ में आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के दिल्ली, मुम्बई, लखनऊ, भुवनेश्वर, जयपुर, भोपाल, इंदौर, मुजफ्फरपुर, पटना, वाराणसी, गोरखपुर और रामपुर केन्द्रों ने कवि को केन्द्र में रखकर साक्षात्कार, वृत्तचित्र, नृत्यरूपक आदि निर्मित किये जिनकी विशेष सराहना हुई। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के उनके द्वारा किये गए लोकप्रिय पुनर्सृजन 'प्रज्ञावेणु' पर दिल्ली दूरदर्शन ने 'प्रज्ञावेणु विमर्श' नामक एक घंटे की अवधि का कार्यक्रम भी किया। 'रूद्रावतार' के कथक एवं ओडिसी शैली में दो नृत्यरूपक क्रमशः दिल्ली एवं भुवनेश्वर केन्द्रों से तथा आकाशवाणी के दिल्ली, अंबिकापुर और रीवाँ केन्द्रों से संगीत प्रस्तुतियाँ की गईं।

प्रमुख पुस्तकें : 'त्रेता' एवं 'अभिनव पांडव' (महाकाव्य), 'राधामाधव' (प्रबन्ध काव्य), 'स्वयंप्रभा' एवं 'वक्रतुण्ड' (खण्ड काव्य), 'अनाद्यसूक्त' (आर्ष काव्य), 'ब्लैकहोल' (काव्यनाटक), 'प्रज्ञावेणु' (गीता का मुक्तछन्द में यथारूप पुनर्सृजन), 'अस्ति', 'इस्तरी', 'हँसो बतर्ज रघुवीर सहाय', देवदारू-सी लम्बी गहरी सागर-सी, 'शब्दकमल खिला है', ('नाटकतन्त्र तथा अन्य कविताएँ' (जिसका अंग्रेजी अनुवाद प्रो. आर.एन. आर्य ने किया The Farce of Democracy & other poems 'काली मीनार को ढहाते हुए' (सभी समकालीन कविताएं), 'लेकिन यह गीत नहीं', (नवगीत), 'मैंने यह सोचा न था' (गजल), पुस्तक का श्री रामप्रसाद शर्मा 'महर्षि' द्वारा रूपातंरित उर्दू संस्करण भी प्रकाशित, 'नक्सल' (लघु उपन्यास), 'डुगडुगी' (कहानियाँ), 'उद्‌भ्रांत : श्रेष्ठ कहानियाँ', 'कहानी का सातवां दशक' 'मेरी प्रगतिशील काव्य-यात्रा के पगचिह्न' (संस्मरणात्मक समीक्षा) तथा 'आलोचना का वाचिक' (वाचिक आलोचना), तथा 'आलोचक के भेस में' एवं 'मुठभेड' (आलोचना), 'समय के अश्व पर' (गीत-नवगीत), 'शहर-दर-शहर उमड़ती है नदी', 'स्मृतियों के मील-पत्थर' और 'कानुपर ओह कानपुर!' (संस्मरण), 'चंद तारीखें (डायरी), 'मेरे साक्षात्कार' (इंटरव्यूस्), 'ब्लैकहोल', 'अनाद्यसूक्त' और 'स्वयंप्रभा' के अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित, 'मैंने जो जिया' (आत्मकथा)।

आपने 'युग प्रतिमान' (पाक्षिक) साहित कुछ और पत्रिकाओं तथा कृतियों का संपादन भी किया है। सह रचनाकार के रूप में भी आपकी कई कृतियाँ चर्चित हुई है। आपकी कई महत्त्वपूर्ण कृतियों का विद्वान समीक्षकों ने न केवल मूल्यांकन किया है बल्कि विवेचनात्मक पुस्तकें भी लिखी है, जिनका पाठक समाज में स्वागत हुआ है।

स्थायी पता : 'अनहद', बी-463, केन्द्रीय विहार, सेक्टर-51, नोएडा-201303
दूरभाष : 0120-2481530, 09818854678, 8178910658 (मो.)
ईमेल : udbhrant@gmail.com

अपनी सामर्थ्य के दशमांश का भी उपयोग नहीं कर सका हूँ...

उद्‌भ्रांत

अपनी सृजन यात्राा के पांच दशक पूर्ण कर लेने के बाद यह सवाल आज मेरे सामने पूरी शिद्‌दत से मौजूद है कि आखिर इस सतत यात्राा ने मुझे कहाँ-पहुँचाया है ? मैं साहित्य के और जीवन के भी किस बिन्दु पर खड़ा हूँ ? ऐसा नहीं है कि यह सवाल मेरे सामने एकाएक उछाल दिया गया है। सृजन की इस यात्राा में जब-तब आत्मान्वेषण के क्षणों में प्रायः यह सवाल अपने-आप से पूछता रहा हूँ। बचपन से ही मैं भयानक पढ़ाकू था। जो भी और जैसी भी किताब मिलती, उसे चाट जाता। उन दिनों जासूसी उपन्यास बहुत प्रिय थे। तब अंग्रेजी के दो-ढाई सौ और हिन्दी के दस-पन्द्रह हजार से कम उपन्यास तो मैंने क्या पढ़े होंगे। मगर उसने एक ओर तेरह वर्ष की उम्र में चश्मा चढ़ा दिया, तो दूसरी ओर गद्य के वे बीज-संस्कार भी दिये, जिनकी वजह से ही आगे चलकर जो भी और जैसा भी बना, मैं यत्किंचित गद्य भी लिख सका। अध्ययन की जबर्दस्त प्रवृत्ति ने मुझे कविता के भी समस्त रूपों की ओर प्रेरित किया। यद्यपि छंद अधिक आनंदित करता था, मगर मैंने प्रारंभ से ही छंदयुक्त से लेकर मुक्तछंद तक की कविता का अवगाहन किया। फलस्वरूप प्रारंभ से ही मेरी सृजन यात्रा में हिन्दी कविता के समस्त प्रचलित काव्यरूपों को देखा जा सकता है-गीत, ग़ज़ल, मुक्तक, मुक्तछंद, राष्ट्रीय कविताएं, प्रगतिशील कविताएं, प्रबंध कविता।

शीर्ष महारथियों से संपर्क

मैं अपना काव्यगुरू बच्चनजी को और कथागुरू नागरजी को मानता हूँ, मगर अन्य आदरणीय अग्रजों, गुरूजनों के प्रति भी मेरे मन में सदैव वास्तविक आदर की ही गहन भावना रही है। मेरा सौभाग्य रहा है कि मैं बीसवीं शती के प्रायः उन सभी शीर्ष साहित्य महारथियों के संपर्क ही नहीं-निकट संपर्क में आया, जो मेरे युवावस्था ग्रहण करने के बाद साहित्य के पटल पर अपनी गौरवमयी उपस्थिति अंकित करते रहे। 'शब्दकमल खिला है' की भूमिका में मैंने उन्हें स्मरण किया है।

कैरियर का संघर्ष

वर्ष '72 के बाद मेरे जीवन में कैरियर का संघर्ष प्रारंभ हुआ, जिस कारण मेरे लेखन की गति धीमी हो गयी। वर्ष '74 से '77 तक लघु पत्रिका 'युवा' का संपादन किया, जिसका प्रकाशन-'पूर्वग्रह-7' में छपी सोमदत्त (अब स्वर्गीय) की टिप्पणी के अनुसार-''हिन्दी साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।'' वर्ष '75 से '78 तक की अवधि में दैनिक 'आज' में वरिष्ठ उप संपादक के रूप में कार्य करते हुए भी मैंने वर्ष 1996 में अपनी चार पुस्तकें एक साथ प्रकाशित की थीं, जिनमें एक गीत-नवगीत संग्रह, एक ग़ज़ल संग्रह, एक समकालीन कविताओं का संग्रह 'नाटकतंत्रा तथा अन्य कविताएं' व एक राष्ट्रीय कविताओं की किताब थी। वर्ष '66 में बालोपयोगी कविताओं की व वर्ष '72 में हिन्दी मुक्तकों-रूबाइयों की किताबें छप चुकी थीं। सन् '77-'78 में मैंने कविता संकलन 'त्रिताल' का संपादन किया, जिसमें बच्चन, अज्ञेय, दिनकर, भवानीप्रसाद, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर आदि कवियों की कविताएं थीं। यह संकलन वर्षों मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के बी.ए. के पाठ्यक्रम में लगा रहा। इसी साल 'युवा' का समकालीन कविता विशेषांक आया, जिसकी बेहद चर्चा रही। सन् '74 में गीत संग्रह 'पांखुरी-पांखुरी', नवगीत संग्रह 'देह चांदनी' उत्तर प्रदेश सरकार के निराला पुरस्कार से सम्मानित और ग़ज़ल संग्रह 'इस शहर में आ गये' प्रकाशित हुए।

सन् '77 के प्रारंभ में शिवमंगल सिंह सुमन पुरस्कार घोषित हुआ। सन् '89 में शंभुनाथजी ने नवगीत सम्बंधी अपने सर्वोच्च महत्त्वाकांक्षी संकलन 'नवगीत सप्तक' में निराला, ओम प्रभाकर, ठाकुर प्रसाद सिंह, नईम, देवेंद्र कुमार और अपने साथ मुझे भी शरीक- किया, जिसका नया संस्करण गत वर्ष दिल्ली से छपा है।

सिलसिलेवार प्रकाशन

वर्ष 1995 के अंत में दिल्ली आने के बाद हिन्दी के प्रमुख प्रकाशकों ने मेरे अप्रकाशित लेखन को तेजी से सिलसिलेवार प्रकाशित किया। कुछ पूर्व प्रकाशित कृतियों के नये संस्करण आये या वे नये नामों से छपीं, जिनमें 'प्रहरी ओ देश के' राष्ट्रीय कविताएं, 'काली मीनार को ढहाते हुए' समकालीन प्रगतिशील कविताएं, 'मैंने यह सोचा न था' ग़ज़लें व मुक्तक, 'हिरना कस्तूरी' नवगीत संग्रह, 'डुगडुगी' कहानी संग्रह, 'चाचा नेहरू' बालोपयोगी काव्य शामिल हैं। नयी पुस्तकों में 'स्वयंप्रभा' व 'प्रज्ञावेणु' के अतिरिक्त 'लेकिन यह गीत नहीं' गीतात्मक कविताएं व 'शब्दकमल खिला है' समकालीन काव्य को देखा जा सकता है। मैंने अपने कैरियर की तुलना में साहित्य को अधिक महत्त्व दिया, मगर यह आश्चर्य ही है कि जैसे-जैसे मैं साहित्य की दुनिया में आगे बढ़ा, मेरे कैरियर का ग्राफ भी उसी गति से अग्रसर होता गया। दूसरे यह, कि साहित्य की सभी विधाओं में लिखने, एक बड़े अखबार में वर्षों वरिष्ठ पत्रकार के अनुभव और विगत 20 वर्षों से केन्द्र सरकार में वरिष्ठ अधिकारी के रूप में कार्य करने के बाद भी मेरी नजर में मेरी वास्तविक पहचान एक कवि की है। मूलतः और अंततः मैं कवि हूँ और वही रहूँगा। यद्यपि आनेवाले वर्षों में मुमकिन है कि मैं गद्य ज्यादा लिखूं। संस्मरण, आलोचना, उपन्यास या आत्मकथा के रूप में। इस उम्र में कविता तो वैसे भी तेजी से नहीं लिखी जा सकती क्षमा कीजिए, यह मेरा अनुभव है; जो लिख सकते हैं, उनकी बात नहीं कर रहा हूँ।

संतुष्टि अभी नहीं हुई

अपनी दीर्घकालीन सृजनयात्रा के जिस बिन्दु पर मैं आज खड़ा हूँ, क्या मैं संतुष्ट हूँ ? उत्तर नकारात्मक मिलता है। लगता है कि मैं अपनी सामर्थ्य के दशमांश का भी उपयोग नहीं कर सका। जीवन की विषम परिस्थितियां हमेशा आड़े आती रहीं। परिवार की चिंता लगी रही, क्योंकि सरकारी अधिकारी के पदों पर रहते हुए भी केवल वेतन पर गुजारा करने वाला रहा और किसी तरह ग्रेच्युटी, भविष्यनिधि आदि में कुछ बचत हुई भी, तो परिस्थितियोंवश निजी प्रकाशन कार्य में उसका स्वाहा हो गया। फिर भी जहाँ तक हो सका, पारिवारिक दायित्वों को पूर्ण करते हुए, अपनी जोखिम भरी जिस सृजनयात्रा को मैं इस बिन्दु तक ले आया हूँ, उसके महत्त्वपूर्ण न हो पाने के लिए इन्हें जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। इसलिए तकलीफ तो मुझे है ही। इस दीर्घावधि का समग्र रचनात्मक उपयोग न कर पाने की। क्षोभ होता है कि अब तक प्रसाद और भारतेन्दु से तो ज्यादा ही उम्र पा चुका हूँ, मगर इन महान व्यक्तित्वों के पैरों की धूल भी नहीं बन सका।

यह मेरी अक्षमता ही थी कि मैं 'कामायनी' जैसी कृति नहीं दे सका। हालांकि हिन्दी के एक प्रखर पत्रकार ने 'प्रज्ञावेणु' को कालजयी बताते हुए उस पर लेखादि लिखे और व्यक्तिगत रूप से मुझे यह भी कहा कि यह होगा अवश्य, मगर शायद आपके जीवनकाल के बाद ही, कि जिस तरह 'रामचरितमानस' हर भारतीय घर में दिखायी देता है, उसी तरह 'प्रज्ञावेणु' भी हर भारतीय परिवार में आदर के साथ पढ़ी जाएगी, क्योंकि आपने श्रीमद्‌भगवद्‌गीता को जनता की भाषा में यथारूप प्रस्तुत किया है। मुक्तछंद काव्य होने के कारण उसमें रस भी है और वह सामान्य जन के लिए भी ग्राह्य है। मैं कह नहीं सकता कि यह बात कहाँ तक सच होगी। क्षणभर के लिए मान भी लें कि यह संभव हो सकता है, तो भी इसमें मेरी तो कोई भूमिका नहीं होगी। उसे जन-मानस में रची-बसी गीता का एक रूप समझकर ही भारतीय परिवार पढ़ेंगे। मैं तो सिर्फ एक माध्यम की तरह 'प्रज्ञावेणु' लेकर पाठकों के समक्ष उपस्थित हुआ हूँ। अभी इतना ही।

उद्‌भ्रांत की कविताएँ

यह अनहोनी नहीं है

यह कोई अनहोनी नहीं हो गई है
मैं सच कहता हूँ दोस्तो! यह तो होना ही था

ये जो काले-कलूटे लोग सड़क पर चल रहे हैं
ये जिनके कपड़े फटे हैं और आँखों में कीचड़
और मुंह में धूल की रोटियाँ
ये जिनकी बोटियाँ।
गर्म-गर्म धूप में सेंकी हुई हैं
जिनके माथे पर कीलें और पैरों में बिंवाइयाँ पड़ी हैं
होठों पर जिनके ताले जड़े हैं।
और छाती पर काले पहाड़ खड़े हैं

और ये... जो हल चला रहे हैं
और फसलें काट रहे हैं
सोना उगा-उगा कर दूसरों को बाँट रहे हैं
ये जो अपनी कीमती वीर्य से
बाँझ धरती को गर्भवती बना रहे हैं
जिन्हें बुरी तरह दबा दिया गया है
मगर फिर भी जो खुश हैं
और आल्हा गा रहे हैं।
ये सभी लोग
जो वर्षों से अपने कंधों पर
इस व्यवस्था को ढो रहे हैं
मेरा निश्चित ख्याल है दोस्तों!
इस देश की भुरभुरी मिट्‌टी के
लिए क्रान्ति के बीज हो रहे हैं
इनके भीतर एक लाल आकाश छाने लगा है
इनके भीतर एक पाब्लो नेरूदा गाने लगा है
इनके शरीर की नसें एक अदृश्य गुस्से से
भीतर ही भीतर तिड़क रही हैं
इनकी कीचड़-सनी आँखों में
बिजलियाँ कड़क रही हैं
ये एक ज्वालामुखी के भीतर बैठे हुए हैं
इनके शरीर के अंग-अंग ऐंठे हुए हैं
ये एक रक्तिम अभियान में शामिल होने वाले हैं
ये एक लड़ाई के मैदान में दाखिल होने वाले हैं

और यह जो कुछ आप देख रहे हैं।
यह कोई अनहोनी नहीं है
यह तो होना ही था दोस्तों!

यह कोई अनहोनी नहीं है

बचे हुए लोगों से

ओ मेरे देश के बचे हुए लोगो!
तुम किस बात की प्रतीक्षा कर रहे हो ?

जनतंत्र के नाम पर होने वाले तमाशे में
क्या तुम्हें मजा आ रहा है...?
क्या व्यवस्था तुम्हारी आँखों में
धूल झोंकने में सफल हो गयी है ?
क्या अंधेरे के समुद्र ने तुम्हें
यह आश्वासन दे दिया है
कि वह तुम्हें निगलेगा नहीं ? अथवा
क्या तुम यह सोच रहे हो
कि बालू में सिर धँसा देने मात्रा से
तुम उस काली आँधी से बच सकोगे
जो बाज की तरह झपटते हुए
तुम्हारी तरफ आ रही है ?

मेरे इन जलते सवालों के जवाब में
तुम मौन मत रहो
तुम्हारा यह जिन्दा मौन मुझे अखर रहा है
उधर देखो बहुत से लोग जाग गये हैं
उठते ही उन्होंने फावड़ा लेकर
बंजर जमीन खोदनी शुरू कर दी है
उनकी आँखों में संकल्प की चमक है
और माथे पर सूर्य
और वे पूरी शक्ति से
नुकसान पहुँचाने वाले कीटाणुओं को
नष्ट करने के अभियान में जुटे हैं
उनके श्रम की खाद खेतों में बिखरी है
और वे सारे देश में एक नई और ताजा फसल
खड़ी करने में लगे हैं
उनका ध्यान किसी तमाशे की तरफ नहीं है
कोई उनकी आँखों में धूल नहीं झोंक पा रहा
काली आँधी उनके सामने बेबस होकर
फड़फड़ा रही है
अंधेरे को देखते-देखते उन्होंने लँगड़ा कर दिया है

वे सब मुहिम पर हैं
क्योंकि स्थितियाँ अभी भी खतरनाक है
और ओ मेरे देश के बचे हुए लोगो!
मुझे बताओ तो सही कि तुम
किसी बात की प्रतीक्षा में हो ?

नमक

ब्रह्माण्ड में
जितनी हैं आकाशगंगाएँ
आकाशगंगाओं में
जितनी हैं पृथ्वियाँ
पृथ्वियों में
जितने हैं महासमन्दर
महासमन्दरों में
जितना है नमक
हमारी देह के ब्रह्माण्ड में अवस्थित
रक्तवाहिनियों की आकाशगंगाओं में
तन्तु-कोशिकाओं की पृथ्वियों में
अनवरत लहरें लेते
रक्तकणों के समन्दरों में
घुला है उतना नमक
यह नमक सर्वव्यापी,
दृश्यमान,
अदृश्य भी।
शक्तिशाली,
जैसे कि एक राजा
उसके अपमान की जुर्रत
कर सकता कोई ?
सहारा
विपन्न का
मायावी
करूणार्द्र
ईश्वर की तरह
क्षण में बदलता रूप
बनता
सुस्वादु व्यंजन
गरीब की रोटी का
धूर्त्त, चतुर, चालाक अधिनायकवादी सत्ता
जब उसे बनाए माध्यम
अपने विदेशी बाजघर का
तो फिर वह
तोड़फोड़ सारे कानून दे
रूप ले ले
अग्निकणों के जलते स्फुलिंग का
समाते हुए
किसी गांधी की
बन्द मुट्‌ठी में
प्रकृति से मिला हमें जो यह उपहार
उसका प्रतिदान
कितना
क्या किया हमने ?
प्रमाणित किया हमने
स्वयं को नमकहराम ?
हे महासमन्दर!
हे विराट पृथ्वी!
हे आकाशगंगा!

और हे ब्रह्माण्ड!
हम नमक के
एक कण की तरह हैं क्षुद्र
और अपराध हमारा
हिमालय-सा;
अपनी प्रकृति की तरह
हमें भी कर प्रेरित
किसी दीन, दुखी,
शापित, अभिशप्त
औ' विपन्न व्यक्ति की सूखी रोटी के लिए
बनने को शाक-भाजी
शायद मिल सके हमें क्षमा
किये गए
जीवन में
अपने दुष्कर्म की।

वह मारा जाएगा

जो कमजोर है
वह मारा जाएगा
जिसकी आर्थिक जरूरतें सीमित
वह मारा जाएगा
जिसके सपने मामूली
वह मारा जाएगा
जो करेगा सिद्धान्त की बकवास
मारा जाएगा
जिसने किया ईमानदार होने का ढोंग
बचेगा नहीं
जिसने दिखाई बाजघर को आँख
उसकी आँखों को निकालकर
किया जाएगा नीलाम सरेआम
जुर्रत की जिसने भी
नैतिकता की अश्लील गाली
मुँह से निकालने की
काट दी जाएगी
उसकी जुबान
यह नया समय है
नयी शताब्दी।
रह सकेंगे इसमें
समृद्ध और बलवान लोग ही
झुग्गी-झोंपड़ियों के वासी
निर्धन या सामान्य ज्ञान को
यहाँ रहने का
हक नहीं कोई
उसे मार ही दिया जाएगा
देर-सबेर नहीं
बहुत जल्द
उसकी हड्डियों की खाद
और लहू की बूँदों से सिंच कर
लहलहाएगी देश की उर्वरा मिट्‌टी में
आलीशान, चकाचौंध करने वाले
मॉल्स की फसल

दो गीत

बिंधी हुई मछली का गीत

मछुआरे!
अब यह निर्मल बंसी
खींच ले!

बंसी
जिस पल तूने डाली थी
उस पल से
बिंधी हुई है;
एक आग
अँधियारे की
निर्जल प्राणों में
रूँधी हुई है।

अँधियारे!
अब तो पापी पलकें
मींच ले!

इस पत्थर-सन्नाटे के दिल में,
एक बोल
महक रहा है; प्यास
कर रही चिरौरियाँ, लेकिन,
यह पानी दहक रहा है।

बदरा रे! कण-कण को अमृत से
सींच दे!
मछुआरे!

आँखें नम न कर

जख्म तेरा बन चुका है
महमहाता फूल
आँखें नम न कर

गंध से
तू भर रहा है
इस कदर सब महकते
छंद तो तुझमें खिला है
प्राण सबके चहकते
बन चुकी है
एक सच्चा गीत तेरी भूल
आँखें नम न कर

आग जिसमें जल रहा तू
वह सृजन की आग है
शाम जिसको मान बैठा है
सुबह का राग है

यह नहीं मँझधार
यह है जिंदगी का कूल
आँखें नम न कर

जख्म तेरा बन चुका है फूल
आँखें नम न कर

दो ग़ज़लें

खूँ से भरा ये दौर मेरे पास आके देख
ऐ दोस्त! जरा और मेरे पास आके देख

रोटी खुदा है और हैं कुछ लोग फरिश्ते
मुँह में न जिनके कौर मेरे पास आके देख

तूने खबर उड़ाई थी मैं खा गया शिकस्त
बाँधे हुए हूँ मौर मेरे पास आके देख

ये सुर्ख-सुर्ख फूल जो रोशन हैं आग के
मैं आ गया उस ठौर मेरे पास आके देख

'उद्‌भ्रांत' के करीब खड़ा हँस रहा है दर्द
उसमें खिला है बौर मेरे पास आके देख।

****

हम बहुत दूर से चलके ये कहाँ तक आये
काटकर दर्द के पाँवों को जुबाँ तक आये

गर्क इतिहास के पन्नों में हो गये थे कहीं
क्या हुआ हमको भविष्यत् के निशाँ तक आये

शब्द के आस्माँ में हमने उड़ानें भर लीं
और फिर अर्थ की धरती से मकाँ तक आये

याद की रेत में कर आये थे हम दफ्न जिन्हें
ख्वाब की हद थी जहाँ तक वो वहाँ तक आये

सफर 'उद्‌भ्रांत' का है कितना निराला यारों
सुब्ह को जन्म लिया शाम यहाँ तक आये।

कहानी

वर्ग-भेद

उद्भ्रांत

वे एकदम अकेले थे।

नहीं। एकांत भी वहाँ था।

अकेलापन उन्हें अच्छा लगता था। तब उनके भीतर की तमाम कलाएं स्वयं को अधिक आकर्षक बनाकर उनके इर्द-गिर्द बैठ जातीं थीं, बातें करतीं थीं। यहाँ तक कि चुहल भी। उस समय उनकी स्थिति एक समाधिस्थ योगी की भाँति हो जाया करती थी। ऐसे आदमी की तरह जो ध्यान की सर्वोच्च अवस्था में पहुँच जाता है और जिसे आसपास घटित होने वाली बातों की भी जानकारी नहीं रहती। बेहतर होगा यह कहना कि उस वक्त वह ऐसी घटनाओं की जानकारी करना भी नहीं चाहता होगा।

जिस वक्त वे भीतर उतर अपने तमाम व्यक्तित्वों के साथ विमर्श में लीन रहते थे, एकांत वहीं बैठ कर ध्यान से उनकी बातें सुनता था। दरअसल उन्होंने निर्देश दे रक्खे थे कि जब वे स्वयं से बातचीत कर रहे हों, तब वह बैठा तो रहे किन्तु कोई हस्तक्षेप न करे।

किसी अतिथि के आने पर एकांत को बाहर जाने का संकेत होता था। यह अनुमान तभी लग गया था जबकि मेरे अंदर पहुँचते ही वह बाहर जाने लगा। चुपचाप। निःशब्द।

वे एकदम चुप थे। आँखें बंद थीं और माथे पर हाथ रक्खे थे। जाहिर है उनकी वार्ता गूढ़थी। अंदर घुसते हुए डर लगा।

वे पी रहे थे।

वह एक बड़ा कमरा था। हॉलनुमा कमरे की धज राजसी थी। दीवारों पर विश्वविख्यात चित्रकारों की पेंटिंग्स लगीं थीं। हुसैन की एक पेंटिंग को मैं तुरंत पहचान गया। बहुत दिनों पहले उसकी अनुकृति किसी रंगीन पत्रिका में निकली थी। वैसे भी हुसैन की पेंटिंग्स को पहचानने के लिए अधिक श्रम की जरूरत नहीं होती। एक कोने में कुछ वाद्य-यंत्र थे। जहाँ वे बैठे थे वहाँ से थोड़ी दूर पर रेडियोग्राम रक्खा था जिसमें लगे हुए किसी क्लासिकल संगीत के रिकॉर्ड की धुन कमरे में बिछे बेशकीमती मखमली कालीन पर यहाँ से वहाँ नाच रही थी। साइड पर एक के बाद एक कई आलमारियाँ लगीं हुईं थीं। उनका पारदर्शी काँच यह बताने में सहायक सिद्ध हो रहा था कि वे उच्चकोटि के ग्रंथों से

सज्जित हैं। आलमारियाँ चूँकि अधिक दूरी पर नहीं थीं इसलिए यह जानने में भी असुविधा नहीं थी कि वहाँ मौजूद ग्रंथ किसी एक भाषा के नहीं हैं। संसार की प्रमुख भाषाओं की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें वहाँ थीं। दुनियाँ भर का ज्ञान वहाँ इकट्ठा था।

उनके सामने सनमायका की एक लम्बी मेज पड़ी थी जिस पर मजबूत काँच जड़ा था। मेज के ऊपर एक खूबसूरत गिलास रक्खा था जिसमें ब्रांडी नजर आ रही थी। मैंने मुँह बिचकाया! प्लेट में काजू के दाने थे। पास ही रखी ट्रे में मिनरल वाटर की बोतल, एक जग और आईस बॉक्स के साथ एक खाली गिलास भी दिखाई दे रहा था।

ब्रांडी की बोतल के साथ किसी और ब्रांड की बोतल भी मौजूद थी। उड़ती हुई नजर ने मुझसे पूछा-कहीं वह 'ब्लैक डॉग' तो नहीं' अगर हाँ तो यह विचित्र कॉकटेल होगी।

'हो-मुझे क्या''-मैंने सोचा और आहिस्ता से भीतर प्रवेश किया, क्योंकि आभास हो रहा था कि वे कोई गहरी बात करने में मशगूल हैं। मेरे अचानक पहुँचने से बाधा होगी।

मगर वे जान गए कि आ गया हूँ। धीरे से माथे से हाथ हटाया और मेरी ओर देखा। ब्रांडी का सिप लिया फिर सधी आवाज में बोले, 'आओ! तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था।'

उनकी आवाज में अपनापन घुला था।

मैं बिना सूचना दिये पहुँचा था। वे मेरी प्रतीक्षा कैसे कर रहे थे ? इस पहेली को मन ही मन सुलझाने की कोशिश करने लगा।

अभी तक मैं उनसे मीलों दूर था। उनका वाक्य पूरा होते ही लगा कि बीच की दूरी थोड़ी रह गई है।

'बैठो' उन्होंने कहा। मैं अभी तक खड़ा था। मेरा सामान्य आदमी लहूलुहान था, मगर खत्म नहीं। वे ऊपर थे। काफी ऊँचाई पर एक रत्नों जड़ा सिंहासन बना था। वे उसी पर बैठे नजर आ रहे थे। गुलाम भारत के खत्म हो चुके रजवाड़ों के अक्स की तरह। नीचे मनसबदारों के लिए आरक्षित कुर्सियाँ पड़ी थीं। मैं डरते-डरते उन्हीं में से एक पर बैठ गया।

'वहाँ नहीं। यहाँ बैठो।'

ध्यान दिया कि उनके बाजू में दूसरा सिंहासन भी मौजूद था। आकार-प्रकार में छोटा और शानो-शौकत में हल्का।

मैंने इन्कार किया-''नहीं, मैं मामूली आदमी हूँ। अपनी औकात जानता हूँ।''

वे हँसने लगे, ''मैं कोई खास आदमी हूँ ? मैं भी मामूली हूँ। तुम्हारे जैसा सोचता हूँ। वैसे ही जीता हूँ।''

मैं भी हँसने लगा। कहा-''यह क्या कह रहे हैं ? कहाँ मैं! कहाँ आप!''

''नहीं बेटे!'' उनकी आवाज में चाशनी घुली थी, ''मेरे और तुम्हारे बीच कोई अंतर नहीं। तुम एक इन्सान हो और मैं भी। इन्सान-इन्सान के बीच कोई फर्क नहीं होता।''

''किन्तु कुछ लोग ऐसा कहते हैं ?''

''वे दुश्मन हैं। नहीं चाहते कि हम शांति से रहें''-मैं देख रहा था कि वे आम आदमी की जिंदगी ही नहीं जी रहे थे, पक्ष में तर्क भी कर रहे थे! मुझे अटपटा आनंद महसूस हुआ। बोला-''आप शायद कहना चाहते हैं कि वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत झूठा है''

वे कुछ देर मुझे देखते रहे। शायद सोच रहे थे कि स्वयं को मामूली आदमी कहने वाला यह व्यक्ति मामूली ढँग से ही सोचता भी है।

-''यह कैसे हो सकता है ? यह तो तुम कह रहे हो! मैंने तो ऐसा नहीं कहा।''

-''मगर आपके कथन के भीतर क्या वही नहीं छुपा है ?''

''बिल्कुल नहीं ? उन्होंने कहा, ''वर्ग-संघर्ष' के मूल में क्या है इसे तो जानते ही होगे ?''

मुझे लगा कि इस वक्त मौन रहना ही लाभदायक रहेगा। चुप रहा।

उन्होंने मेरी और देखा फिर धीरे से बोलने लगे-''वर्ग-संघर्ष इसीलिए तो होता है न, कि आदमी-आदमी के बीच कृत्रिम रूप से पैदा हुए वर्ग समाप्त हो जाएं! आदमी छोटा हो न बड़ा। धनवान और ज्यादा धनवान बनने की होड़ में न रहें, मेहनतकश को पूरा मेहनताना मिले, गरीब और कमजोर न हो। तुम्हारा मार्क्स यही तो कहता है न?''

'तुम्हारा मार्क्स'-मैंने मन में रिपीट किया। इस मौन प्रतिध्वनि की गूज में से 'हमारा मार्क्स' मन के आसमान में प्रतिगुंजित होने लगा। वह प्रतिगूंज मुझे चपत मारती-सी लगी। 'उत्तर आधुनिक समय में मार्क्स'-मेरे महान गाइड ने मुझे यह विषय थमाया था। आप ही बताइये कि मैं चुप रहने के सिवाय और कर ही क्या सकता था।

''जो आदमी का खून पीते हैं'' उन्होंने सिप लिया, ''मैं उन्हें ही आदमी का दुश्मन कहता हूँ। उनके विरूद्ध कोई खड़ा होता है तो मुझे खुशी होती है। मेरी सहानुभूति पूरी तरह उस आदमी के साथ होगी और मैं चाहूँगा कि इस संघर्ष में उसी की जीत हो।''

'क्या वाकई ?' इस सवाल का बगूला तेजी से मेरे भीतर उठा, मगर फिलहाल मैंने उसे बाहर आने से रोका।

''जब तमाम वर्ग मिट जाएंगे तो वर्ग-संघर्ष होगा ही क्यों ? और कैसे''' उन्होंने मेरी आँखों में आँखें डाल दीं। उनकी आँखों के शीशे में 'तमाम' वर्ग ऊभ-चूभ रहे थे। उन्होंने कहा, ''मैं इस समय विचार की उस स्थिति में हूँ जहाँ पहुँच कर छोटे-बड़े की, ऊँच-नीच की भावना समाप्त हो जाती है। मेरे नजदीक आदमी सिर्फ आदमी है-अपनी सारी अच्छाइयों-बुराइयों के साथ।''

भीतर कुछ गुस्सा-सा उमड़ता महसूस हुआ। किसी तरह रोका। फँस तो चुका ही था। गाइड के जाल में।

''ब्रांडी पियोगे ?''

देखा उनके चेहरे पर मंद-मंद स्मिति तैर रही थी। उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वे दूसरे गिलास में, ब्रांडी नहीं, पास ही रखी दूसरी बोतल से रम का पेग डाल रहे थे। मैं चकित था। पहली बार मिल रहा था-वह भी मर्जी से नहीं! क्या उन्होंने निजी जासूस रख छोड़ा है' 'माई फुट!'-मन में कहा और गिलास में मौजूद लार्ज को लम्बे घूँट में नीचे उतार दिया-नीट!

उनके मुखमंडल पर परिचित मुस्कान, परिचित उपक्रम, परिचित परिणाम! वन्स मोर!

हिम्मत बढ़चुकी थी इसलिए अब मुझे कोई ऐसी यथार्थवादी कल्पना करने से नहीं रोक सकता था कि मैं देशी मधुशाला के एक कोने की मेज पर बैठा अपने शायर दोस्त के साथ ठर्रा पी रहा हूँ। अलग बात थी कि उस दोस्त के भीतर से अचानक ही उनकी तस्वीर झलकने लगती। तब उनकी आँखें विलक्षण चमक लिये होतीं। मेरी आँखें उससे चौंधिया जातीं। तब उस दोस्त के प्रति आदरणीय भाव उमड़ता। खूबसूरत गिलास को गौर से देखते हुए।

-''यह गिलास कितना सुंदर है!'' मैंने कहा।

-''यह गिलास मिथ्या है। सुंदरता मिथ्या है।''

-''फिर सत्य क्या है ?''

-''सत्य ही सुंदर है।''

-''लेकिन सत्य सुंदर नहीं, कुरूप होता है-ऐसा लोग कहते हैं।''

-''ऐसा वे कहते हैं जो सत्य के बाहरी स्वरूप को देखते हैं। सुंदर ही सत्य है। जो सुंदर नहीं, वह सत्य नहीं।''

-''और जहाँ सत्य नहीं दिखता''' मैंने सवाल किया।

-''वह सब कहीं है। कभी-कभी दिखता नहीं। तब उसे तलाश करो। आसपास। असत्य के इर्द-गिर्द कहीं न कहीं वह जरूर दिखेगा। उसे तलाशना तुम्हें है। जब दिखे तो महसूसो। उसका सम्मान करो।''

-''हम सौंदर्य की तलाश में समय क्यों नष्ट करें''

-''क्योंकि तुम कलाकार हो। सौंदर्य के बिना जीवित नहीं रह सकते। सुंदरता सत्य का ही दूसरा नाम है।''

-''लेकिन जो असुंदर है, वह भी तो सत्य है।''

उन्होंने ब्रांडी का हल्का-सा घूंट भरा।

-''तुम मेरी बात को ठीक से समझ नहीं पा रहे हो।'' उन्होंने कहा, ''जिसे तुम असुंदर कहते हो, वह तुम्हारी सुंदरता का सबसे निचला पायदान है। तुम्हारी कला का स्पर्श पाते ही उसका कायांतरण सुंदर में हो जाएगा। तब कुरूपता रहेगी कहाँ ?''

मैं सचमुच उलझन में पड़ गया था और उनकी बातें समझ नहीं पा रहा था।

-''कुरूपता तुम्हारी दृष्टि में है।'' उन्होंने हल्की स्मिति बिखेरते हुए कहा।

''क्या यही सत्य है''-मैंने स्वयं से पूछा। कोई उत्तर न पाकर मैंने उनकी ओर देखते हुए गिलास उठाया।

-''मेरी बातें तुम्हारे गले से नीचे नहीं उतर रही है, यह देख रहा हूँ।'' वे धीमे-धीमे अपने सहज-स्वाभाविक ढँग से बोल रहे थे, ''इसका मतलब है कि तुम्हें शरीर से मतलब है, आत्मा के सौंदर्य से नहीं।''

-''नहीं, नहीं'' तेजी से मेरे मुँह से निकला।

-''नहीं''' उन्होंने पूछा।

मैंने स्वीकारात्मक ढँग से गर्दन हिलाई।

-''फिर क्या बात है ?'' वे हँसने लगे ''मुझे प्रसन्नता हुई कि तुम्हें यह स्पष्ट-सा तर्क समझ में आ गया। विश्वास दिलाता हूँ कि अब तुम वर्ग-भेद की बात नहीं करोगे, वर्ग-संघर्ष की बात नहीं करोगे। इस दृष्टि से सोचकर देखोगे तो तुम्हें वर्ग-समानता नजर आएगी।''

संशय दूर हो गए थे! उनके पास आने की गाइडेड सार्थकता का रहस्य काफी कुछ खुल चुका था।

उनके गिलास की तरफ देखा। उसमें अभी भी कुछ बूंदें बाकी थीं। इस लम्बी अवधि में भी ब्रांडी के उनके दो पेग खत्म नहीं हुए थे।

''अब मुझे अनुमति दीजिए'' ओल्ड मौंक के पांचवे लार्ज को एक सांस में हलक से नीचे उतारते और सामने पड़ी प्लेट से भुने काजू के दाने उठाते हुए मैंने कहा।

उनकी मुस्कान मोहक थी।

मैंने नमस्कार किया और उठ खड़ा हुआ।

बाहर निकलते हुए देखा कि एकांत बहुत आहिस्ते से मेरी बगल से गुजर कर उनकी ओर बढ़रहा था। ऊँचाई पर स्थित उनके बाजू में रक्खे सिंहासन की ओर।

काव्यनाटक

एक भयानक शब्द

उद्‌भ्रांत

दृश्य-दो की वेशभूषा में ही पुरूष अँधेरे से निकलकर रोशनी के घेरे में आता है और दर्शकों से मुखातिब होता है।,

पुरूष : एक भयानक शब्द। शब्द का महाविस्फोट। अनन्त ऊर्जा और प्रकाश। प्राकट्य ब्रह्माण्ड का। इस प्रकृति का। स्त्री का। प्रकृति से उपजी स्त्री या स्त्री से प्रकृति। प्रकृति का स्त्रीत्व आया प्रकाश में। स्त्री ने धारण किया प्रकृति का अनन्त रूप। स्त्री की प्रकृति। वह हुई विखंडित और बनी अर्द्ध स्त्री। फिर अर्द्ध पुरूष। उसने जन्मा मुझे। आधे पुरूष को। पहली नजर में उसने मुझे देखा शिशु की तरह। फिर वह बनी शक्ति स्वरूपा। किया उसने शक्तिपात, मुझे पुरूष बनाने के लिए। समय से गुणित होकर अब मैं हुआ पूर्णकाम पुरूष। मैं हुआ पिता। परमपिता। स्वायंभुव मनु। अपनी स्त्री शतरूपा के गर्भ से मैंने जन्मी सन्तति। धीरे-धीरे बढ़ती गई वह और अब समस्त दिशाओं में विस्तारित होकर मेरे सामने है। मैंने कुछ मिथक गढ़े और नामालूम ढँग से परिवर्तित हो गया मिथक में। इस तरह मैं हुआ एक देवपुरूष। एक ईश्वर। एक फ़रिश्ता।

पुरूष के ऊपर से रोशनी का घेरा हटता है और कुछ दूर खड़ी, आदिवासियों जैसा शृंगार किए स्त्री पर टिकता है। स्त्री अपनी हथेलियों को दर्पण की तरह सामने किये जैसे उसमें अपने मुख को विभिन्न कोणों से बार-बार देख रही है।,

स्त्री : ये कैसी भावनाएँ मुझमें जन्म ले रही हैं? मेरी चेतना ने जब आँखें खोलीं तो देखा कि मैं अकेली थी। कोई न था आसपास। उस जलाप्लावित हरित एकांत में कुछ विचित्र-सी अनुभूति मुझे होती थी। कहीं कुछ अधूरापन होता था महसूस।

ठहरती है। दाँये हाथ की हथेली को ठोढ़ी और गाल पर रखते हुए विचार की मुद्रा में।,

फिर अचानक यह पुरूष! मेरी प्रकृति से ही प्रस्फुटित हुआ यह, पर आखिर कैसे? और अब इसकी ओर मेरा मन भी बड़ी तेजी से हो रहा है आकर्षित। आखिर क्यों? इसके संयोग से क्या मेरी प्रकृति में भी आ जाएगा बदलाव कुछ? वह मेरे हित में होगा या अहित में? प्रकृति के हित में या अहित में? कौन जाने वह प्रकृति के हित में होगा, किन्तु मेरे अहित में! यह भी तो हो सकता है कि वस्तुतः उसके बाद मेरा ही हित हो, निर्मित हो मेरा सुखद भविष्य। ठहरकर कुछ सोचती है।,

हाँ, मगर उसकी स्वाभाविक परिणति इस रूप में भी तो हो सकती है कि उसके बाद प्रकृति को पहुँचे व्यापक क्षति उसका व्यापक अहित हो उसे ले जाते हुए सम्पूर्ण विनाश की ओर।

पुनः ठहरती है क्षणभर। एक निश्चयात्मक स्वर।,

मुझे करनी होगी उपासना। तो प्रकृति की उपासना करूँ कि इस पुरूष की? जो बन चुका है अब देवपुरूष! एक फ़रिश्ता, एक पैगम्बर, ईश्वर का पुत्रा! क्षणभर रूकने के बाद, निर्मित मेरे ही द्वारा!

रोशनी का घेरा स्त्री से हटकर पुनः पुरूष को अपने घेरे में लेता है। पुरूष अब एक देवता, एक फरिश्ते के रूप में दर्शकों के सामने है, दाँये हाथ को वरदायी मुद्रा में उठाए हुए।,

फरिश्ता : स्त्री ने मुझे अपनी कोख से जन्म दिया और मैं बना एक मनुष्य। फिर स्त्री ने शक्तिपात किया मुझमें और मैंने पहचानी अपनी शक्तियाँ। उन शक्तियों से सम्पन्न होकर मैंने किया अपने आत्म का विकास। इस तरह मैं हो गया फ़रिश्ता। एक देवपुरूष। दैवी शक्तियों से लैस। अब इन पराशक्तियों का मैं क्या करूँ? कहाँ करूँ इनका प्रयोग? किस पर करूँ?

विचार की मुद्रा में आता है, फिर मंच पर छाये अन्धकार की ओर देखता है और उच्च स्वर में कहता है।,

हे देवि! मेरे सवालों का उत्तर दे। चारों ओर से इन सवालों के पत्थर मेरे अस्तित्व को निर्मूल करने मुझ पर बरस रहे हैं। क्या मैं पहुँच गया हूँ किसी पाषाण युग में? क्या ये सवाल ही अंतिम सत्य हैं और सर्वथा मिथ्या है मेरा अस्तित्व? क्या इस समय को संज्ञा दी जा सकती सत्य युग की?

अचानक चौपाये की तरह दोनों हाथों और दोनों पैरों से चलने लगता है और चलते-चलते दर्शकों की ओर मुँह करके बोलता है।,

हाँ, मेरा नाम है सत्य युग। चार पैरोंवाला पशु हूँ मैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पाँव हैं मेरे। पर मेरा मुख करता है असत्य-संभाषण। मस्तिष्क हिंसक विचारों से भरा है। मेरे विचारों से रक्त टपक रहा धरती पर और देखो...देखो...जन्म ले रहा है मुझमें एक भयानक शैतान! चुनौती देता हुआ फरिश्ते को। कभी पराजित न होने की कामना लिये।

प्रकाश-वृत्त के गायब होने के साथ प्रेक्षागार मंच से उठे अट्‌टहासों से भर जाता है। पटाक्षेप।

(काव्यनाटक 'ब्लैकहोल' का तीसरा दृश्य)

उद्‌भ्रांत जी के कृतित्व पर सुधी समीक्षकों और लेखकों के विचार

यह गद्य नहीं है, कविता है!'

नामवर सिंह

''ये गद्य नहीं है। यह जो तुमने सुनाया वह कविता है और मैंने उसी रूप में इसे ग्रहण किया है। गद्य के गुण दूसरे होते हैं लेकिन गद्य की अपनी सीमाएं हैं और जहाँ काव्य गद्य का सहारा लेकर प्रकट होता है तो काव्य और गद्य दोनों की शक्तियों का समन्वित रूप हमारे सामने आता है। आज जो तुमने सुनाया, उसके बाद गद्य की इसी नयी विधा की ओर या नये छंद की ओर मेरा ध्यान गया। मैं तुमको शुभकामनाएं तो कहता हूँ और गले से लगाता हूँ।

याद आता है कि आजादी के बाद जो थोड़े-से महत्वपूर्ण कवि हुए, उनमें एक नाम उद्‌भ्रांत का है। आप वरिष्ठ कवियों में हैं। माने परिपक्व। और जो अन्तर्दृष्टि आपकी है वे आंतरिक आँखें सच्चे सहृदय कवि के पास होती हैं। तो आपके पास एक तो वह अन्तर्दृष्टि है। वस्तुओं को, व्यक्तियों को तह में जाकर देखना; और यह सबसे बड़ी बात है।

आपकी रचनाओं पर गांधी शांति प्रतिष्ठान में तथा कुछ और एकाधिक जगहों पर पहले भी अपने विचार व्यक्त कर चुका हूँ। मैं एक अरसे से आपकी रचनाओं से प्रभावित तो हूँ ही, उन्हें आत्मसात किया है मैंने और अब वह एक तरह से मेरे संस्कार का अभिन्न अंश बन चुका है। एक अरसे से आपकी पैनी और आलोचनात्मक दृष्टि का प्रशंसक हूँ और आज के जमाने में जिस गहराई के साथ और सच्ची साहित्यिक आस्था के साथ आप

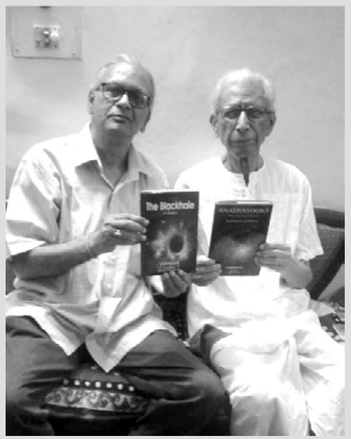

लिख रहे हैं, ऐसे लोग दुर्लभ हैं। मैं आपको अपनी हार्दिक शुभकामनाएं देता हूँ और अनुरोध करता हूँ कि आप इसे जारी रखें। इससे दूसरों को प्रेरणा तो मिलेगी ही, मुझे उम्मीद है कि साहित्यिक जगत में नयी चेतना का प्रसार होगा।

' ''उद्‌भ्रांत के गद्य के बारे में नामवर जी ने यह टिप्पणी तब की, जब उद्‌भ्रांत ने उन्हें अपनी आत्मकथा का एक अंश सुनाया। इस सम्बंध में उद्‌भ्रांत की फेसबुक पोस्ट इस प्रकार है-70वीं वर्षगांठ की पूर्वसंध्या पर 3 सितम्बर, 2018 को जब मैं नामवर जी के आवास पर उनसे मिला तो कमजोरी के कारण संभल-संभल कर धीरे-धीरे कदम रखते हुए उन्होंने द्वार खोला। मुझे देखकर प्रसन्न हुए। परिचारिका को फोन कर बुलाया। मैंने यश प्रकाशन से छपी संस्मरणों की पुस्तकें 'शहर-दर-शहर उमड़ती है नदी' व अन्य कई पुस्तकें भेंट की। उनकी समरणशक्ति यथावत है। उनसे मिलना उत्सव से कम नहीं। उनकी परिचारिका जब आ गईं तो चाय पीते समय मेरी किताबों को देखते हुए उनकी कई तस्वीरें-कुछ मेरे साथ भी-उन्होंने खींची। नामवर जी के पास उसी दिन सुबह राजकमल प्रकाशन से छपी रामविलास शर्मा पर उनके विचारों को प्रस्तुत करने वाली किताब आई थी। बोले, ''यह आज ही आई है। आप भी इस पर हस्ताक्षर कर दें तो एक स्मृति हो जाएगी।'' मैंने आदेश का पालन किया फिर उन्हें बताया कि आत्मकथा का पहला खंड आ रहा है। पांडुलिपि साथ थी। उन्होंने कुछ अंश सुनाने को कहा तो मैंने अंतिम तीन पृष्ठ सुनाए। इस पर प्रसन्न मन जो टिप्पणी उन्होंने की, उसे मैंने रिकॉर्ड किया और अगले दिन निर्मला जैन की अध्यक्षता में हुए। कार्यक्रम में माइक पर इसे प्ले करके श्रोताओं को सुनाया भी। मंच पर मेरे साथ बैठे विभूति को उतने से संतोष नहीं हुआ और फोन लेकर पुनः ध्यान से सुना। उसे लिप्यान्तरित कर मेरे सहायक सुनील ने मुझे भेजा।''

''इक लौ जो अंधेरों में सदा जगमगाए थी
'उद्‌भ्रांत' की कलम में वो ढलते हुए देखी।''

******

यह बैचेनी सदा बनी रहे

डॉ. शिवकुमार मिश्र

उद्‌भ्रांत की कविताओं में अपने समय की गहरी बेचैनी परिलक्षित होती है, जो उनकी सबसे बड़ी पूंजी है। किसी भी बड़ी कविता के पीछे रचनाकार की यही बेचैनी कार्य करती है। इसके अभाव में बड़ी कविता जन्म नहीं ले सकती। उनमें एक बेचैनी मौजूदा पतनशील माहौल को लेकर है

और एक बेचैनी अपनी रचनात्मक ऊर्जा और उसे अभिव्यक्ति देने के लिए विविध साहित्यिक ट्रेंड्स को लेकर भी है। शब्द से क्रांति नहीं होती, किंतु जब शब्द को सलीके के साथ उस बड़े आशय से जोड़ा जाता है जो विचार और दर्शन को समकालीन जिंदगी को समझने का नजरिया देता है तो काली मीनार ढहती है। नामवर जी ने ठीक ही कहा है कि उद्‌भ्रांत में अपनी कविता के प्रति अदम्य आत्मविश्वास है और उन्हें किसी प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं है। एक सार्थक रचना को अगर हम इग्नोर करते हैं तो खुद बेनकाब होते हैं। उद्‌भ्रांत की कविताएं अपनी शक्ति की स्वयं गवाही देती हैं। इस अंधेरे समय में न केवल वे निरंतर लिख रहे हैं; वरन् टिके हुए हैं यह बड़ी बात है। इनकी कविताएं स्वयं बोलती हैं। कवि की आंतरिक बेचैनी ही शब्द को क्रियाशील व ताकतवर बनाती है। मेरी कामना है कि उद्‌भ्रांत में यह बेचैनी सदा बनी रहे।

******

मिथक काव्य के शीर्ष रचनाकार

कर्णसिंह चौहान

उद्‌भ्रांत ने लगभग अप्रचलित से हो गए लंबी कविता, खंडकाव्य, महाकाव्य जैसे परंपरागत काव्य-रूपों को चुना, इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि वे मिथकों का प्रचुर प्रयोग करते। इस प्रयोग का सृजनात्मक होना भी जरूरी था। यही उन्होंने किया। इसमें वे हिंदी के शीर्ष रचनाकार ठहरेंगे, क्योंकि जहाँ उनके पहले के लेखकों ने एकाध कृतियों में ही वह आधार लिया, वहाँ उद्‌भ्रांत की 'त्रोता', 'रूद्रावतार, 'राधामाधव', 'स्वयंप्रभा', 'प्रज्ञावेणु', 'वक्रतुण्ड', 'ब्लैकहोल', 'अनाद्यसूक्त' जैसी रचनाएं मिथक का सृजनात्मक आधार लेकर चलती हैं।

जीवन की लय को महत्व

डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव

'शब्दकमल खिला है' उद्‌भ्रांत की '73 से '97 के बीच की कविताओं का संग्रह है जो एक व्यग्र, बेचैन कवि के जटिल काव्य-विकास का उत्तरवर्ती साक्ष्य है। विकास को सीधे सरल रास्तों से न देखा जाय, तो मुश्किल रास्तों से गुजरने का हौसला ही एक जिद्‌दी कवि के रूप में उद्‌भ्रांत को सक्रिय और विश्वसनीय बनाता है। अपनी लंबी काव्ययात्रा में उन्होंने कविता की विभिन्न विधाओं में वस्तु और रूप की दृष्टि से ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग किये हैं, जिनसे परंपरा की उनकी समझ और नयेपन या ताजगी के प्रति उनकी ललक का पता चलता है। उद्‌भ्रांत के लिए गीत, गजल या ऐसे अन्य रूप चुनते समय महत्त्वपूर्ण होती है छंद की आत्मा उसका सार तत्त्व। वे छंद को महत्त्व देते हैं इस अर्थ में कि वे जीवन की लय को महत्त्व देते हैं। विखंडन या तनाव में भी लय ही कविता को बचाती है और बड़े पाठक वर्ग के नजदीक लाती है। उद्‌भ्रांत छंद का चुनाव सरलता के प्रलोभन से नहीं करते। छंद उन्हें कविकर्म की कठिनाइयों की साधना में सक्रिय जीवंत रखता है। छंद का रास्ता छोड़कर भी उद्‌भ्रांत ने नयी कविता के मुहावरे में अपने को एक लंबे समय तक व्यक्त किया है। अभी भी कविता की मुक्ति के सब रास्ते उनके लिए खुले हैं।

******

उद्भ्रांत जी गीतों के सधे हुए स्वरकार हैं। उनके काव्योपवन में अनेक रंगों के कुसुम हैं जिनकी 'पाँखुरी-पाँखुरी' में सुगन्ध है। मुझे तो लगता है कि इनकी भावनाओं में 'वसंत का वंशीवट' है जिसमें 'गीतों की राधा' बाट देखती है, और कभी 'गोपियों का प्रतिवेदन' सुनाई पड़ता है। 'सुधि के द्वार' खुलने पर 'प्यार के दो बोल' भी सुनने को मिल जाते हैं। उनकी कविता-कामिनी कभी गाँवों में 'पिया' को खोजने चली जाती है। 'नभवा में कारी बदरी' देखकर 'करिजवा' में हूक का अनुभव करती है। उद्भ्रांत जी भावनाओं के दर्द में डूबे हुए कुशल कवि हैं। उनके गीतों से हिन्दी गीति-काव्य का शृंगार हुआ है। मेरी कामना है कि इनके ये गीत भविष्य में भी जनता के कंठों में गूँजते रहें।

डॉ. रामकुमार वर्मा

******

उद्भ्रांत के गीतों की विशेषता है उनका बहुआयामी यथार्थ, जिसे उन्होंने संघर्ष करते हुए जिया है। मेरी दृष्टि में उनके प्रकृतिमुखी गीतों की अपेक्षा इन यथार्थपरक गीतों का विशेष महत्त्व है। उद्भ्रांत के तरोताजा लेखन से मैं प्रारंभ से ही परिचित रहा हूँ। उनके नवगीत अपने स्वयं के मिट्टी-गारे से प्रफुल्लित हुए हैं।

वीरेन्द्र मिश्र

******

उद्भ्रांत वर्तमान समय में भले ही युग-निर्माता कवि न बन सके हों, किंतु नयी दिशाओं में तेजी से कदम बढ़ाकर नवोन्मेष की उद्घोषणा करने वाले ऐसे विशिष्ट कवि तो वे सिद्ध हो ही चुके हैं जिनकी कोई भी, सजग दृष्टि वाला आलोचक, उपेक्षा नहीं कर सकता। और भविष्य के बारे में भी क्या कहा जा सकता है। कौन जाने, आने वाले समय में वे समकालीन हिन्दी साहित्य विशेषकर कविता और नवगीत के क्षेत्रा में एक नये युग के निर्माता साहित्यकार के रूप में पहचाने जाने लगें।

शंभुनाथ सिंह

******

कवि उद्भ्रांत के गीतों में नयी भंगिमा, नया शिल्प और नया युग-बोध इस तथ्य का साक्षी है कि कवि सर्जना के नये सोपानों को गढ़ने के साथ-साथ नयी चुनौतियों को आत्मसात करता हुआ अप्रतिहत संघर्षों से जूझने के लिये भी परिकरबद्ध है

'मेरे अंदर सिसक रहा है कोई ऐसे भाव में,
जैसे धीमे-धीमे सुलग रही हो आग अलाव में।'

यह आत्मनिष्ठता और विश्वमानस में परिव्याप्त संवेदनीयता को आत्मसात करने की आकुलता ही कवि के श्रेय और प्रेय को सँवारती प्रतीत होती है। उसके सौंदर्य-बोध में स्वयं को खोजने की यही बेचैनी परिलक्षित की जा सकती है। गो, गोचर की यह गवेषणा स्पृहणीय है और अभिनंदनीय भी।

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

******

आधुनिक काल में प्रबन्धकाव्यों की रचना की विरलता के जो भी कारण रहे हों, मुख्यतः कवियों की उपेक्षा को एक कारण मानना पड़ेगा। यद्यपि अधिकांश कवियों ने समानान्तर रूप से लंबी कविताएं लिखकर प्रबन्धात्मकता के मूल पारम्परिक रूप को जीवित रखा, तथापि विधा में नये कौशल जोड़ने की परम्परा कायम करने के साथ यह स्वीकार किया गया है कि अब प्रबन्धकाव्य की रचना एक दुस्साहसपूर्ण कार्य है। दुस्साहस की इस परम्परा को भी कवि ही जीवित रख सकते हैं और सुकवि उद्भ्रांत ने यह काम किया है। उन्होंने मिथक के आश्चर्यलोक से 'स्वयंप्रभा' तपस्विनी की खोज कर एक अत्यंत महीन कथा-सूत्र से 'रामकथा' के इतिहास को नया आयाम दिया है। इतिहास के इस नये अध्याय से राम-मारूति गाथा के अनाम चरित्र भी पर्याप्त रूप से आलोकित हुए हैं, रामकथा के प्रसंग में यह काल-खंड सबसे जीवंत, संघर्षपूर्ण एवं निर्णायक है।

डॉ. गंगाप्रसाद विमल

******

उद्भ्रांत मूलतः गीतकार रहे हैं, उनकी गीतेतर कविताएं भी रूपाकार में अलग दिखाई पड़ती होकर गीत से अलग नहीं हैं। उद्भ्रांत सदैव बिम्बों के माध्यम से सोचता है, इसलिए उसकी कविता भीतरी छंद से अनुशासित रहती है। इस संग्रह की अधिकांश कविताएं अलग-अलग मैंने विभिन्न कालखण्डों में देखी थीं, लेकिन यहाँ एक संग्रह में आकर वे खण्ड से संश्लिष्ट बन गयीं। यही इस संग्रह की विशेषता है। मैंने ऐसे कई कवि देखे हैं जो अपनी अलग-अलग कविताओं में बहुत अच्छे कवि लगते थे, लेकिन अपने संग्रहों में खो गये! उद्भ्रांत बिल्कुल दूसरी तरह के कवि हैं। वे अपने संग्रहों में पूरी तरह उपस्थित होते हैं और एक अच्छे कवि की रचना-प्रक्रिया का क्रमिक ब्यौरा देते हैं। उन्होंने कुछ छिपाया नहीं है, लेकिन व्यक्त होने से उनका कुछ नुकसान भी नहीं हुआ है। इतने वर्षों के बाद जबकि उद्भ्रांत हिन्दी के स्थापित कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं, उनकी इन कविताओं को पढ़ना एक रोमांचक अनुभव जैसा है।

ठाकुर प्रसाद सिंह

साक्षात्कार

''जिसमें अधिक आग होगी, वही काम भी अधिक कर सकेगा...''

कवि उद्भ्रांत के साथ लेखक अविनाश मिश्र से हुई बातचीत के अंश

"उद्भ्रांत का काव्य हिंदी साहित्य में एक ऐसा आलोकवृत्त रहा है जिससे नजरें मिलाने की कोशिश प्रायः आंखों को चौंधिया देती रही है। इस स्थिति में इस ओर से या तो आंखें मूंद ली गई या ठीक से मिलाई नहीं गई। नतीजतन उद्भ्रांत के कवि के काव्य पर गलत फैसले, जल्दबाजी में दिए गए निष्कर्ष या उनके विपुल रचनात्मक संसार से बचने के लिए उन्हें हाशिए पर कर देने की मुख्यधारा में प्रभावी मठाधीषों की कुटिल कोशिशें एक ऐसा वातावरण बनाती आई, जहाँ उद्भ्रांत पर वैसे बात नहीं हो सकी, जैसे कि उद्भ्रांत जैसे व्यक्तित्व के कृतित्व पर होनी चाहिए थी। इस वातावरण के लिए उत्तरदायी गैर रचनात्मक तत्वों ने मिलकर, न केवल उद्भ्रांत के उचित मूल्यांकन को होने से रोके रखा, बल्कि एक ऐसा साहित्य समय भी निर्मित किया, जहाँ बहुत कम उम्र में, बहुत कम कविताएं लिखकर, बहुत सारे काव्येतर ऐफर्ट करके, बहुत सारे, बहुत गैरजरूरी कवियों ने, बहुत कुछ पा लिया! निकृष्टता का स्वीकार समाज व संस्कृति के लिए कितना घातक है, यह बहस अपनी जगह है, लेकिन इस पर कोई बहस ही नहीं हो सकती कि उत्कृष्टता की उपेक्षा जो प्रायः पूर्वग्रहग्रसित, राजनीतिप्रेरित और 'परस्पर लाभाकांक्षी समूह उद्वेलित' होती है समाज व संस्कृति के लिए इंतहाई घातक है।

काव्य की लगभग सभी विधाओं में रचने वाले उद्भ्रांत जीवित कवियों के संसार में इसलिए सबसे भिन्न प्रतीत होते हैं, क्योंकि उन्होंने सामयिक काव्य में एक प्रचलित स्थायी भाव के बरक्स एक जोखिमपूर्ण काव्य विपर्यय चुना है और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यहाँ यह कि उद्भ्रांत का यह चुनाव इस अर्थ में अत्यंत आकर्षक व प्रासंगिक लगता है, क्योंकि यहाँ समकालीनता से विरोध अथवा पलायन नहीं, अपितु समकालीनता में रहते हुए परंपरा की ओर लौटना दृश्य किया जा सकता है। उद्भ्रांत ने विराट परिकल्पनाओं, विराट योजनाओं, विराट धैर्य, अनथक अध्यवसाय व श्रम के साथ विपुल काव्य रचना की है। तमाम तरह के जीवन संघर्षो के बीच से गुजरते हुए उद्भ्रांत हिंदी साहित्य के सौ वर्षो के ज्ञात इतिहास में एक और एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनके काव्य संसार में इतने महाकाव्य हैं कि 'कायमनोवाक्य' से इनके अनुशीलन में लगने के लिए एक समग्र जीवन चाहिए। और इस तरह यहाँ आकर यह महाकाव्यात्मकतापूर्ण काव्यव्यवहार उन्हें कालिदास, तुलसी, कबीर, मीर, गालिब, शेक्सपियर और रवींद्रनाथ टैगोर की परंपरा से जोड़ता है। भारतीय पौराणिक मिथकों और देवी-देवताओं पर उद्भ्रांत का काम और दृष्टि हिंदी साहित्य में दुर्लभ ही नहीं, अप्राप्य भी है।"

अविनाश मिश्र - इधर आपके कृतित्व पर काफी चर्चाएं हो रही हैं, एक के बाद एक आपकी किताबें आ रही हैं। इस सारी चर्चा को आप कैसे देखते हैं और क्या 'मूल्यांकन' के संदर्भ में यह सब कुछ आपको बहुत देर से हो रहा नहीं जान पड़ता है ?

उद्भ्रांत - मूल्यांकन का सवाल थोड़ा अजीब है। यों तो लिखना शुरू करने के कुछ वर्षों बाद से ही मेरी चर्चा होने लगी थी बतौर गीतकार/नवगीतकार। इसी कारण बाद में शंभुनाथ जी द्वारा संपादित 'नवगीत अर्द्धशती' और 'नवगीत सप्तक' में उन्होंने मुझे शामिल किया था लेकिन मैं अन्य काव्यरूपों में भी काम कर रहा था। सातवें दशक में ही यों तो मेरी कविता को सभी बड़े कवियों का एप्रीसिएशन मिला। लेकिन वह गीतकार वाले रूप के लिए ही था। हमारे हिंदी साहित्य में आलोचकगण प्रायः रचनाकार को एक खांचे में कैद कर देते हैं। नई कविता के सारे कवियों ने गीतों से ही शुरूआत की, लेकिन इस दौर की आलोचना ने गीत को महत्त्वपूर्ण नहीं माना। नई कविता के कवि एक-दूसरे की आलोचना लिखते थे। ऐसे में जो परिदृश्य सामने आया उसमें नई कविता का ही मूल्यांकन ज्यादा हुआ। नामवर सिंह, देवीशंकर अवस्थी और विजयदेव नारायण साही ये तीनों आलोचक नई कविता और नई कहानी के प्रति आकर्षित थे। सातवाँ दशक एक तरह से इन्हीं सब प्रवृत्तियों का ऐक्सटेंशन था जिसमें अकविता, युयुत्सावादी कविता, ठोस कविता, भूखी पीढ़ी जैसे आन्दोलन जुड़े और उसकी समाप्ति के एक-दो वर्ष पहले अकविता के कुछ प्रमुख कवि जैसे धूमिल, कुमारेंद्र, जगूड़ी, सौमित्रा मोहन, राजकमल ने पुरानी प्रवृत्तियों को छोड़कर प्रगतिशील चेतना वाली बिम्बवादी कविता में अपना स्वाभाविक विकास पाया। इन्हें लघु पत्रिका आंदोलन के जरिये प्रतिष्ठा मिली और इनकी कुछ अच्छी कविताओं ने आलोचकों को भी आकर्षित किया। मैं यद्यपि मुक्तछंद की कविताएं भी लिख रहा था, लेकिन नवगीतकार की स्थापित छवि के कारण मेरी वैसी कविताओं पर लोगों ने ध्यान नहीं दिया। मान लिया गया कि यह तो गीतकार है, कवि सम्मेलनों में जाता है, समकालीन यथार्थ की कविताएं इसके पास कहाँ होंगी! यद्यपि मेरे अनेक गीत यथार्थबोध के भी थे, मगर कह चुका हूँ कि गीत के प्रति उदासीनता का वातावरण घना हो चुका था। अभी पिछले दिनों मैंने कर्णसिंह चौहान की मुझ पर केन्द्रित एक टिप्पणी देखी जिसमें वे मौजूदा साहित्यिक परिदृश्य पर तंज करते हुए लिखते हैं कि हिंदी में अगर किसी कवि की गीतकार की छवि बन गई तो उसे समकालीन विमर्षों से बाहर मान लिया जाता है! स्वाभाविक है कि मेरी कविता पर आलोचकों का ध्यान कम जाता। 1976 में जब 'नाटकतंत्र तथा अन्य कविताएं' संग्रह आया, तब पहली बार मेरी कविता पर लोगों का ध्यान उस तरह से गया। लगभग सभी महत्त्वपूर्ण लघु पत्रिकाओं में संग्रह की समीक्षाएं आईं और संपादकीय लेख लिखे गए। तब कुछ लोगों ने यहाँ तक कहा कि चर्चा पाने के उद्देश्य से मैं गीत से शिफ्ट कर गया हूँ, जबकि यह सही नहीं था, क्योंकि मैं सातवें दशक के दौरान भी गीत-लेखन के साथ समकालीन कविताओं की रचना भी कर रहा था। यद्यपि वे परिमाण में बहुत कम थीं, मगर उन्हीं का विकास 'नाटकतंत्र' के रूप में आठवें दशक में दिखा था। अभी जो मेरी चर्चा हो रही है तो इसका कारण यह लगता है कि इधर मेरा काम लगातार और बहुत ज्यादा सामने आया है और लोग उस दबाव में हतप्रभ हो चर्चा के लिए मजबूर हुए हैं। मैंने समकालीन कविताएं भी जितनी लिखी है, उतनी शायद मुख्यधारा के किसी कवि ने नहीं लिखीं; लेकिन विभिन्न काव्यरूपों में काम करने की वजह से मेरे मूल्यांकन में दिक्कतें आती रही हैं।

'समकालीन कविता' से क्या आशय है ? क्या गीत समकालीन कविता में नहीं आता ?

देखिए, 'समकालीन कविता' पद अब उस कविता के लिए रूढ़ हो गया है जो छंदमुक्त है। गीत और नवगीत में जीवन की जटिलताएं पूरी तरह व्यक्त नहीं हो

सकतीं। इसके लिए गीत और नवगीत के बंधनों या उनके अनुशासन को छोड़ना पड़ता है। इसी तरह प्रेम की रागात्मक अनुभूति पर जितनी अच्छी और दीर्घजीवी कविता छंद में संभव होगी, उतनी छंदमुक्त कविता में नहीं हो सकती।

आपकी ही पीढ़ी के एक वरिष्ठ कवि ने एक साक्षात्कार में कहा है कि आपने बहुत लिखा है, मगर शायद ही किसी ने आपको ढंग से पढ़ा है और आपको इस बात का दुख और शिकायत दोनों हैं, इस पर क्या कहेंगे ?

यह उनका अनुमान है जो यही बता रहा है कि साठ के दशक वाली एक ही पीढ़ी के होने के बावजूद स्वयं उन्होंने ही मुझे ठीक ढँग से नहीं पढ़ा या वैसी जरूरत महसूस नहीं की। मुझे ठीक ढंग से पढ़ने वाले लोग कम हैं और समग्र रूप से पढ़ने वाले नहीं के बराबर। ऐसा इसलिए है क्योंकि मैं किसी ग्रुप को बिलांग नहीं करता हूँ। जिन्होंने मुझ पर यह टिप्पणी की है, उनके या उन जैसे कुछ अन्य लोगों के अपने-अपने ग्रुप हैं। उनका काम कम है, इसलिए उन्हें पढ़ने में अधिक समय नहीं लगता और उछालने में भी। कम काम होने के कारण ही उन्हें ग्रुप बनाने की जरूरत पड़ती है ताकि योजनाबद्ध ढँग से उनका नगाड़ा बज सके। उनके काम की गुणात्मकता का ढिंढोरा पीटा जा सके। पहले भी कहा है कि मैंने कई काव्यरूपों में काम किया--और उन सभी में परिमाण भी अधिक रहा। हाँ, यह सही है कि काम अधिक होने के कारण भी मूल्यांकन में बाधा आती है। शायद यह भी एक कारण है मेरे लेखक को लेकर बनी नासमझी का। मेरे काम पर जिस तरह से ध्यान दिया जाना चाहिए था, उस तरह से नहीं दिया गया यह सही है। लेकिन मैं इसे दुख के रूप में नहीं लेता हूँ; क्योंकि मैं हिंदी साहित्य की राजनीति से अच्छी तरह वाकिफ हूँ।

क्या आप स्वयं को उपेक्षित महसूस करते हैं ?

यह सच है कि मुझे किनारे कर देने की कोशिशें हिंदी की मुख्यधारा में बराबर होती रही हैं। लेकिन सतत् रचनाकर्म के कारण ये कामयाब नहीं हो सकीं, इसलिए मैं तो स्वयं को उपेक्षित महसूस नहीं करता। मैं मानता हूँ कि जब आप अपने समाज को सचेत दृष्टि से देखते हुए, कविता के लिए जो अपेक्षित साधना है उसे करते हुए, अपना काम लगातार जारी रखते हैं तभी ऐसा श्रेष्ठ और सार्थक रचनाकर्म हो पाता है जिसकी उपेक्षा कोई नहीं कर सकता। और अगर कोई अपनी कुंठाओं से प्रेरित हो ऐसा करने का जोखिम उठाता है तो समय के कूड़ेदान का अंधकूप उसे निगल लेता है। समझदार आलोचक इस सत्य को जानते हैं। मेरी किताब 'काली मीनार को ढहाते हुए' से सम्बंधित विचारगोष्ठी में डॉ. शिवकुमार मिश्र ने एक बात कही थी। उसे आप भी सुन लीजिये कि 'एक सार्थक रचना को अगर हम इग्नोर

करते हैं तो खुद बेनकाब होते हैं।'

आपकी प्रेरणा का स्रोत क्या है ?

प्रेरणा का कोई एक स्रोत नहीं होता। कम से कम मेरे लिए। विश्व के शीर्ष रचनाकार-जो कालजयी हैं-और जिन्होंने भौतिक ऐषणाओं से अपने आत्म को कभी प्रभावित नहीं होने दिया, उनके और भारतीय भाषाओं सहित हिन्दी के भी ऐसे तमाम महान साहित्यकारों से मुझे अनवरत प्रेरणा मिलती रही है।

हिन्दी में पुरस्कारों की राजनीति पर क्या कहेंगे ?

हिन्दी में पुरस्कारों की वजह से, जो प्रायः संगठनप्रेरित या राजनीतिप्रेरित होते हैं, कम प्रतिभाशाली रचनाकारों का अधिमूल्यन होता है और वास्तविक रूप से योग्य लोगों का अवमूल्यन। मेरी तीन-चार कविताएं पुरस्कारों की राजनीति पर ही लिखी गई हैं जिन्हें पढ़ा होता तो आप यह सवाल ही न करते। वे पर्याप्त लोकप्रिय और चर्चित भी रहीं। 'दुष्चक्र में कविता', 'शीर्षस्थ', 'मारामारी' ऐसी ही कविताएं हैं। मेरा मानना है कि छोटा से छोटा और बड़े से बड़ा कोई पुरस्कार राजनीति या जोड़तोड़ से रहित नहीं होता। सिर्फ आपको उस समय और उस संस्था के समीकरण में स्वयं को फिट करने की कला आनी चाहिए। अपवादस्वरूप कभी-कभी समय और संस्था किसी को अपने समीकरण में फिट करने का स्वयं प्रयास करते हैं रचनाकार के विराट कद की लगातार उपेक्षा से उत्पन्न शर्मिन्दगी से बचने के लिए। यशपाल को 'मेरी तेरी उसकी बात' पर, नागर जी को 'अमृत और विष' पर, नागार्जुन को मैथिली कविता के लिए, दिनकर को कवि नहीं विचारक के रूप में, कमलेश्वर और मनोहर श्याम जोशी को दिये गए पुरस्कार इसी कोटि में आते हैं। अभी आपसे बात करते हुए कुछ वर्ष पूर्व लिखी अपनी दो पंक्तियां याद आ रही हैं जो निराला जैसे महान कवि के प्रति भी ऐसी आपराधिक भूल करने वाली संस्थाओं और उन पर काबिज मठाधीषों के लिए आईना हैं-''मेरे पास कविता का सूरज है। मुझे अकादेमी की टॉर्च की जरूरत नहीं।'' फिलहाल इससे अधिक और क्या कहा जाए!

वामपंथी रूझान रखने के बावजूद आपने हिन्दू देवी-देवताओं, मिथकों पर और 'गीता' के काव्यानुवाद जैसे कार्य किए हैं। ऐसा क्यों ?

मुझे हमेशा यह लगता रहा है कि हमारे समाज में जो प्रचलित मिथक हजारों साल से चले आ रहे हैं, अभी भी जीवित व प्रासंगिक हैं। दुनिया इसीलिए उनसे प्रेरित और प्रभावित होती है। समकालीन समस्याओं के उत्स और उनके समाधान की तलाश में अगर आप उन्हें भी ध्यान में रखें तो आपकी बात की सम्प्रेषणीयता बढ़ती है और उसका प्रभाव भी। हमारे यहाँ राम, शिव और कृष्ण के जो सार्वकालिक मिथक हैं, इनकी पड़ताल करने की चुनौती एक रचनाकार को क्यों नहीं स्वीकारनी चाहिए ? उन्हें ज्यों का त्यों व्यक्त करना फिजूल है। जब तक इन्हें समकालीन चेतना और सवालों से नहीं जोड़ा जाएगा तब तक इन्हें रिप्रोड्यूस करने का कोई मतलब नहीं है। उनके मूलस्वरूप को तो हम अपने क्लासिक्स में देख ही सकते हैं। उस ऊँचाई तक जा पाना भी हमारे लिए संभव नहीं, क्योंकि न हमारे पास उतनी मेधा है, न उम्र। मिथकों के महत्त्व को हमारे सभी बड़े चिंतकों रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, अरविंद, गांधी, राधाकृष्णन, नेहरू और लोहिया ने स्वीकारा है। 'भारत में यदि कभी साम्यवाद सफल होगा तो उसमें धर्म और अध्यात्म के तत्व जरूर मौजूद होंगे', यह बात जब मैं सी.पी.आई. का कार्ड होल्डर था तब भी कहता था। हिचकिचाहट के साथ कुछ लोग अब इसे मानने लगे हैं। मैंने भारतीय मिथकों को वर्तमान की कसौटी पर कसा है। यही कारण है कि बड़े वामपंथी आलोचक भी मेरे इस काम पर बात कर रहे हैं। वैसे आप जानते हैं कि मैंने सिर्फ मिथकों पर ही कार्य किया हो, ऐसा नहीं है। मेरी कविता-यात्रा समकालीन जीवन की चिंताओं से भरी है और उसमें जीवन का हर पहलू आया है। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, भूमंडलीकरण, मनुष्य का नैतिक अधःपतन, बाजार का आधिपत्य। एक बात और समझ लें। मेरी कविताओं में एक ओर अगर हिंदू धर्म की कुरीतियों, पाखंडों, अंधविश्वासों और विसंगतियों पर निर्मम प्रहार

हुआ है तो दूसरी ओर वहाँ तीन तलाक जैसी कुप्रथा पर 'तलाक! तलाक!'' और बकरीद के शुभ अवसर पर कुर्बानी के लिए मूक, बेबस बकरों की खरीदफरोख्त जैसे नाजुक विषय पर 'बकरामंडी' जैसी कविताएं भी हैं जो समूचे हिंदी काव्य संसार में आपको अन्यत्र नहीं मिलेंगी। दिक्कत यह है कि किसी कवि को पूरी तरह जाने-समझे बगैर हम उसके बारे में निर्णय देने लगते हैं। हम सब कुछ जल्दी में तय करते हैं। हमारी आलोचना इसी हड़बड़ी का शिकार है।

डॉ. नामवर सिंह के 'प्रतिभा का विस्फोट' जैसे वाक्य और रवीन्द्रनाथ टैगौर से आपकी तुलना को आपके कुछ विरोधियों ने हँसी में उड़ा दिया। क्या स्वयं आपको 'प्रतिभा का विस्फोट' जैसा वाक्य और रवीन्द्रनाथ टैगोर से आपकी तुलना नामवर जी द्वारा जल्दबाजी या अतिरेक में दी गई फिजूलबयानी जैसी नहीं लगती ?

रवीन्द्रनाथ टैगोर से तुलना का कोई आधार नहीं है। हाँ, वर्ष 1999 में जब कुछ वर्षों से कविता न लिख पाने के कारण मैं बहुत उद्विग्न था, तब नामवर जी ने मुझसे कहा था कि आगे कभी कविता का आपके भीतर विस्फोट होगा। फिर वर्ष 2004 से 2007 तक की अवधि में मैंने जो और जितना काम किया, वह अब काफी कुछ सामने आ चुका है। शायद एक तड़प, एक बेचैनी तो मुझमें थी ही। उसे उन्होंने एक चौंकाने वाला पद दे दिया। इससे यह जरूर हुआ कि मेरे प्रति ठंडी मुद्रा अख्तियार करने वाले लोग भी परेशान हुए और सोचने को मजबूर हुए कि यह कवि जो आधी सदी से चुपचाप लगातार काम कर रहा है, उस पर ध्यान क्यों नहीं दिया गया। हो सकता है कि अब कुछ लोग मेरे काम को देखने-परखने-जाँचने की कोशिश करें। तभी तो पता चलेगा कि मेरे इस पहाड़ जैसे काम की कोई सार्थकता है या नहीं ? जहाँ तक नामवर जी के संदर्भित कथन की बात है, मैं उसे नामवर जी के मेरे प्रति स्नेह और सद्भाव के रूप में ग्रहण करता हूँ, इससे अधिक नहीं।

आपके इधर कुछ एकल काव्यपाठ भी काफी चर्चित रहे। आप किसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण मानते हैं-श्रोता को या पाठक को ?

दोनों को। मगर मेरे पैमाने के अनुसार उन्हें संवेदनशील और विभिन्न काव्यरूपों की भिन्न अपेक्षाओं के अनुकूल प्रपोर्शनेटली प्रबुद्ध भी होना चाहिए। यह भी ध्यान रखिये कि कवि की रचना सबसे पहले तो आत्मानंद के लिए ही होती है। मगर उसके बाद उसके अवचेतन में रचना की सार्थकता, उसकी सामाजिक सोख्यता और उसमें योगदान को लेकर अन्तर्मंथन चलता है जिसका सही उत्तर एक सजग पाठक या श्रोता से मिली प्रतिक्रिया ही दे सकती है। इसे जानने के लिए ही वह काव्यगोष्ठी या कविसम्मेलन में जाता है, अपनी रचना या किताब को किसी अच्छी पत्रिका में या किसी प्रकाशक से प्रकाशित कराना चाहता है। एक भावप्रवण सजग पाठक या श्रोता की मनोनुकूल प्रतिक्रिया उसके आत्मानंद का विस्तार करती है, जबकि वस्तुनिष्ठ आलोचना उसे यदि वह एक सावधान कवि है तो आत्मालोचन या आत्म-परिष्कार के अवसर सुलभ कराती है।

इस बीच लिखे गए आपके संस्मरण भी बेहद सराहे गए। इस विधा में आगे किन साहित्यकारों पर लिखने का इरादा है?

संस्मरण तो मैं सातवें दशक से ही लिख रहा हूँ। 'तुम्हारी स्मृति अच्छी है और तुम्हें संस्मरणों पर काम करना चाहिए', ऐसा मेरे तमाम मित्र कहते रहे हैं। अपने प्रारंभिक वर्षों में ही मुझे हिन्दी के शीर्षस्थ रचनाकारों का गहन सान्निध्य मिला है। पंत, महादेवी, अश्क, दिनकर, भगवतीचरण वर्मा, भवानी प्रसाद मिश्र, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', जैनेन्द्र, विष्णु प्रभाकर, भैरव प्रसाद गुप्त, मार्कंडेय, ठाकुरप्रसाद सिंह, धूमिल जैसे बहुत से नाम हैं जिन पर संस्मरण लिखना चाहता हूँ। फिलहाल मेरी प्राथमिकता में गुजर गये कीर्ति-स्तम्भ हैं। अपने समकालीनों पर बाद में काम करूँगा।

लेकिन 'पाखी' के 'ज्ञानरंजन-केंद्रित विशेषांक' में आपका संस्मरणात्मक लेख ज्ञानरंजन पर आया है।

लेकिन वह संस्मरण नहीं है। वहाँ ज्ञानरंजन के कथाकार को फोकस में रखा गया

है। एक अलग शैली में। स्मृति का हल्का संस्पर्श देते हुए। उसे सम्पादक के बड़े दबाव के कारण जल्दी में दो दिन में लिखा गया था। अवचेतन में यह बात भी रही होगी कि ज्ञानरंजन से दीर्घकालीन सम्बंधों के चलते उनके सम्मान के अवसर पर जारी विशेषांक के लिए लिखने से उसमें एक बूंद योगदान मेरा भी हो जाएगा। वैसे मैं कहानी का कोई आधिकारिक आलोचक नहीं हूँ और इस रूप में उसे आप मेरा पहला आलेख मान सकते हैं।

तो आपकी नजर में एक संस्मरण के लिए क्या बात जरूरी होनी चाहिए ?

जरूरी है कि जिस पर संस्मरण लिखा जा रहा है उसके कृतित्व और व्यक्तित्व के पहलुओं पर बात की जाए, न कि उसके बहाने आत्म-मुग्धता में बहकर खुद को प्रोजेक्ट किया जाए।

आपकी किताबों में भूमिकाएं एक अनिवार्यता की तरह नजर आती हैं। क्या इन्हें आप रचना और पाठकीय आस्वाद के बीच बाधा के रूप में नहीं देखते हैं ?

आप शायद उन आठ-दस लम्बी भूमिकाओं की बात कर रहे हैं जो विगत डेढ़ दशकों की अवधि में प्रकाशित पुस्तकों में आईं। बीसवीं सदी में प्रकाशित मेरी किताबों में अधिकतम दो-चार पृष्ठों की ही भूमिकाएं थीं। दिल्ली आने के बाद जो किताबें आईं उनमें भी कुछ तो बड़ी संक्षिप्त हैं। 'हँसो बतर्ज रघुवीर सहाय' और 'इस्तरी' की तो क्रमशः पांच और सात वाक्यों की ही हैं। सूचनापरक। खैर, अब आप जिन लम्बी भूमिकाओं को बाधक मानते हैं या किसी भी लेखकीय भूमिका को रचना और पाठकीय आस्वाद के बीच बाधा मानते हैं तो यह आपका दृष्टिकोण है। मैं उन्हें इस रूप में नहीं देखता। एक रचनाकार के द्वारा लिखी गई अपनी किताब की भूमिका उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि, रचना प्रक्रिया और उसकी आलोचकीय दृष्टि को भी व्यक्त करती है। मेरी लम्बी भूमिकाओं को आलोचकों ने महत्त्वपूर्ण माना। लेकिन यदि किसी पाठक को लगता है कि भूमिका गैरजरूरी है तो उसे भूमिका को छोड़कर रचना की ओर बढ़जाने का पूरा अधिकार है। ऐसे कुछ पाठक मिले हैं जिन्होंने भूमिकाएं न पढ़कर केवल टेक्स्ट पढ़ा। कुछ ऐसे भी मिले जिन्होंने पहले टेक्स्ट पढ़ा, फिर भूमिकाएं। मगर तीसरी कोटि के सबसे अधिक पाठक हैं जो पहले भूमिका पढ़ते हैं, फिर टेक्स्ट। उन्हें लगता है कि मेरा विचारक जिस तरह उनमें अपने आत्मकथात्मक प्रसंगों को खोलता और जीवनसंघर्ष के साथ अपने समय व समाज को बिम्बित करता है, उससे उन्हें कविता के आस्वाद में ज्यादा मदद मिलती है। यहाँ आपको यह भी जोड़ना चाहिए कि हिन्दी के बड़े आलोचक शिवकुमार मिश्र ने मेरी भूमिकाओं के संदर्भ में ही कहा था कि इन्हें एकत्र करके पुस्तकाकार प्रकाशित करवा दूँ, तो यह एक महत्त्वपूर्ण काम होगा। उनका यही कथन 'सृजन की भूमि' नामक पुस्तक का आधार बना और आप देख ही रहे हैं कि इस पुस्तक की भी अच्छी चर्चा होने लगी है। जैसा आप सोच रहे हैं वैसा होता, तो पाठक इस किताब को खारिज करने में देर नहीं लगाते!

नाटकीयता आपके काव्य में कई जगह प्रभावी रूप में आती है। 'नाटकतंत्र तथा अन्य कविताएं' नाम से आपका एक काव्य संग्रह भी है और 'ब्लैकहोल' जैसा चर्चित काव्यनाटक भी आपने लिखा है। काव्य के प्रसंग में नाटकीयता को कैसे देखते हैं ?

देखिए, ऐसा है कि कविता अपनी ऊँचाई पर स्वाभाविक नाटकीयता लेकर आती

है। इसी तरह जब नाटक अपनी सर्वोच्च स्थिति में होता है तब उसमें कविता की अन्तर्धारा का प्रवाह दर्शक के दिलों में कल-कल निनाद कर रहा होता है। नाटक विधा के प्रति आकर्षण मुझमें प्रारंभ से था, इसे मैंने 'ब्लैकहोल' की भूमिका में कहा भी है।

'ब्लैकहोल' के बाद कोई और नाटक लिखने की योजना है ?

'ब्लैकहोल' मैंने कोई योजना बनाकर नहीं लिखा था। 'कश्मीर हमारा है' कभी इस शीर्षक से एक फुललैंग्थ प्ले लिखना चाहता था। यह वर्ष 1965 के आसपास की बात थी जब भारत-पाकिस्तान का युद्ध हुआ, लेकिन बात बनी नहीं। सिर्फ दो-तीन दृश्य ही लिखे जा सके। अभी इस तरह का कोई इरादा नहीं है। आगे कुछ हो जाए तो कह नहीं सकता।

कम लिखने वाले कम क्यों लिखते हैं ? हालांकि यह सवाल मुझे आपसे नहीं करना चाहिए, मगर फिर भी मैं चाहता हूँ कि आप इसका जवाब दें ?

वाकई आपको यह सवाल मुझसे नहीं करना चाहिए। मुझसे तो आपका यह पूछना सटीक होता कि ज्यादा लिखने वाले ज्यादा क्यों लिखते हैं! मगर जब आपने पूछ ही लिया है तो अपना विचार इस संदर्भ में बता सकता हूँ कि कम लिखने का अर्थ है कि आपमें फायर कम है। जिसमें अधिक आग होगी वही काम भी अधिक कर सकेगा। यह गुलेरी का समय नहीं है कि तीन कहानियां लिखकर आप महान हो जाएं। बहुत अच्छा लिखने का कोई फार्मूला नहीं है कि उसे अपनाकर आपने दो बहुत अच्छी कविताएं लिख दीं और महान हो गए! जरूरी है अनवरत लिखना। उसी अनवरत लेखन के बीच से ही कालजयी रचनाएं आती हैं। अगर बतौर रचनाकार आप यह नहीं कर सकते तब तो चर्चित होने का एक ही मान्यता प्राप्त फार्मूला है कि आप कोई शॉर्टकट अपनाएं और किसी ताकतवर ग्रुप को ज्वॉइन कर लें। इसके बाद और कुछ हो न हो, आपको साहित्य अकादेमी पुरस्कार तो जरूर मिल जाएगा और आप कबीर, सूर, तुलसी से लेकर आधुनिक युग के निराला और मुक्तिबोध से भी अधिक महान कवियों की सूची में अपना नाम शुमार करा लेंगे!

हिन्दी में बहुत सारे कवि/लेखक आपका नाम लेने से बचते हैं ?

पता नहीं किन लोगों की बात आप कर रहे हैं ? और जिनकी कर रहे हैं उन्हीं से आपने यह क्यों नहीं पूछा कि आप उद्भ्रांत का नाम लेने से क्यों बचते हैं" मुझे लगता है कि आप सामान्य बातचीत में नहीं, समकालीन कवियों द्वारा लिखी जा रही आलोचना में मेरे काम पर तवज्जो न दिये जाने का संदर्भ ले रहे हैं। असल में मुझे लेकर बहुत सारे भ्रम हिंदी जगत में व्याप्त हैं। किसी के लिए मैं सिर्फ गीतकार हूँ जोकि वस्तुतः मैं सातवें दशक में था। शायद, सातवें दशक में दो-चार अच्छे गीत लिख, गद्य कविता के अपेक्षाकृत आसान रास्ते को पकड़ और थोड़ा लिखकर प्रतिष्ठा अर्जित करने वाले मेरी ही पीढ़ी के कवि, दैवप्रदा आयु-वार्धक्य के चलते स्वयं को वरिष्ठ मानते हुए साथ रखने में संकोच करते होंगे। समकालीन रचनाकारों में वैसे भी इतना ईर्ष्या-द्वेष है कि वे दूसरे समकालीन की चर्चा करने की उदात्त भावना नहीं रखते। उन्हें लगता है कि ऐसा कर वे छोटे हो जाएंगे! अभी जिन संदर्भित कवि की बात आप कर रहे थे, उनकी टिप्पणी के मूल में यही भाव हो सकता है। सातवें दशक में मेरी छंदमुक्त समकालीन कविताएं परिमाण में कम होने और नवगीत आंदोलन में मेरी अधिक चर्चा के कारण पृष्ठभूमि में चली गईं। आठवें दशक के मध्य में आये 'नाटकतंत्र तथा अन्य कविताएं' ने पहले पहल समकालीन कवि के रूप में पहचान दी। इस कारण गीत से वास्ता न रखने वाले आठवें दशक के हमउम्र कवि मुझे अपनी पीढ़ी का समझने लगे! उन्हीं में से कुछ ऐसे भी हैं जो बाद में पुरस्कारादि की तिकड़मों से प्रतिष्ठित हुए उनका अहंकार किसी वरिष्ठ कवि की चर्चा क्यों करेगा ? जबकि इस तथ्य को सभी जानते हैं कि वरिष्ठता रचनाकर्म की होती है आयु की नहीं! चूंकि मैंने अकादेमी पुरस्कार की दौड़ से स्वयं को अलग रखा, इसलिए ऐसे लोग स्वयं को श्रेष्ठ मानने के मुगालते में भी रहे। समकालीन आलोचना पर भी इन्हीं का दबदबा रहा। तो अगर ऐसे या इनसे सम्बंधित लोग मेरा नाम लेने से घबराते हैं तो इसमें ताज्जुब की क्या बात' लेकिन इस सबके बावजूद कुछ वरिष्ठ और प्रतिष्ठित आलोचकों ने मेरे काम पर इधर दृष्टि डाली है और मुझ पर केन्द्रित कई आलोचना-पुस्तकें भी आईं हैं। अब ये सब भीतर ही भीतर बहुत हैरान-परेशान हैं। ऐसे लोगों के साथ मेरी कभी कोई प्रतिद्वन्द्विता नहीं थी। पता नहीं वे ऐसा क्यों करते रहे' आप जानते हैं कि इन लोगों के द्वारा किसी का नाम लेने न लेने से उसका कुछ नहीं बनता-बिगड़ता। अंततः आपका काम ही आपको बनायेगा। 15 वर्ष पहले अशोक वाजपेयी की उपस्थिति में नामवर जी ने कहा था-''उद्भ्रांत जी को मेरे या अशोक वाजपेयी के प्रमाणपत्र की जरूरत नहीं है।'' हिंदी का सबसे बड़ा आलोचक यह कह रहा है और आप पता नहीं किनकी बात कर रहे हैं!

आपकी काव्य पंक्तियां हैं-'कविता लिखने वाले मेरे दोस्तो! मुझे माफ करना। मैं इस बीच। कोई कविता नहीं लिख सका।' वह कौन-सा समय था, जब आप कविता नहीं लिख सके ?

आठवें दशक के शुरू में जब मुझ पर नक्सलवादी प्रभाव पड़ा। तब लगा कि कविता करने का कोई अर्थ नहीं है। ऐक्टिविस्ट होना अधिक जरूरी लगता था। 'नाटकतंत्र' की कविताएं उसी दौर की हैं। 'अपने को काटते हुए', 'कविता के विरूद्ध' ये कविताएं कविता लिखने के खिलाफ थीं। उस समय मैंने पहली बार कविता के लिए 'काठ की बंदूक' का मुहावरा इस्तेमाल किया था। लेकिन बाद में भी कई बार ऐसा हुआ कि कविता लिखना स्थगित होता रहा। जब आपातकाल लगा, पूरे 19 महीने तक मैंने कोई कविता नहीं लिखी। संवेदना जैसे कुंद हो गई थी। भीतर से कविता उठी ही नहीं। आपातकाल की समाप्ति के कोई महीने भर बाद मैंने 'जमाने बाद की कविता' लिखी, जिसे तीन अन्य कविताओं के साथ सुधीर सक्सेना ने 'अभी' के प्रवेशांक में 'विशिष्ट कवि' स्तम्भ में सोमदत्त की टिप्पणी और कवि-वक्तव्य के साथ प्रकाशित किया था। अपने वक्तव्य में मैंने उस लम्बी अवधि में कविता न लिख पाने की स्थिति का विश्लेषण किया था। उसी कविता से ये पंक्तियां आपने उठाई हैं। इन सभी कविताओं को मेरे संग्रहों 'क्या शब्द कम ताकतवर है' और 'काली मीनार को ढहाते हुए' में देखा जा सकता है। मगर यही नहीं, मेरी अब तक की कविता यात्रा में अन्य-अन्य कारणों से लम्बे अंतरालों के लिए कम से कम चार बार कविता लिखना स्थगित रहा है। इधर पिछले तीन, साढ़े तीन सालों से कविता फिर पास नहीं आ रही। जो किताबें प्रकाशित हुई हैं, सब पहले की हैं।

और अंत में एक सवाल और आप अपने आलोचक से क्या चाहेंगे ?

मेरी कोई विशेष माँग नहीं है। मैं बस यह चाहता हूँ कि किसी भी रचनाकार पर बात करने से पहले उसे समग्र रूप से पढ़ा जाए। मेरे काम की पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर संजीदगी, ईमानदारी और विवेकपूर्ण पड़ताल हो। इसके बाद यदि किसी आलोचक को लगता है कि मैं कमजोर या साधारण कवि हूँ और अपनी बात को वह विश्वसनीय तर्कों से पुष्ट करता है, तो विश्वास करें कि मुझसे अधिक खुशी किसी को नहीं होगी। लेकिन यदि वह मेरे रचना-कर्म में बिना समग्ररूपेण उतरे, अपने मनोनुकूल रंग में आविष्ट हो कोई राय कायम करता है, तब वह न तो अपने आलोचकीय दायित्व के प्रति और न ही कवि के प्रति नैतिक व न्यायपूर्ण रह पायेगा। और निश्चय ही ऐसे आलोचक को वक्त बहुत जल्द इतिहास के श्मसान में दफना देगा।

रेखांकित

प्रदीप सैनी की कविताएँ

आज का युवा कवि अपने समकालीन संदर्भो, समय, राजनीति और सबसे अधिक बरती जा रही भाषा के छुपे अर्थो के प्रति कितना सजग है यह युवा कवि प्रदीप सैनी की इन कविताओं से जाना जा सकता है। प्रदीप अपने समय के उथले और उजागर संस्तरों को भेदकर भीतर तक प्रविष्ट होते हैं और वहाँ से उस मंशा चीन्ह कर रेखांकित करते हैं जो घटित समय की मंशा है। ऐसा पैना और सजग व्यवहार प्रदीप की कविताओं को अधिक प्रासंगिक और साथ ही उत्तरदायी भी बनाता है-एक विश्वसनीयता के साथ जिसमें हम घटित होते समय को बहुत साफ तौर पर देख पाते हैं। पहली ही कविता 'खतरा-कुछ नोट्स' इसका बेहतर उदाहरण है जहाँ युवा कवि अपने समय पर मंडराते खतरों के आंतरिक स्वरूप को पहचानने की सार्थक कोशिश करता है। उसे पता है कि खतरे तो हैं और होंगे उन्हें चीन्हने का हुनर बहुत जरूरी है ताकि अज्जाने में ही आप उसके शिकार न हो जाएँ-'इस वक्त जब ज्यादा जानकर होते हुए/ कम समझदार होती जा रही है दुनिया/ सबसे जरूरी हो गया है/ खतरा पहचान लेने का हुनर।' 'संवाद जरूरी है दोस्त' जैसी छोटी कविता में वे समाज की विषमताओं और संस्तरों के फर्क को तो समझते ही हैं उनमें परस्पर संवाद की जरूरत को भी जरूरी मानते हैं क्योंकि 'टिफिन कैरियर' जो कि सर्वशक्तिमान सत्ता का प्रतीक है, उसने किसी को भी बख्शा नहीं है। दिलचस्प और रेखांकित करने योग्य यह कि यहाँ निराशा भाव नहीं है एक संवादात्मक उम्मीद है- यूँ मत इतराओ/ हमसे बात करो'। यह आततायी के विरूद्ध एक योजना की तरह है। 'साइबर कैफे में तिब्बती लड़की' कविता में युवा कवि प्रदीप सैनी ने तिब्बतियों के एकाकीपन और उदासी को मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त किया है-'मुश्किल ही है मगर यहाँ से बाहर/ उसे सुन पाना/ एक खामोशी है जो उसकी आवाज में शरणार्थी है।' प्रेम को लेकर इस युवा कवि ने जो कविताएँ लिखी हैं उनमें बिम्बों की ताजगी, संवेदनों की गर्माहट और भाषा की रवानगी है। 'प्रेम','तुम्हारी याद', 'हम सिर्फ रीमिक्स सुनते हैं','तुम्हें चूमना','वाद्य यंत्र' ऐसी ही कविताएँ हैं। यहाँ रेखांकित करने योग्य यह है कि प्रेम को लेकर उनके भीतर अतिशय रूमानियत और भावुकता न होकर एक सघनता है जो एक तार्किक राह के जरिये कविता तक पहुँचती है। प्रेम एक कठिन और उत्तरदायी मार्ग है बिल्कुल पहाड़ चढ़ने जैसा। तो यह युवा कवि पर्वतारोही और आधार शिविर के हवाले से प्रेम के स्वरूप और उसकी उदात्तता को स्पर्श करता है। इनमें कहीं प्रेयसी की याद एक नवजात मेमना है जिसे कवि गोद में लिए आगे बढ़रहा है। 'रीमिक्स' वाली कविता में कवि ने एक मामूली-सी घटना का दृश्य रचा है। एक ही ईयरफोन के दो सिरों से सुना जा रहा संगीत प्रेम,सद्भाव और साहचर्य की अनूठी जुगलबंदी बनकर पाठकों के भीतर उतरता है-'इस तरह हम बाहर के शोर में/ अपने ही संगीत का/ दूसरे कान द्वारा किया गया रीमिक्स सुनते हैं।''तुम्हें चूमना' जैसी कविता में वे यह करतब करते हैं कि प्रेम को दैहिक अनुभूति की अनिवार्यता से एक अलौकिक अनुभव तक लाते हैं।'चूमने में शामिल सिर्फ देह ही नहीं होती' जैसी सार्थक पंक्ति के जरिये वे दो व्यक्तित्वों की पारदर्शिता और सच को उद्घाटित करने का अनूठा काम करते हैं। बहुत दिनों बाद प्रेम को लेकर इतनी सघन और ताकतवर कविताएँ पढ़ने को मिलीं। 'वाद्ययंत्र' कविता भी इसी क्रम में एक अच्छी कविता है। 'मचान पर बंदर और हुसैन की सरस्वती' एक भिन्न तेवर की कविता है जिसमें चित्रकार हुसैन के दुर्भाग्यपूर्ण निर्वासन और फिरकापरस्ती पर गहरा कटाक्ष है। यह एक प्रतिबद्ध कवि का स्वर है। यहाँ कवि की राजनीतिक सजगता के स्पष्ट दर्शन होते हैं। कविता के क्लाईमेक्स में वे एक पंक्ति में कुछ कटाक्ष तो कुछ 'विट' के साथ मानो सारे विवादों को धुएँ में उड़ा देते हैं। कवि का यह उपहास समूची साम्प्रदायिक सोच का एक ताकतवर प्रतिरोध है। 'भाई जागो' इस समय की एक प्रासंगिक कविता है जब दक्षिणपंथी ताकतें शहरों के नाम बदलने की बेशर्म कवायद कर रही हैं। 'सामने मील के पत्थर पर/ एक अनजान-से नाम के नीचे/ शून्य लटक रहा है' जैसी प्रभावी पंक्तियों के जरिये वे जनता को आसन्न खतरों के प्रति आगाह करते हैं। यही बात'रंग' कविता में भी है जहाँ कवि भगवा या हरे को सच के ऊपर पुता पाते हैं। 'संवारना' एक अत्यंत मार्मिक कविता है जिसमें चोटी गूँथती माँ-बेटी के दृश्य को कविता में इस तरह जीवंत किया है कि वह परंपरा, ममत्व और आनुवंशिकी का एक मार्मिक सच बन जाता है। प्रदीप सैनी इस दौर के महत्वपूर्ण युवा कवि हैं जिनके पास सचेत काव्य संवेदना और मितभाषी काव्यभाषा की ताजगी है। इनका सार्थक 'रीमिक्स' प्रदीप की कविताओं को विशिष्ट बनाता है।

निरंजन श्रोत्रिय

खतरा : कुछ नोट्स

खतरा कैसा भी हो
इतना नया कभी नहीं होता
इतिहास में कि उसका जिक्र न मिले
पहचान कर पाना लेकिन
मुश्किल ही होता है हर बार
खतरा बहुरूपियों की तरह बदलता है रंग ढंग
फिर बाजार की हजार खामियों के बावजूद
ये बात तो है ही कि यहाँ
हर चीज कई रंग रूपों में होती है उपलब्ध
इस वक्त ज्यादा जानकार होते हुए
कम समझदार होती जा रही है दुनिया
सबसे जरूरी हो गया है
खतरा पहचान लेने का हुनर

यूँ तो कहीं भी मौजूद हो सकता है वह
संभावनाएँ कम ही होती हैं वहाँ
उसके होने की जहाँ
लगाई जाती हैं अटकलें
उस पर नजर रखने के लिए
वहाँ गौर से देखना चाहिए
जहाँ से खड़े होकर
बार-बार दूसरी तरफ इशारा करता है
उसे पहचान लेने का
दावा करने वाला विशेषज्ञ
उस आवाज में भी हो सकता है
शामिल वह
उसके बारे में बड़ी एहतियात से जो
कर रही है दुनिया को आगाह

वह खानाबदोश
लगातार बदलता है डेरा
फिलहाल खबर है कि उसने
अपना रूख
सबसे पवित्र माने जाने वाले
ठिकानों की ओर कर लिया है

और सबसे बड़ा खतरा
नहीं ढूँढना होता है इधर-उधर
वह हमेशा भीतर ही छुपा होता है।

कविता के जिक्र बिना
नहीं हो सकती ये बेतरतीब बातें पूरी
कम खतरनाक नहीं होती
कविता वह लिखता है जिसे
एक सुरक्षित कवि।

संवाद

ऊपर के डिब्बे में
रख दिए जाने भर से
साबित तो नहीं होता
तुम ज्यादा स्वादिष्ट या पौष्टिक हो
यूँ मत इतराओ
हमसे बात करो
सफर में संवाद जरूरी है दोस्त

हमें साथ-साथ एक हाथ
मुँह तक ले जाएगा
दाँतों के बीच
हममें फर्क करना मुश्किल होगा
मैं शायद पहले चबा लिया जाऊँ
या तुम ही निगले जाओ पहले
मत भूलो
अलग-अलग डिब्बों में होने के बावजूद
हम एक ही टिफिन कैरियर में बंद हैं।

साइबर कैफे में तिब्बती लड़की

वह आती है यहाँ बिला नागा
करती है चैट लिखती है ई-मेल कई
एक अलग दुनिया है उसके पास
होती है वह जिससे रूबरू
किसी लापता धुन पर
करती है घंटों रियाज
मुश्किल ही है मगर यहाँ से बाहर
उसे सुन पाना एक खामोशी है
जो उसकी आवाज में शरणार्थी है

कौन हैं वे
जिनसे इतना बतियाती है यहाँ
कि लगता है सुन पाते हैं वे उसे
साहस कर पूछ बैठता हूँ
चाबी-सी लगती है उसे मेरी उत्सुकता
खुलता है एक वर्जित द्वार
जिसके भीतर अपने लिए मिट्टी तलाशते
दुनिया भर में बिखरे उसके दोस्त हैं
जो तिब्बती में बोलते हैं मगर तिब्बत नहीं बोलते

बातों ही बातों में वह बताती है
इन दोस्तों की बदौलत
उसने घूमे हैं कई देश
नाम जिनके वह गिनाती है

मैं चाहता हूँ पूछना
उसने घूमा है क्या कभी तिब्बत
या कभी तिब्बत ही आ गया हो घूमने
उसके स्वप्न में कभी
मगर पूछ नहीं पाता
क्या जानती है वो
मिची-मिची-सी उसकी आँखों के अलावा
नक्शे में दुनिया के कहाँ है तिब्बत!

प्रेम- 1

इन दस बरसों में
सभी दस अंकों की एक संख्या में
तब्दील हो गए हैं
लगातार चल रहा है
असंख्य संख्याओं के बीच
जमा घटाव गुणा भाग
एक संख्या दूसरी से इतना बतियाती है
जैसे अभी इजाद हुई हो भाषा
खुदा का शुक्र था
जब हम मिले
संवाद कम चुप्पियाँ ज्यादा बोलती थी।

प्रेम- 2

उस वक्त मेरे भीतर
सिर्फ कविताएँ थीं
रगों में खून नहीं स्याही दौड़ती थी
और कविताएँ धीरे-धीरे ही सही
हमारे बीच पुल बन गई थी
उनसे होकर हम आ जा सकते थे
एक दूसरे के भीतर

कविताएँ तुम भी लिखती थीं
अब नहीं लिखती होगी
सफेद पड़ चुके हल्के गुलाबी रंग वाली
स्मृतियों के साथ
उन्हें भी छोड़ दिया होगा तुमने
जैसे दुर्गम पहाड़ों पर चढ़ने से पहले
पर्वतारोही आधार शिविर में छोड़ देता है
अगले सफर के लिए गैर जरूरी हो गया
बहुत सा सामान।

तुम्हारी याद

एक राह है
जिसका मुकाम
मेरे हौसले की उम्र है

साथ चली आई
यादों का रेवड़ हांकता है मुझे

सबसे प्यारा
नवजात लड़खड़ाता हुआ
पीछे छूट गया मेमना है तुम्हारी याद

मैं उसे गोद में उठाए आगे बढ़रहा हूँ

हम सिर्फ रीमिक्स सुनते हैं

तुम्हें अच्छा लगता है यूँ
पास-पास बैठ कर जब हम
एक ही ईयरफोन पर
साझा करते हुए गीत
लगा लेते हैं अपने एक कान में
ईयरफोन के अलहदा सिरे
यह आबिदा परवीन गा रही है
जो ऐसी बारिश का नाम है
जिसमें रूह हो तन पर भींज जाते हैं हम
कुछ ही देर में ये आवाज दूर होती जाती है
यह खालिस हुनर की खामी कह लें
वह बाँध नहीं सकता बहुत देर
और आपको भीतर की ओर
धकेल देता है।

अब कोई दूसरी आवाज है
जो सुन रहा हूँ मैं
यह इस समय के वर्जित शब्दों से
लबरेज एक गीत है
कहना मुश्किल है कि इसे
आत्मा गा रही है या देह
संगीत कुछ जाना-पहचाना-सा
मालूम होता है
गौर से सुनने पर ही जान पाता हूँ
हम दोनों की जुगलबंदी है यह तो

एक ही ईयरफोन पर एक साथ
उसे सुन रहे हैं हम एक कान से
हमारा दूसरा कान बाहर का शोर सुनता है

मैं सोचता हूँ कि तुम
इस वक्त क्या सुन रही हो
तुम्हारा सुना हुआ मेरे सुने हुए से
जुदा ही होगा
और रचे जा रहे से अलग तो
यकीनन ही
इस तरह हम बाहर के शोर में
अपने ही संगीत का
दूसरे कान द्वारा किया गया
रीमिक्स सुनते हैं।

न जाने क्या था

रंग लालच का तेज धूप वाले दिन हरा था
उस तरफ मैं अनजान तुम्हारे मौसमों से
खिंचा चला आया अचानक
बारिश में घिर गया था

कोई नहीं था जो आगाह करता
वैसे छाता भी मेरा पिछली
किसी बरसात में बह गया था

हर मैदान में भींजते
तर-बतर हुए बछड़े की तरह मैं
मासूम लग रहा था
जो घास खाना और घर लौट जाना
दोनों भूल गया था

धुल गए रंग जिसमें सभी धीरे-धीरे
ऐसी बारिश का रंग न जाने क्या था।

इस तरह

दुनियादारी से ताल मिलाते ही
प्रेम की लय से भटक जाता हूँ मैं
ऐसा ही कोई लम्हा होता है जब
गिरते हुए सुर को पकड़ने के लिए
जिन्दगी से बाहर छलांग लगा सकता है
कोई सच्चा साधक
लौट आता हूँ लेकिन मैं
मुहाने तक जा कर हर बार
प्रेम को करता हूँ थोड़ा और बेसुरा
और जीवित बचा रहता हूँ

ठीक कहती हो तुम कि दुनियादार हूँ मैं।

तुम्हें चूमना

शब्द कहते हैं जितना
छिपाते हैं उससे अधिक
वे छल के सबसे धारदार हथियार हैं

भाव भंगिमाएँ भी
कतई विश्वसनीय नहीं
वे तो छलती आई हैं तब से
पैदा भी जब हुए नहीं थे शब्द

और देह
उसका अपना है दर्शन
व्यापार अपना
गोरखधंधा इतना अजब कि
इस भूलभुलैया में क्या मालूम
कोई राह कहीं पहुँचे भी या न पहुँचे

इस सबके बीच
मूक होकर भी
कितना मुखर है तुम्हें चूमना
बता देता है बहुत कुछ
और पारदर्शी इतना
देख सकते हैं हम
एक-दूसरे के भीतर का सच

चूमने में शामिल सिर्फ देह ही नहीं होती।

वाद्य यंत्र

आप में बजता है कभी
आनंद के चरम का संगीत
कभी गहरी उदासियों की धुन

कभी किसी पंछी के पंख
फड़फड़ाते हैं आपके भीतर
कभी गहरे पानी में डूबते हुए
किसी पत्थर की खामोशी गूंजने लगती है

आप जब नींद में होते हैं
तब भी खामोश नहीं होता संगीत
कोई आदिम धुन
आपके सपनों का रास्ता तलाशती है

प्रेम
आपको एक वाद्य यंत्र में तब्दील कर देता है।

नदी का पर्व

उसे निहारता है वो
उतारता है अपने भीतर
फिर उतर जाता है नदी में

वो मेरी सुबह खूबसूरत बना रहा है
जो नहा रहा है नदी में

आज नहीं है कोई पर्व
या किसी स्नान का महात्म्य
और इस नदी का भी तो
नहीं है कोई नाम

उसके लिए नदी नहीं है कोई नाव
बैठ जिसमें वो चाहता हो करना वैतरणी पार

वो तरोताजा कर रहा है खुद को
एक ऐसी लड़ाई के लिए
जो रोज लड़ी जा रही है
और कहीं दर्ज नहीं होती

खुद को और नदी को
दे रहा है भरोसा
कि बचा है अभी उनका बहाव
खुशी में दौड़ पड़ी है नदी
दोगुने जोश में
पाकर उसके पसीने से
अपने हिस्से का खारापन।

मचान पर बंदर और हुसैन की सरस्वती

उन्हें नापसन्द है
हमारी अर्थव्यवस्था का ढंग
हमारी स्मृतियों का रंग

वे इतिहास को सम्पादित कर रहे हैं।

उन्हें एतराज है
हमारे सपनों की गंध पर
पहनावे की पसंद पर

वे तय कर रहे हैं पाठ्यक्रम
अपनी तरह ही सभ्य बनाने पर हैं तुले

एक इमारत की तरह
हमारे समूचे वर्तमान को ध्वस्त कर
उसके अवशेषों पर वे
भविष्य की नींव रखना चाहते हैं

अपनी पूँछ में आग लगा
खाक कर देने को आतुर हैं वे
हमारी आजादी का लहराता परचम

जिस मचान से की जानी थी
उन पर निगरानी
इस वक्त उस मचान के
ठीक ऊपर हैं वे
पर बंदर क्या जाने
मचान में नहीं होता
टहनियों का लचीलापन
कि मोड़ लें जिधर चाहें

वे गिरेंगे मचान से
उछलकूद करते
मुँह के बल
और बहुत दिनों बाद हँसेगी
हुसैन की सरस्वती।

भाई जागो

किवाड़ खोलो
देखो कि अनजान कुत्ते ने
तुम्हारी दहलीज से
दोस्ती कर ली है
चौक पर कोई नया बुत खड़ा है
जो आने-जाने वालों पर
निगाह रखे हैं।

सामने मील के पत्थर पर
एक अन्जान-से नाम के नीचे
शून्य लटक रहा है

भाई जागो
तुम्हारे शहर का नाम बदल गया है।

रंग

वे तय कर रहे हैं
बचे रहने के लिए
हर भारतीय को
कितना हिन्दू होना होगा
और तिरंगे को कितना भगवा

इस वक्त
जब उनकी नजर में
उनका मत एकदम खरा है
यह भी सच है
इस मिट्टी पर कहीं ओर
जुनून का रंग हरा है

भगवा हो या हरा
रंग बहकाते हैं भटकाते हैं
सच के ठीक ऊपर
पोते जाते हैं।

संवारना

बेटियों के बाल
जब भी संवारती हैं माँएँ
संवरता है बहुत कुछ
उस एकांत में
होती है सिर्फ वे दोनों
एक दूसरे से बतियाती हुई

बालों में समा जाता है
सदियों का संचित रहस्य
सूत्र जो इतिहास में कहीं दर्ज नहीं
न किसी पाण्डुलिपि या शिलालेख पर
गुँथते चले जाते हैं बालों के साथ
इन्हीं से साधती हैं बेटियाँ जीवन
और फिर गूँथ देती हैं
बेटियों के बालों में माँ बनकर। स

नाम : प्रदीप सैनी
जन्म : 28 अप्रैल 1977, कोलर, जिला सिरमौर, हिमाचल प्रदेश
शिक्षा : विधि स्नातक
सृजन : कुछ कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, आकाशवाणी-दूरदर्शन केंद्र शिमला से प्रसारित।
सम्प्रति : वकालत
सम्पर्क : चैम्बर नंबर 145, कोर्ट कॉम्प्लेक्स, पटि साहिब, जिला सिरमौर,
हिमाचल प्रदेश-173025
मोबाइलः 9418467632, 7018503601
ई-मेलः sainik.pradeep@gmail.com

क़मर मेवाड़ी

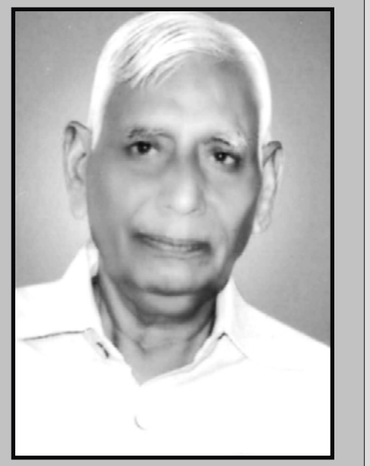

जन्म : 11 जुलाई, 1939, कांकरोली, राजसमंद (राजस्थान)
प्रकाशन : 8 मार्च, 1959 के साप्ताहिक हिन्दुस्तान में पहली कहानी प्रकाशित। तब से अब तक अनेक महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में नियमित प्रकाशन, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से प्रसारण।
प्रमुख कृतियां : कहानी संग्रह रोशनी की तलाश (1976), लाशों का जंगल (1977), उसका सपना (1990), ऊँचे क़द का आदमी (1999), जिजीविषा और अन्य कहानियाँ (2012), चुनी हुई कहानियां (2017), वह एक (1974) उपन्यास, चाँद के दाग (1970), आखिर कब तक : एक लंबी कविता (1973), बहस अभी जारी है (1977), फैसला होने तक (1993), तुम्हारे नाम (2017) कविता संग्रह, संस्मरण यादें (2019)।
अनुवाद : अंग्रेजी, उड़िया, उर्दू, राजस्थानी, मराठी तथा पंजाबी भाषा में रचनाएँ अनूदित।
संपादन : हिन्दी की साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका 'सम्बोधन' का 1966 से 2016 तक संपादन। 'मैं और मेरी यादें' हिन्दी के महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों के दिलचस्प संस्मरण।
विशेष : * दूरदर्शन (नेशनल) द्वारा कहानी ऊँचे क़द का आदमी' टेलीफिल्म। * विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, क्षेत्रीय कार्यालय, भोपाल के सौजन्य एवं जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर में कहानियों पर पी-एच.डी. एवं एम.फिल. के लिए शोध कार्य। * दो बार राजस्थान साहित्य अकादमी के सदस्य और दो बार आकाशवाणी सलाहकार समिति उदयपुर के सदस्य मनोनीत।
सम्मान : राजस्थान साहित्य अकादमी के डॉ.रांगेय राघव कथा पुरस्कार तथा विशिष्ट साहित्यकार सम्मान, राजरत्न पुरस्कार, राष्ट्रीय हिन्दी सेवी सहस्राब्दी सम्मान, जिला कलेक्टर द्वारा साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान, बोहरा जीनियस अवार्ड, 'समय माजरा' सम्मान, डॉ.घासीराम वर्मा पुरस्कार, देवेन्द्र स्मृति पुरस्कार, प्रकाश जैन लहर साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान सहित दो दर्जन से अधिक महत्त्वपूर्ण सम्मपान एवं पुरस्कार प्राप्त।

संपर्क : 'सम्बोधन', चांदपोल, कांकरोली, राजसमंद-313324 (राजस्थान)
मो.09829161342, 9413671342
ई-मेल : qamar.mewari@gmail.com

आत्मकथ्य

'सम्बोधन' के साथ-साथ चलते हुए...

क़मर मेवाड़ी

11 जुलाई, 1939 को कांकरोली जैसे एक सुरम्य कस्बे में जन्म लेने के बाद इसी धरती पर पला-बढ़ा और परवान चढ़ा। कांकरोली प्रकृति की गोद में अवस्थित राजसमन्द झील के किनारे बसा राजसमंद जिले का एक महत्त्वपूर्ण कस्बा है। कस्बे में एक ओर वैष्णव सम्प्रदाय का प्रमुख तीर्थ स्थल द्वारकाधीश का मंदिर है तो दूसरी ओर प्रसिद्ध राजसमंद झील। झील के बांध पर बनी नौ चौकियां और संसार का सबसे बड़ा प्रस्तर महाकाव्य (शिला लेख) यहीं पर है। यह महाकाव्य सफेद संगमरमर पर अंकित है। संगमरमर की खानों के कारण राजसमंद आज एक समृद्धशाली इलाका बन गया है। कांकरोली से 4 कि.मी. की दूरी पर एशिया का एक महत्त्वपूर्ण टायर प्लांट जे.के.इन्डस्ट्री है तो 15 कि.मी. दूरी पर एक और धर्म स्थल नाथद्वारा। कांकरोली से 30 कि.मी. दूर राजसमंद जिले में ही इतिहास प्रसिद्ध हल्दी घाटी स्थित है जहां महाराणा प्रताप के आन-बान और शान की गाथा कण-कण में रची बसी है। आप कभी यहाँ आयें तो प्रताप के स्वाभिमान की खुशबू यहां की हवाओं में तैरती हुई महसूस करेंगे।

यह इतनी पवित्र धरती है कि मृत्यु के बाद यदि पुनः जन्म लेना पड़े तो मैं इसी मिट्टी में पैदा होना पसंद करूंगा।

अपनी जिंदगी की शुरूआत में स्वाधीनता प्रेमी और क्रांतिकारी विचारों वाले गुरुदेव के बाद जो गुरु मिले वे एक प्राईवेट स्कूल चलाते थे। उन्हीं से हिन्दी और उर्दू का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त किया। लेकिन जब मैं सरकारी स्कूल में भर्ती हुआ और तीसरी कक्षा का छात्र था तब वे भी वहां अध्यापक बनकर आ गये और मेरी जान के दुश्मन बन गये। लुका-छिपी और भागम-भाग के बाद मेरी हिन्दी की पढ़ाई समाप्त हो गयी और मुझे मदरसे में दाखिल करवा दिया गया। पांच साल मदरसे की पढ़ाई खत्म होनें के बाद जब मैं वापिस स्कूल में गया तो फिर तीसरी कक्षा में ही प्रवेश मिला। इस प्रकार जब मैंने मैट्रिक पास किया तब तक पुराने साथी बी.ए. और एम.ए. पास कर चुके थे।

वर्ष 1959 का मेरे जीवन में अत्यधिक महत्व है। इसी वर्ष मैंने मेट्रिक पास किया। इसी वर्ष मेरी प्रथम कहानी 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित हुई। इसी वर्ष मैंने एक ठेकेदार की कश्ती को राजसमद्र की लहरों के सिपुर्द कर दिया जो पानी में डूबने से बच गयी और जेल जाने से। इसी वर्ष मैंने एक प्यारी सी लड़की से प्यार किया और उसे खो दिया। इसी वर्ष शिक्षक की नौकरी आरंभ की जो 1997 तक जारी रही।

हां, तो हरि बाई से जिस मां ने मुझे चांदी के एक सिक्के के एवज में खरीदा था वह इतनी प्यारी, सहृदय और दयालु थी कि दुनिया में मुझे उससे प्यारा और अच्छा आज तक कोई दिखाई नहीं दिया। आज भी जब उसकी स्मृति में ये पंक्तियां लिख रहा हूं तो मेरी आंखें नम है।

लोग मुझे गुस्सैल, घमण्डी, लड़ाकू और न जाने किन-किन विशेषणों से विभूषित करते हैं। लोग कहते हैं कि गुस्सा तो क़मर मेवाड़ी के नाक पर ही बैठा रहता है। एक भद्र महिला ने तो इराक युद्ध के बाद मेरा नामकरण ही सद्दाम हुसैन कर दिया।

लेकिन बात ऐसी नहीं है। जितना गुस्सैल हूं उससे ज्यादा भावुक एवं संवेदनशील भी। किताब पढ़ते, पिक्चर देखते, समाचार या किसी दुखद घटना का वृत्तांत सुनते आंखों से आंसू निकल पड़ना मामूली बात है।

मां हर रात सोते वक्त हम दोनों भाइयों को नित नई कहानियां सुनाया करती थी उसी का परिणाम था कि क्लास की खाली पीरियड में मैं साथी छात्रों को कहानियां सुना-सुना कर उनका जिगरी दोस्त बन गया था। मां की सुनाई कहानियों और पिताजी के बक्से में रखी चंद्रकांता संतति, हातिम ताई, अमीर हमजा, किस्सा तोता-मैना, और किस्सा साढ़े तीन यार का पढ़ते-पढ़ते मैं कम उम्र में ही बालिग़ हो गया।

पिताजी को याद करते हुए आज भी रूह कांपती है, जबकि वे आज मौजूद नहीं हैं। आप शायद इसे अतिश्योक्ति समझें लेकिन यह हकीकत है कि पिताजी ने मुझे इतना ज़लील किया कि शायद दुनिया में किसी बाप ने अपने किसी बेटे को इतना अपमानित नहीं किया होगा। एक बार तो उन्होंने चोर की तरह दोनों हाथ बांधकर मुझे पूरे कस्बे में घुमाया। क्या आप में से किसी के साथ ऐसा हुआ? नहीं न। लेकिन यह तो सिर्फ एक नमूना है ऐसे तो पचासों किस्से हैं। वे फिर कभी।

आज यह अहसास हो रहा है कि पिताजी ने किसी स्कूल-मदरसे में पढ़ाई नहीं की फिर भी हिन्दी और उर्दू की किताबें पढ़ते थे। महात्मा गांधी के परम भक्त थे। सफेद झक्क कुर्ता, पैजामा और उनसे भी झक्क सफेद दाढ़ी और गांधी टोपी में वे किसी नेता से कम नहीं लगते थे। उनका व्यक्तित्व आकर्षण था। उनकी वाणी सैकड़ों लोगों को प्रभावित करती थी और समाज में उनका बड़ा दबदबा था। अब लगता है कि वे मुझे भी अपनी तरह बनाना चाहते थे और मैं था कि किसी और ही मिट्टी का बना था जो उनके अनुसार ढल नहीं पा रहा था। खैर। पढ़ने का शौक मुझे उर्दू से हिन्दी में लाया। 'शमा' और 'बीसवीं सदी' तो कई लोग मंगवाते थे लेकिन 'शाहराह और 'जमालिस्तान' जैसे अदबी रिसालों का कांकरोली में मैं अकेला ग्राहक-पाठक था। 'जमालिस्तान' में उन दिनों मंटो के अफसाने और नाविल शाया होते थे। मंटो साहित्य ने मुझे पढ़ने के लिए प्रेरित किया। बाद में 'माया' और 'मनोहर कहानियां' भी मेरी प्रिय पत्रिकाओं में शामिल हो गयी।

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में कहानी छपने के बाद मेरा लिखने का उत्साह बढ़ा और अनेक पत्र-पत्रिकाओं में मेरी कविताएं कहानियां, लेख और समीक्षाएं प्रकाशित हुई।

आरंभ में मैंने लुनाईदार गालों ओर चिकनी जंघाओं को अपनी कहानियों के केन्द्र में रखा। उन सभी कहानियों को 'लाशों का जंगल' नाम से 'राजस्थान साहित्य अकादमी' ने 1976 में ससम्मान प्रकाशित किया था। वे लगभग 60-65 के काल की कहानियां हैं। 1976 में मेरा दूसरा कथा संग्रह 'रोशनी की तलाश' नाम से प्रकाशित हुआ जिसमें कहानी का केन्द्र आम आदमी है। इन दोनों कथा पुस्तकों से पहले एक कविता संग्रह 'चांद के दाग' (1970) और एक लम्बी कविता 'आखिर कब तक' (1973) प्रकाशित हो चुके थे।

'आखिर कब तक' के कवर पर परिचयात्मक टिप्पणी के रूप में मेरे अभिन्न मित्र कवि कथाकार, गीतकार और दूर दर्शन के अनेक चर्चित सीरियलों ओर टेली फिल्मों के निर्माता निर्देशक ब्रजेन्द्र रेही ने लिखा था- 'संघर्षों से जूझता युवा गुस्सैल कवि/कथाकार/कविता को समाज में व्याप्त गंदगी के विरुद्ध एक धारदार हथियार के रूप में इस्तेमाल करने का पक्षधर। सच्चे दोस्तों का हमदम/दग़ाबाज दोस्तों का जानी दुश्मन/जिसके हृदय में दकियानूस किस्म के लोगों के प्रति जबरदस्त घृणा भरी है/एक नहीं अनेक 'अंजाने स्वरों' को साहित्य मंच पर प्रस्तुत करता/उनकी मक्कारियों/चापलूसियों और कृत्रिम मुस्कानों को नजरअंदाज करता/अंधेरे का सीना चाक कर/सूर्ख सवेरे की प्रतीक्षा में रत एक जुझारू नौजवान।'

यह लम्बी कविता काफी चर्चित हुई।

'आखिर कब तक' के प्रकाशन के बाद मैं कई संकटों में फंस गया। विभागीय इन्क्वायरी से लेकर गुप्तचर विभाग के अधिकारियों ने एक बड़ी फाइल तैयार कर ली लेकिन साथी ब्रजेन्द्र रेही के कारण इस बार फिर मैं गिरफ्तार होने से बचा गया। मेरे विचारों से भयभीत राजनैतिक शत्रुओं ने 'रोशनी की तलाश' में मुस्लिम परिवेश पर प्रकाशित दो कहानियों को लेकर वो वाबेला मचाया कि मैं अघोषित रूप में संपूर्ण मुस्लिम समाज से बहिष्कृत कर दिया गया और मेरी मां का जनाज़ा दफ़न के लिए घण्टों इंतज़ार करता रहा। इसी दरमियान मेरा उपन्यास 'वह एक' प्रकाशित हुआ। जिसने स्थानीय स्तर पर अनेक दिग्गजों को उद्वेलित किया। स्थानीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर पर इसकी चर्चा से एक प्रगतिशील और जनवादी रचनाकार के रूप में मेरी पहचान कायम हुई। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के मुख्य पत्र 'जगयुग' से लेकर समाजवादी सोच की पत्रिका 'कल्पना' तक में इसकी प्रशंसा में लिखा गया।

'बहस अभी जारी' (1977) कविता संग्रह जब छपा तो मेरे कुछ साथी रचनाकारों ने एक चर्चा गोष्ठी आयोजित की तथा उन्होंने संगठित रूप से उस कृति पर आक्रमण कर उसे अपनी ईर्ष्या का निशाना बनाया। मैं उनकी दक्षिण पंथी और संकीर्ण सोच से काफी आहत हुआ। दरअसल कभी-कभी हम ऐसे लोगों के साथ होते हैं जिन्हें हम प्रगतिशील समझते हैं। लेकिन जब उनके चेहरे से नकाब उठता है तब लगता है अरे, ये तो दकियानूस के भी पितामह थे। लेकिन ऐसे कुकुरमुत्तों की ज़िन्दगी अधिक लम्बी नहीं होती। आज उन सबका दूर-दूर तक साहित्य में अता-पता नहीं है। वे सबके सब न जाने कहाँ खो गये और यहां बहस अभी भी जारी है।

कथाकार सूरज प्रकाश को अभिनंदित करते हुए क़मर मेवाड़ी

पिछले वर्षों 'फैसला होने तक' (1983) कविता संग्रह तथा 'उसका सपना' (1990) कथा संग्रह की समीक्षा तो 'संडेमेल' और 'हंस' से लेकर 'अक्षरा' तक दो दर्जन से अधिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई है। इन समीक्षाओं ने मेरा मार्गदर्शन करने के साथ-साथ हौसला अफज़ाई भी की है मुझे लग रहा है कि अभी लिखना शेष है।

फिर भी यह बताना जरूरी लगता है कि हिन्दी की छोटी-बड़ी लगभग पाँच सौ पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं के प्रकाशन के अलावा अंग्रेजी, राजस्थानी, उड़िया, पंजाबी और मराठी भाषाओं में भी रचनाएं अनूदित हुई हैं। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से रचनाओं का प्रसारण हुआ है। आकाशवाणी से गत पच्चीस वर्षों से जुड़ा हूँ तथा आकाशवाणी कार्यक्रम सलाहकार बोर्ड का सदस्य भी रहा हूँ।

अब अगर मैं यहां 'सम्बोधन' का ज़िक्र नहीं करूंगा तो शायद बात अधूरी ही रह जायगी। सन साठ के बाद से ही एक साहित्यिक पत्रिका के प्रकाशन की योजना मन में थी। इस योजना को कार्यक्रम में परिणत करने के लिए प्रेरित किया श्रीकांत वर्मा की एक टिप्पणी ने जिसमें उन्होंने लिखा था- 'यदि चोरी करके भी लघु पत्रिका निकालनी पड़े तो निकाली जानी चाहिए।....'

इस विचार के दिमाग में बैठते ही कई नाम रजिस्ट्रार के पास भेजे पर स्वीकृति नहीं मिली। अंत में 1965 के आसपास जयपुर से मित्र मणि मधुकर ने 'सम्बोधन' का नाम सुझाया जिसे रजिस्ट्रार ने स्वीकृत कर लिया। इस प्रकार जुलाई 1966 में 'सम्बोधन' का प्रवेशांक प्रकाशित हुआ।

'सम्बोधन' का साहित्य संसार में अच्छा स्वागत हुआ। इसे हाथों-हाथ लिया गया। देखते ही देखते लघु पत्रिकाओं की दुनिया में अपना एक विशेष स्थान बना लिया।

अपने जीवन की अस्सी वर्ष की यात्रा में 'सम्बोधन' की लगभग पचास वर्षों की इस लम्बी यात्रा में (अब दो वर्षों से यह अभिनव संबोधन के नाम से प्रकाशित) कई उतार-चढ़ाव आये लेकिन मैं हारा नहीं। अपना और अपने बेटों का पेट काट कर इसे निकालता रहा। ऐसे अवसर भी आये जब मुझे पत्नी के जेवर और अपने खेत तक रहन रखने पड़े। एक बार तो ऐसा समय भी आया कि मैं अपने खेत दस हज़ार रूपयों में बेचने के लिए तैयार हो गया। लेकिन वे बच गये और आज उनकी कीमत लाखों रूपये है।

लेकिन मैं अपने कष्टों से हारा नहीं, हां कभी थकान महसूस हुई तो समर्थ जैन, निरंजननाथ आचार्य (अब दोनों स्वर्गीय) और मधुसूदन पाण्ड्या ने भरपूर कुमुक पहुंचाई और मैं नये जोश और उत्साह से अगली यात्रा की तैयारी में जुट गया।

हिन्दी साहित्य संसार में सर्वश्री कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, विष्णु चन्द्र शर्मा, माहेश्वर, कंचन, कुमार, गोरख पाण्डेय, वेद व्यास, सतीश जमाली, सुदीप, नफीस आफरीदी डॉ.प्रकाश आतुर, ओंकार श्री, डॉ.मनोहर प्रभाकर, आलमशाह खान, नंद भारद्वाज, स्वयं प्रकाश, रमेश उपाध्याय, नंद चतुर्वेदी, असद जैदी, मंगल सक्सेना और महेन्द्र भानावत जैसे वरिष्ठ साथी साहित्यकारों का स्नेह सम्बल, सहयोग एवं मार्गदर्शन आदि 'सम्बोधन' को नहीं मिलता तो शायद यह अधबीच धोखा ही सिद्ध होता।

किस-किस का नाम गिनाऊँ 'सम्बोधन' की यात्रा में मुझ अकेले के अलावा भी असंख्य सहयात्री हैं। जिन्होंने रचनात्मक सहयोग के साथ-साथ आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया। फलस्वरूप 'सम्बोधन' के अनेक महत्त्वपूर्ण विशेषांक आकार ग्रहण कर सके।

स्व.निरंजन नाथ आचार्य एक राजनेता के साथ-साथ एक साहित्यकार भी थे। वे राजस्थान के शिक्षा मंत्री, गृहमंत्री, विधानसभा अध्यक्ष के अलावा 'राजस्थान साहित्य अकादमी' के अध्यक्ष भी रहे। वे एक विशिष्ट व्यक्तित्व के मालिक थे। उन्होंने क़मर मेवाड़ी को पहचान और उसके स्वाभिमान और खुद्दारी का सम्मान किया और उसे हर संभव सहयोग प्रदान किया। बाकी लोग तो क़मर मेवाड़ी को गुस्सैल और लड़ाकू ही मानते रहे। क्योंकि क़मर मेवाड़ी लेखक के संघर्ष का सहभागी रहा है। चाहे सव्यसाची की गिरफ्तारी हो या राही मासूम रज़ा के 'आधा गांव' का सन्दर्भ, अन्नाराम सुदामा और बशीर अहमद मयूख को आतंकित करने की वारदात हो या वेद व्यास का भोपाल स्थानान्तरण या फिर मणि मधुकर को झूठे मुकदमें में फंसाने की घटना। क़मर मेवाड़ी लेखक के आत्म सम्मान की लड़ाई में हमेशा आगे रहा है और रहेगा।

मेरी चार कविताएँ

क़मर मेवाड़ी

शब्दों को सान पर चढ़ा रहा हूँ

अगर ज़रूरी हुआ तो मैं और संघर्ष करूंगा
यह मत समझना/कि अंधकार ही अंधकार है सर्वत्र
सुनो, सूर्यास्त नहीं हुआ है अभी
प्रकाश ही प्रकाश है सब और

तुम्हारे दिमाग़ की गंदगी और ग़लाज़त को
एक बार फिर साफ करूंगा
अपने शब्दों को पैना करूंगा
ताकि तुम
किसी धनपति के गुणगान
और दीवार पर चिपकी कामुक तस्वीरों से
मुक्त हो को

अगर यह संभव नहीं हुआ
तब संभव है
तुम्हारे दिमाग़ की नसों पर
फफूंद जम जाय
और हज़ारों बार इबादत में झुका सर
तुम्हें विक्षिप्त होने से न बचा सके

किसी ख़ाम ख्याली में मत रहना
कि शब्द भौंथरा हो गये हैं
और उम्र के इस उत्तरार्द्ध में
मैं आत्ममुग्ध हो गया हूँ

दोस्त!
शब्द जैसे थे वैसे ही हैं
अपनी-अपनी जगह
सूर्य की किरणें फैली हैं सब ओर
और मैं
शब्दों को सान पर चढ़ा रहा हूँ

अकाल और गाँव

शहर सन्नाटे की आगोश में
सरगोशियाँ करने में व्यस्त है
और गाँव
इस बार फिर लंगड़ा गये हैं
और दरक गयी है धरती
ताल-पोखरे और नदियाँ
यहाँ तक कि कुएं भी
झाँय-झाँय कर रहे हैं

अब रोजमर्रा की तरह नहीं दिखते गाँव
औरतें और जवान लड़कियाँ
पेट से रोटियों को बाँध कर
चल पड़ती है काम के लिए
सूखे तालाब को बाँधने
चारों ओर मची है भागम भाग

आदमी निकल पड़े हैं अलसुबह
और मिचमिची आँखों
तथा पोपले मुँह वाले बूढ़े और बूढ़ियाँ
छोटे बच्चों को
डाँटते-दुलारते
संझा का इन्तज़ार करते
गुज़ार देते हैं
घर-गाँव में ही पूरा दिन

गम्भीर रूप से कुपित हो गयी है
प्रकृति फिर इस बार
पानी के अभाव में
फसलें सूख कर गिर पड़ी है
धरती पर औंधे मुँह

कुलबुला रहे हैं पशु-पक्षी
हतप्रभ है गाँव का आदमी
समझ नहीं पा रहा है
किस तरह करे सामना
साल दर-साल पड़ते इस अकाल का

हाँ यही तो होना था

चुपचाप बाजार का सन्नाटे में बदल जाना
अपने अपने घरों में दुबक जाना लोगों का
खोमचे वाले का लुट जाना
हां यही तो होना था

ग़रीबों की झोंपड़ पट्टी में लग जाना आग
चतुर राजनेता का आगमन
और आंशिक सहायता के साथ-साथ
झूठे आश्वासनों का सुनहरा स्वप्न
हां यही तो होना था

बादलों का रूठ जाना धरती से
धरती का बंजर होते चला जाना
दाना-पानी को तरसते
मवेशियों का निरंतर मृत्युयोन्मुख हो
गिद्धों का भोजन बनना
हां यही तो होना था

ग़ायब हो जाना खूबसूरती का
धनवानों का बन जाना कंगाल
फूलों की खुशबू का उड़ जाना
सूरज का डूब जाना
और उसके स्थान पर
अन्धकार की काली चादर का फैल जाना
हां यही तो होना था।

ईश्वर तुम बड़े दयावान हो

ईश्वर तुम बड़े दयावान हो
तुम्हारी महानता पर
हजारों-लाखों रचे गये ग्रंथ

कहाँ-कहाँ नहीं ढूंढा तुम्हें
बार-बार पुकारते रहे
ज़बान तक अकड़ गयी उनकी
पर तुम नींद से नहीं जागे

हाहाकार करते रहे लोग
जलते रहे मकान, दुकान और कारखाने
चीत्कार करती रही स्त्रियां
जिन्दा आग में जलते रहे मासूम बच्चे
पर तुम्हें किसी पर दया नहीं आई
फिर तुम किस तरह दयावान हो ईश्वर?

सुना है
तुम्हारे हुक्म के बिना
नहीं हिलता एक भी पत्ता
अगर यह सच है
तब तुम ही जिम्मेदार हो
इस विध्वंस के

आजकल तुम्हारे अस्तित्व पर
मंडरा रहा है ख़तरा
कुछ लोग तुम्हारे नाम का सहारा लेकर
नष्ट करने पर तुले हैं तुम्हारा संसार
लेकिन जब सब कुछ नष्ट हो जायगा
तब फिर कौन फहरायेगा
तुम्हारी महानता का परचम

सोचो ईश्वर जरा सोचो
और अपने दयावान होने का सबूत दो...

ऊंचे क़द का आदमी

क़मर मेवाड़ी

दरअसल घर आजकल उन्हें काटने को दौड़ता है। वे जब भी घर में होते, हड़बड़ी में रहते। वे जल्द घर से निकल भागने का बहाना तलाशते रहते। पहले कभी ऐसा नहीं होता था। वे जब घर में होते तो दफ्तर को भूल जाते। उन्हें अच्छी तरह याद है, दफ्तर में उन्हें कभी घर याद नहीं आया। लेकिन यह बहुत पुरानी बात है, जब से वे रिटायर हुए हैं, जिन्दगी का सिलसिला ही गड़बड़ा गया है। अब वे जब घर में होते हैं तो दफ्तर और बाहर होने पर घर उन पर हावी रहता है।

वह घर जिसे उन्होंने जवानी के दिनों में बनाया थ, जिसका नाम प्रसिद्ध वकील पिता के नाम पर रखा था और जिसमें मस्ती व उमंगों भरे खुशगवार दिन गुजारे थे, अब उन्हें भुतहा महल लगने लगा था।

उम्र के अंतिम दौर में उन्हें यह दिन भी देखने थे।

जब वे घर से बाहर होते तब अनेक आशंकाओं के झंझावतों से घिरे रहते। उन्हें ख्याल आता कि पत्नी अचानक बीमार हो गई है और मुहल्ले वाले उसे अस्पताल ले जाने की तैयारी कर रहे हैं। कभी उनके ख्यालों में बेटा उभर आता जो स्कूल की छुट्टी के बाद घर लौटते हुए दुर्घटनाग्रस्त हो गया है। ऐसा कोई ख्याल आते ही वे तेज़-तेज़ कदमों से घर की ओर चल पड़ते लेकिन घर पहुंचते ही जब वे देखते कि पत्नी उनके लिए शाम का खाना बना रही है और बेटा गली में अपने दोस्तों के साथ गिल्ली-डण्डा खेल रहा है। तब उनके जान में जान आती। वे तसल्ली से अपने कपड़े उतारकर खूंटी पर टांग देते, फिर लुंगी पहन कर पलंग पर पसर जाते और लंबी-लंबी साँसे लेने लगते। शाम का खाना खा चुकने के बाद घर फिर उन्हें अपनी गिरफ्त में ले लेता। पर वे मजबूर थे। रात में घर छोड़कर कहीं जाना उनके लिए काफी दुश्वार था। आंखों की रोशनी के धुंधला जाने की वजह से वे रात की मटरगश्ती से आजाद हो गये थे। अगर आंखों की रोशनी कम न होती, बीमार पत्नी और एक अदद बेटे की बेड़ी से वे जकड़े न होते तो घर क्या, वे इस शहर को ही अलविदा कह देते। उन्हें रात भर नींद नहीं आती। वे बिस्तर पर पड़े-पड़े कल्पनाओं के ताजमहल बनाते और बिगाड़ते रहते और सुबह होने का बड़ी बेसब्री से इंतजार करते। वे एक बुलन्द किरदार के इन्सान थे।

हालात के थपेड़ों ने उन्हें शंकित ज़रूर कर दिया था। लेकिन उनका दिमाग़ी तवाज़स बरकरार था। वे शायराना तबीयत के मालिक थे। अदबी महफिल और सभा सम्मेलनों में उनका कलाम उनके व्यक्तित्व में चार चांद लगा देता था। उनके अशआर एक खुशबूदार ताज़ा हवा के झोंकों की तरह सबको मुअत्तर कर देते थे। वे साफ दिल के बेबाक इंसान तो थे ही, हुब्बुल वतनी के जज्बे से भी अरशार थे। शादी-ब्याह में वे बढ़-चढ़कर भेंट देते और साथ वालों को शर्मिन्दा कर देते। एक बार एक दोस्त की मां के निधन पर उसके यहां मातमपुर्सी के लिए गए। दोस्त उनके सामने फूट-फूटकर रोने लगा, तो वे बोल पड़े, 'अब बस भी कर- बहुत हो चुका-नाटक क्यों करता है' दोस्त को अचानक लकवा मार गया। वहां बैठे सब लोग सन्न रह गए कि उन्होंने यह क्या कह दिया। लेकिन उन्हें मालूम था कि दोस्त कितना कमीना है। जब मां जिन्दा थी तो अपने पति के साथ किराए के मकान में रहती थी और दोस्त ने अपनी मां को कई बार जूतों से पीटा था, और आज जब मर गई तब फूट-फूटकर रो रहा है। हक़ीकत में उन्हें दोगले क़िस्म के लोगों से बेइन्तेहा नफरत थी। मुझे एक घटना याद आ रही है। पाकिस्तान ने युद्ध छेड़ दिया था। जिला कलक्टर ने एक मीटिंग में सभी सरकारी कर्मचारियों से एक-एक दिन का वेतन देने की अपील की।

वे खड़े हुए, अपने खास अन्दाज़ में अपना एक पसन्दीदा शेर सुनाया। फिर पूरे माह की तनख्वाह 'राष्ट्रीय सुरक्षा कोष' में देने की घोषणा के बाद सैनिकों के साथ अग्रिम मोर्चे पर जाकर युद्ध में भाग लेने की पेशकश भी कर दी। पूरा हॉल तालियों की आवाज़ से गूंज उठा था। लेकिन इधर उनका अम्मो सुकून गायब है।

जब से वे रिटायर हुए हैं सब कुछ गड़बड़ा गया है। दो साल हो गए लेकिन अब तक उनका पेंशन केस नहीं सुलझा। गए मंगल को जब मैं टहलने के लिए निकला तो उनसे मुलाकात हो गई। वे हमेशा की तरह घर से निकलकर मुक्ति की सांस ले रहे थे। हम कमला नेहरू अस्पताल तक घूमकर झील की तरफ निकल गए। इरिगेशन पार्क की खूबसूरती ने उनका मन मोह लिया। वे खुश-खुश दिखने लगे लेकिन पार्क की मखमली दूब पर एक जगह गन्दगी देखकर उनके चेहरे पर तनाव आ गया। उन्होंने एक गन्दी गाली हवा में उछाल दी। दरअसल उन्हें लोगों की ग़ैर जिम्मेदाराना हरकतों से बड़ा कष्ट होता था। हम पार्क से निकल आए। अब हम अदम की छतरी में बैठे थे। उन्होंने बदन से शेरवानी उतारी। माचिस और सिगरेट का पैकेट निकाला। शेरवानी को समेटकर एक तरफ रख दिया। फिर सिगरेट जलाकर हवा में छल्ले बनाने लगे।

इस उम्र में उनकी इस अदा ने मुझे रोमांचित कर दिया।

सिगरेट के दो-तीन कश लेने के बाद वे मुझसे बोले, ''आपका रिटायरमेंट कब है?'' ''अभी काफी वक्त है,'' मैंने कहा, ''कुछ समझ में नहीं आता क्या करूं, दो साल गुजर गए, पेशन का एक धेला तक नहीं मिला,'' ''दिक्कत क्या है?'' मैंने जानना चाहा। ''यही तो मालूम नहीं, जब एक ऑब्जेक्शन की पूर्ति करके फाइल भेजी जाती है, तब एक दूसरे रिमार्क के साथ छः माह बाद फाइल वापस पेंशन विभाग से लौट आती है, ''उन्होंने जवाब दिया। ''अच्छा यह बात है.''''जी हाँ'' ''आप दफ्तर में किसी से बात करते'' मैंने सुझाया, ''किससे बात करू? जिन लोगों के साथ दफ्तर में इतना वक्त गुजारा, खाया-पिया, दुख-दर्द में साथ दिया, क्या उन लोगों की कोई जिम्मेदारी नहीं?'' उनके लहज़े में गुस्सा था। ''जिम्मेदारी तो है उनकी। लेकिन उनसे मिल लेने में क्या हर्ज़ है? मैंने कहा। ''हर्ज़ तो कुछ भी नहीं लेकिन मिलने पर भी क्या होगा। करेंगे तो वे अपनी मर्जी का। देखता हूँ कितने दिन तक वे यह खेल मेरे साथ खेलते हैं। वे कुछ देर रुके, उन्हें खांसी का दौरा पड़ गया। वे व्यवस्थित हुए और बोलने लगे, ''मुझे किसी ने कहा है कि बड़े बाबू को दो हज़ार भेंट चढ़ा दो। सारा काम निपट जाएगा। अब आप ही जवाब दीजिए। जिस आदमी ने ज़िन्दगी भर ईमानदारी और नेकदिली से अपना फर्ज़ पूरा किया हो अब वह अपने ईमान को दागदार करेगा? क्या मुझे अपना हक हासिल करने के लिए भी रिश्वत देनी होगी? सच अर्ज़ कर रहा हूं। मर जाउंगा लेकिन रिश्वत नहीं दूंगा।'' गुस्से से उनके चेहरे का रंग बदल गया था। माहौल में ठंडक बढ़गई थी। उन्होंने शेरवानी को उठाया। उसे पहना और चलने को तैयार हो गये। अब हम धीमे-धीरे क़दमों से वापस लौट रहे थे। हमारे बीच मौन पसर गया था। रास्ते में हम दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला। जैसे ही हम बस स्टैण्ड के चौराहे पर पहुंचे, तपाक से उन्होंने मुझसे हाथ मिलाया और अपने घर की तरफ चल दिये। उनसे मिले पूरे आठ दिन गुज़र गए। पिछले मंगल को हम साथ-साथ घूमने गए थे। आज फिर मंगलवार है। लेकिन आज वे मौजूद नहीं है उनके न रहने की खबर आज के अखबार में छपी है। सुबह-सुबह मैं खिन्न तथा उदास हो जाता हूं और बग़ैर कुछ खाए-पीए ही उनकी अन्तिम यात्रा में शामिल होने के लिए घर से निकल पड़ता हूँ। बहुत सारे परिचित मौजूद हैं, वहां सब अलग-अलग समूहों में बैठे उनकी खूबियों की चर्चा में मशगूल हैं। मैं किसी से बात नहीं करता। गला रुंध गया है। मुंह से एक बोल तक नहीं फूटता। गमगीन और उदास एक तरफ बैठा हूँ, सबसे अलग। मेरी आँखों में आंसुओं का सैलाब उमड़ आया है। रह-रहकर उनकी वह बात मेरे दिमाग पर हथौड़े की तरह बज रही है, 'सच अर्ज कर रहा हूं। मैं मर जाउंगा, लेकिन रिश्वत नहीं दूंगा' वे अपनी बात को इतना जल्द सच साबित कर देंगे मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता।

आत्मविश्वास से भरा हुआ व्यक्तित्व

स्वयं प्रकाश

एक बार क़मर मेवाड़ी ने मुझे कांकरोली बुलाया था। समकालीन कहानी पर कोई तीन दिवसीय आयोजन था। वहाँ मुझे समकालीन कहानी पर एक पर्चा भी पढ़ना था। उस समय तक मुझे साहित्यकार सम्मेलनों में जाने का कोई खास अनुभव नहीं था। मैं ऐसे समारोहों में न जाने के लिए आज की तरह कुख्यात भी नहीं था। मुझे समारोह के एजेण्डा में ज्यादा दिलचस्पी भी नहीं थी, न उसके मुबाहिसों से कोई खास उम्मीद। कांकरोली ऐसी कोई जगह भी नहीं थी जिसे घूमने-देखने की ही मन में इच्छा होती, न उन दिनों दिवाली-दशहरेनुमा कोई छुट्टी चल रही थी जिसमें साहित्य समारोह, सैर-सपाटे का बहाना होता। फिर भी मैं गया। तो क्यों ? सिर्फ इसलिए कि क़मर मेवाड़ी ने बुलाया था। और क़मर ने क़मर की तरह ही बुलाया था। क़मर कभी टाइप की हुई चिट्ठी नहीं भेजते। हमेशा हाथ से लिखकर भेजते हैं। और हाथ से लिखी चिट्ठी में भी इधर-उधर की फालतू की लच्छेदार बातें नहीं, सिर्फ मतलब की बात लिखते हैं।तो इस सम्मेलन में जाकर मैंने पाया कि मैं एक ही दिन में सबका लाड़ला बन गया हूँ। पता नहीं मेरी शक्लोसूरत ही इस कदर मासूम और कमसिन थी या मेरा लिखना, पर एक बात जो याद है बतौर उदाहरण बता सकता हूँ। सुबह का समय था। हम सब खुले मैदान में एक घेरे में बैठे दिन की पहली चाय पी रहे थे। नवलकिशोरजी, आलमशाह खान, हबीब कैफी, मशकूर जावेद, सुधा गुप्ता और भी लोग। और बेशक क़मर मेवाड़ी। मैंने पास की कुर्सी पर पड़े सुधाजी के हेण्डबेग को उठा लिया और घोषणा जैसी की कि मैं बता सकता हूँ कि इसमें क्या-क्या है। फिर उसे खोला और घोषणा कर चीजें निकालता गया। अपने अनुमान से जो-जो मैं बताता जाता हेण्डबेग से वही-वही निकलता जाता। दस-दस के मुड़े-तुड़े पाँच-छह नोट, रेजगारी, बिंदी का पैकेट तो बिंदी का पैकेट, लिपस्टिक, तो लिपस्टिक, रूमलिया तो रूमलिया....सुधाजी परेशान हो रही थीं और लोग चकित। सुधाजी कह रही थी देखो! कैसे अधिकार से मेरा पर्स खोल रहे हैं! देखो! कैसे अधिकार से सारी चीजें निकाल रहे हैं! मैं हँस रहा था और अपना काम जारी रखे था। जब हेण्डबेग खाली हो गया तो मैंने उसे उलटने से पहले कहा- अब अंतिम आइटम! इसमें से तीन रबड़बैण्ड निकलेंगे, दो साबुत एक टूटा हुआ। और वे निकले। सचमुन तीन ही। और तीनों हालाँकि साबुत, पर तीसरा दिखाते समय मैंने इतना खींचा कि वह टूट गया। उपस्थितों ने हर्षध्वनि की। सुधाजी ने हैरानी से पूछा कि आपको कैसे मालूम पड़ा कि मेरे पर्स में क्या-क्या है? जवाब क़मर मेवाड़ी ने दिया- सुधाजी सुनो, वो कहानीकार है। कहानीकार को सब पता रहता है। इतना भी पता नहीं रखेंगे तो कहानी क्या खाक लिखेंगे? मेरी और अपनी जात पर कमर मेवाड़ी का ऐसा प्रबल आत्मविश्वास देखकर मैं दंग रह गया। हालाँकि सब तुक्का था। और बात भी मजाक में ही कही गयी थी। पर शायद अवचेतन में कमर मेवाड़ी की इस बात ने मुझे दूर तक प्रभावित किया था, आज जिसके लिए मैं उनका आभार मान सकता हूँ।

ऐसा उत्साह और ऊर्जा अन्यत्र नहीं

डॉ.सूरज पालीवाल

कांकरोली मेरे मन में जब मैं छोटा था तब वल्लभ पीठ के रूप में थी और जब साहित्य की दुनिया में आया तब 'सम्बोधन' के रूप में। सम्बोधन ऐसी

पत्रिका है जो अपना सौंवाँ अंक निकाल सकी है, इसे कमर भाई ने तब आरम्भ किया था जब वे मात्र सत्ताईस वर्ष के थे और एक विद्यालय में पढ़ाते थे। किसी सम्पन्न परिवार से भी नहीं थे और न पीछे कोई सम्पन्न हाथ था। लेकिन रचना के प्रति ईमानदारी ने उन्हें पत्रिका निकालने की प्रेरणा दी और जीवन के हर संघर्ष में वे पत्रिका निकालते रहे। आज जब पत्रिका निकालना घर फूँक तमाशा है, ऐसे समय में अपने परिवार का लालन-पालन करते हुए कमर भाई 'सम्बोधन' निकालते रहे और कहानियाँ भी लिखते रहे। अक्सर कहा जाता है कि पत्रिका का सम्पादन किसी भी संपादक की रचनात्मकता को खा जाता है, परन्तु क़मर भाई ने दोनों को जीवित रखा, कैसे रखा यह उनसे मिलकर या साथ रहकर ही जाना जा सकता है। एक लेखक अपने शहर में अपने लेखन के कारण जाना जाये यह बहुत कम होता है। हममें से बहुतों के साथ ऐसा नहीं हो रहा है। शहर तो क्या आस पड़ोस भी यह नहीं जानता कि अमुक सज्जन जो हमारे पड़ोस में रहते हैं, लेखक हैं। भाई स्वयं प्रकाश ने एक जगह कहा था कि लेखक को लेखक की तरह ही जीवन जीना चाहिए और उसके घर परिवार और उसके बच्चों तक को यह ज्ञात होना चाहिए कि वे लेखक हैं। हमारी ज्यादातर की पहचान हमारी नौकरी के कारण है न कि लेखक के कारण। बच्चे भी यही जानते हैं कि हम कौन-सी नोकरी करते हैं और कहाँ करते हैं? लेकिन मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि क़मर भाई की पहचान एक लेखक के रूप में है। कांकरोली में यह कहना कि वे पेशे से अध्यापक थे और अब अवकाश प्राप्त कर लिया, सिक्के का दूसरा और गौण पहलू है, लेकिन क़मर मेवाड़ी कहानियाँ लिखते हैं और 'सम्बोधन' का सम्पादन करते हैं- यह बात सबको पता है। यह सुखद स्थिति है घर पर जो नेमप्लेट लगी है उस पर लिखा है 'क़मर मेवाड़ी-सम्बोधन'। मेरे लिए यह स्थिति सुखद है, मैंने ऐसा पहली बार देखा और अच्छा लगा।कमर मेवाड़ी से मिलना नये उत्साह और ऊर्जा से भर जाना है। सुबह करीने से की गयी शेव और धुली प्रेस्ड सफारी में जँचे मुस्कराते कमर भाई सारी दुनिया का बोझ अपने मजबूत कंधों पर लादे फिरते हैं। आज सुबह से शाम तक की सूची पूछी जाये तो मालूम होता है कि उन्हें कहाँ-कहाँ नहीं जाना और किस-किस के लिए नहीं दौड़ना और शाम होते ही मित्रों के बीच दिन-भर की थकान गायब। और यदि कोई बाहर से साहित्यकार आ जाये तो सारे कामों की छुट्टी। मैं जब तक कांकरोली रहा कमर मेवाड़ी लगातार मेरे पास रहे। रात में घर जाते तो सुबह का कार्यक्रम बनाकर और सुबह होते ही सबसे पहला फोन कमर मेवाड़ी का। ऐसा उत्साह और ऊर्जा इस उम्र में अन्यत्र कहीं हो याद नहीं।

क़मर जैसे मित्र अधिक नहीं होते हैं

डॉ.महेन्द्र भानावत

क़मर मेवाड़ी एक सहृदय साहित्यजीवी तथा कठोर कर्मशील संघर्ष वाला पत्रकार है जिसे कोई किसी बिरादरी में नहीं बाँध पाया और न जिसे कोई अपने पिंजरे का पंछी ही बना सका। सच भी है, पका हुआ पानी अपने हौंसले और हुर्रियत का राजा होता है। उसकी अपनी धार और मार होती है। उसकी उड़ान में बिजली और शरीर में गरमाहट का ज्वार होता है। वह उस मच्छी की तरह

श्री महेन्द्र भानावत और श्री नंद चतुर्वेदी के साथ क़मर मेवाड़ी।

जीवनीशक्ति लिए होता है जो धार के विपरीत अपना बहाव और हाव भाव रखती है, जो अपनी तेज और खुली आँखों से कोई नजारा निरखती है जो करुणा तथा ममता से ओतप्रोत होती है और जिसे जालसाजों के जाल से बचते रहने की कला भी आती है। शायद इसीलिए क़मर के संपर्क में आने वाला हर व्यक्ति उसका अजीज नहीं होता और न क़मर स्वयं भी अपने पर किसी को बोझे की तरह लाद सकता है। न जाने कौन से शकुन में क़मर से मेरा संपर्क हुआ जो आज तक बँधा हुआ है, एक स्नेहिल, आत्मीय और उन्नत उजास लिए जिसमें कभी कोई दरार याकि गार का छींटा तक नहीं देखा गया। मैत्री वही स्थायित्व लिए होती है जिसमें अपेक्षा और उपेक्षा के दोनों भाव नगण्य हों।

कमर की मैत्री जिन्दादिल की मैत्री है। हमसफर की मैत्री है। कोई प्रतिस्पर्द्धा या होड़ की मैत्री नहीं है। कुछ पाने और खोने की मैत्री नहीं है। कुछ करने और कहलाने की मैत्री नहीं है। पंचायत करने और प्रपंच फैलाने की मैत्री नहीं है। इस मैत्री में कभी ये नहीं आया कि कौन क्या कैसे और क्यों कर रहा है। यह साहित्य की मैत्री है। बचपन के यार-दोस्त की मैत्री नहीं है। साथ पढ़े गाँव-सहपाठी की मैत्री नहीं है। इस मैत्री में कोई कृष्ण नहीं रह गया है। कोई सुदामा नहीं बन गया है। अस्सी वर्ष की आयु वाले कमर की जिन्दगी जीवटवाली, चुस्त और चहलपहल वाली जिन्दगी है जो पानी हिलोर नहीं देता वह आब और ऊर्जाविहीन होता है। निरंतर जो बहता है वही कुछ कहता है। उस माने में क़मर ने अपने को सदाबहार ही बनाये रखा। उनकी उपस्थिति उनके होने का एहसास कराती है। शांत बने सन्नाटे को तोड़ती है।

यह सच है कि क़मर की सर्वाधिक पहचान 'सम्बोधन' ने कराई। अपने छोटे-से दायरे में, छोटी जगह से, छोटे हौंसले में जो हैसियत 'सम्बोधन' की बनी वह उन कई बड़ी पत्रिकाओं की भी नहीं बन पाई जो पर्याप्त साधनों और सुविधाओं की पृष्ठभूमि पाकर भी अपनी मति का मधु नहीं दे पाई। कमर जैसे मित्र अधिक नहीं होते हैं। जो होते हैं दुर्लभ ही होते हैं अतः वे सर्वप्रकारेण अभिनंदनीय होते हैं।

सुधी रचनाकारों की दृष्टि में क़मर मेवाड़ी का कृतित्व

'वह एक' एक सार्थक उपन्यास है और राजस्थान में जिस दौर में सामंती परिवेश और प्रेम विषयक उपन्यासों का चलन था। आठवें दशक में विशेषकर जब तैयार जमीन से हटकर कुछ लिखने और अपने समय से साक्षात्कार कराता हुआ 'वह एक' उपन्यास दिया क़मर मेवाड़ी ने, वह भी आत्मकथात्मक शैली में। यदि अतिश्योक्ति न समझा जाये तो यह मेवाड़ अंचल का प्रथम आत्मकथात्मक उपन्यास है। यद्यपि अजमेर वृत्त को छोड़कर भी राजस्थान के 'वह एक' के प्रकाशन तक भी वह प्रथम है उसके बाद नवें दशक में कोई उपन्यास आत्मकथात्मक है।

डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

क़मर मेवाड़ी का उर्दू अदब से गहरा ताल्लुक रहा है और इस दिशा में उन्होंने आधुनिक संवेदना को छूने वाले शायरों के एक संकलन का भी सम्पादन किया है, किन्तु पिछले वर्षों से वह निरन्तर न सिर्फ हिन्दी में लिख रहे हैं, बल्कि 'सम्बोधन' जैसी उच्च स्तरीय साहित्यिक पत्रिका को भी सम्भाले हुए हैं। जो लोग उनके लेखन से परिचित हैं, वे यह मानते हैं कि कमर मेवाड़ी की दृष्टि प्रगतिशील चेतना की धार पर निखर कर एक खास किस्म की चमक और तुर्शी ग्रहण कर चुकी है। मुझे याद है जब राही मासूम रजा के 'आधा गाँव' को बहुत गलत ढ़ंग से विवादास्पद बनाया गया था तब कमर मेवाड़ी ने बेहद तल्खी से कहा था कि उन तमाम मुसलमानों को, जो हिन्दी में बोलते-लिखते हैं- गूँगा बना देने की यह क्रूर साजिश है। 'यादों की बारात' में जिस तरह जोश मलीहाबादी ने उर्दू की वकालत की है, उसी तेवर भरे अंदाज में कमर मेवाड़ी ने दुहराया था, ''मैं हिन्दी में लिखता हूँ, जिन्दगी भर लिखूँगा देखूँ कौन मुझसे मेरी भाषा छीनता है?''

मणि मधुकर

कमर मेवाड़ी जीवन की बहुत जानी-पहचानी स्थितियों के बीच से कहानी ढूँढ़ निकालते हैं। इस मामले में उनके यहाँ बड़े असामान्य और असाधारण की करीब-करीब अनुपस्थिति है और यह बात बहुत महत्त्व की है। बल्कि इससे भी बड़ी बात तो यह कि कई बार वे कहानी जैसा कुछ रचे बगैर भी कहानी रच देते हैं।

डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, समयान्तर, नई दिल्ली

क़मर मेवाड़ी छोटे शहर के बड़े रचनाकार हैं। उनकी रचनाएँ व्यक्ति-चेतना की लौ लगाती हैं। जिजीविषा और अन्य कहानियाँ संग्रह में उन्होंने कमोबेश ऐसी ही कहानियों का चयन किया है जो मनुष्यता के पक्ष को अधिक मजबूत करती है।

डॉ. मलय पानेरी, समावर्तन, उज्जैन

कमर मेवाड़ी की कहानियाँ, आज के विकसित युग के मूल्यों की कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ घटना या अनुभव ही नहीं जीवन के विरोधाभासों, विसंगतियों, अन्तर्द्वन्द्व और अन्तर्विरोध के गुम्फन की सामाजिक सरोकारों के सन्दर्भ में रचनात्मक अभिव्यक्ति है। संग्रह की अनेक कहानियाँ ऐसी हैं जो पढ़ने के बाद पाठक की चेतना से जुड़ जाने का माद्दा रखती है। और मेरे ख्याल से यही किसी कहानी की वास्तविक शक्ति है।

डॉ. सतीश दुबे, एक और अंतरीप, जयपुर

कमर मेवाड़ी छोटी कहानियों के बड़े कथाकार हैं। उनके अधिकांश पात्र हाशिए पर पड़े लोग हैं, अनवरत् संघर्ष जिनके जीवन का चिर साथी है। वे अकृत्रिम, वास्तविक और जीवंत हैं। वे हमें अपने निकट के प्रतीत होते हैं। भाषा की सहजता और छोटे वाक्य-विन्यास क़मर मेवाड़ी की विशेषता है।

डॉ. रूपसिंह चन्देल, हंस, नई दिल्ली

''लघु पत्रिकाएँ आज भी अपने दायित्व का निर्वाह जिम्मेदारी से कर रही हैं'' - क़मर मेवाड़ी

(संपादक-कथाकार-कवि क़मर मेवाड़ी से लेखक-समीक्षक माधव नागदा की बातचीत)

कमर मेवाड़ी हमारे समय के एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। बिना किसी डर, दबाव और समझौते के लगातार पचास वर्षों तक अपनी तमाम वैचारिक प्रतिबद्धता और स्तरीयता के साथ अकेले दम पर 'सम्बोधन त्रैमासिकी' का संपादन-प्रकाशन कमर मेवाड़ी जैसी शख्सियत के बूते की ही बात है। प्राय: होता यह है कि संपादक बनने के पश्चात् धीरे-धीरे लेखक के भीतर का सर्जक दम तोड़ने लगता है, लेकिन कमर मेवाड़ी पर यह बात लागू नहीं होती। संपादन कर्म के साथ-साथ उनके लेखन में न केवल निखार आया, बल्कि वह बहुआयामी भी होता गया है। उनके अब तक चार कविता संग्रह, एक उपन्यास तथा छ: कहानी संग्रह तथा एक संस्मरण पुस्तक प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत है उनसे की गई यह बातचीत-

माधव नागदा - आपकी साहित्यिक यात्रा कब से आरम्भ हुई?

क़मर मेवाड़ी - संभवत: 1955-56 से। उन दिनों मेरे मन में जो विचार आते उन्हें मैं अपने स्कूल की कॉपी में लिख लेता था। आज भी वह कॉपी सुरक्षित है, जिसमें अनेक कविताएँ और कुछ कहानियाँ लिखी हुई हैं। वैसे 1958 में जब मैं हाईस्कूल की परीक्षा दे रहा था, तब मैंने एक व्यंग्य कहानी 'ये सिनेमाप्रेमी' लिखी थी। उस कहानी को टाइप कराकर 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के संपादक बाँकेबिहारी जी भटनागर को भेज दिया। उस वर्ष मैं हाईस्कूल की परीक्षा में फेल हो गया, पर कहानी पास हो गई। साप्ताहिक हिन्दुस्तान से स्वीकृति आ गयी। कहानी छपी मार्च 1959 में। मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। यह मेरे जीवन की जबरदस्त घटना थी। समझ लीजिए एक टर्निंग पाईंट। यहीं से मैं साहित्यिक यात्रा का आरम्भ मानता हूँ।

स्कूली जीवन और प्रतिष्ठित पत्रिका में कहानी का प्रकाशन। इस पर आपके सहपाठियों की प्रतिक्रिया कैसी रही ?

मेरे क्लास टीचर और मित्र यह मानने के लिए तैयार ही नहीं थे कि यह कहानी मैंने लिखी है, क्योंकि लेखक का जो नाम छपा था वह क़मर मेवाड़ी था और इस नाम का कोई विद्यार्थी स्कूल के रिकार्ड में नहीं था, लेकिन जब मैंने उन्हें 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में छपा अपना पता बताया तो सबने मान लिया कि कहानी मैंने ही लिखी है। फिर तो मैं दोस्तों के बीच एक लेखक के रूप में जाना जाने लगा, परन्तु पिताजी मेरे लेखन से नाराज थे। कोई जब उन्हें कहता कि आपका बड़ा बेटा शाइर है तो वे नाक-भौं सिकोड़ते और शायरों की लानत-मलामत करते। वे समझते थे कि शाइर घर-परिवार के प्रति लापरवाह होते हैं। न ढ़ंग से खाते हैं और न ढ़ंग से रहते हैं। ऊपर से कई बुरी आदतें और पाल लेते हैं। मैं एक बार घर से भाग गया था। पीछे से पिताजी ने सारी पत्र-पत्रिकाएँ रद्दी में बेच दीं। मैं लौटा तो खूब रोया। सारी उर्दू पत्रिकाएँ कबाड़ी के हवाले हो गयीं। यहीं से मैंने हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ना आरम्भ किया।

क्या साप्ताहिक हिन्दुस्तान में छपने के बाद भी आपके पिताजी की नाराजगी नहीं गयी ?

सन् 1959 मेरे लिए बहुत अच्छा रहा। इसी साल मैंने हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की, इसी साल मुझे शिक्षक की नौकरी का नियुक्ति पत्र मिला, इसी साल मेरे पहले बेटे का जन्म हुआ और पहली कहानी भी इसी साल छपी। पिताजी ने खुशी-खुशी में मेरा चेहरा चूम लिया। उस दिन महसूस हुआ कि पिताजी सख्त चेहरे के साथ स्नेह से सराबोर एक नरम दिल भी रखते हैं। पिताजी का मुझ पर विश्वास बढ़गया। उन्हें लगा कि यह लड़का नाकारा नहीं है। जिन्दगी में कुछ करेगा। आगे बढ़ेगा। फिर जब कहानी के मानदेय के रूप में तीस रुपये का मॅनीआर्डर आया तब पिताजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने वे सारे रुपये मेरे कपड़ों और जूतों पर खर्च कर दिए। मैं भी बहुत खुश था। पहली बार मैंने फुलपैंट पहना था। बाकी तो अब तक सभी विद्यार्थियों की तरह मैं भी हाफ पैन्ट से ही काम चलाता था।

प्रसिद्ध शायर और राजस्थान उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश श्री शिवकुमार शर्मा के साथ क़मर मेवाड़ी।

विख्यात कवि-सम्पादक विष्णु नागर को सम्मानित करते हुए।

वे कौन-से प्रेरक तत्त्व थे जिनसे आप साहित्य की ओर उन्मुख हुए?

इसका श्रेय मैं अपनी माँ को देता हूँ। माँ सदैव मेरी प्रेरणास्रोत रहीं। वह सोते समय नियमित रूप से हम दोनों भाइयों को कहानियाँ सुनाया करती थीं। मैं वे ही कहानियाँ नमक-मिर्च लगाकर अपने मित्रों को सुनाता। बड़ा आनंद आता। एक बात और पिताजी के सन्दूक में रखी चन्द्रकान्ता संतति, हातिमताई, अमीर हमजा, किस्सा तोता मैना, किस्सा साढ़े तीन यार का पढ़ते-पढ़ते मेरी कल्पना शक्ति परवान चढ़ने लगी और मैं खुद-ब-खुद लेखन की ओर मुड़ गया। मुझे पढ़ने का इतना शौक हो गया कि जेब खर्च से पैसे बचाकर उर्दू की मशहूर पत्रिकाएँ 'शमा', 'बीसवीं सदी', 'जमालिस्तान' और 'शाहराह' जैसी पत्रिकाएँ मँगवाने लगा। कांकरोली में सिर्फ मैं इन पत्रिकाओं का अकेला पाठक सदस्य था।

आपने जब लेखन आरम्भ किया उस समय लघु पत्रिकाओं की क्या स्थिति थी?

मैं उर्दू से हिन्दी में आया था। कांकरोली में हिन्दी साहित्यिक पत्रिकाएँ देखने को नहीं मिलती थीं। मैं व्यावसायिक घरानों की पत्र-पत्रिकाओं के ही संपर्क में था, उनमें ही मेरी रचनाएँ छपती थीं। लघु पत्रिकाओं के संपर्क में मैं 1963 में आया जब जयपुर से निकलने वाली पत्रिका 'ब्रदरहुड इंटरनेशनल मंथली' में मेरी कविताएँ प्रकाशित हुईं।

'सम्बोधन' निकालने का विचार आपके मन में कैसे आया?

साठ का दशक लघु पत्रिकाओं का दशक रहा था। देश से कई लघु पत्रिकाएँ निकल रही थीं। हमारे प्रांत से भी 'लहर' और 'वातायन' जैसी महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा था, लेकिन मैंने देखा कि युवा प्रतिभाशाली रचनाकारों को समुचित स्थान नहीं मिल पा रहा है। मेरे मन में आया क्यों न एक ऐसी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया जाय जिसमें नवोदित प्रतिभाओं को मंच मिल सके। मुझे गर्व है कि उस समय सम्बोधन में प्रकाशित होने वाले कई युवा आज देश के प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं।

सम्बोधन के माध्यम से आप पाठकों को क्या सन्देश देना चाहते थे ?

सम्बोधन के प्रकाशन का हमारा एकमात्र ध्येय यही था कि नये सिरे से नया सृजन तथा सामान्य जन के हित में लिखा जाने वाला साहित्य पाठकों तक पहुँचे और वे समाज तथा देश की उन्नति में अपना योगदान कर सकें।

सम्बोधन के सहयात्री?

सर्वप्रथम तो मैं नाम लेना चाहूँगा राजसमन्द के प्रसिद्ध एडवोकेट, कवि एवं चिन्तक समर्थ जैन का। उनके प्रोत्साहन ने मुझे सदैव संबल प्रदान किया। वे आरम्भ से ही सम्बोधन से जुड़ गए थे। जब एक बार संबोधन का प्रकाशन आरम्भ हो गया तो फिर असंख्य लेखक, पाठक और शुभचिंतक सम्बोधन के सहयात्री बनते चले गए। लखनऊ के एक पाठक

थे वाजपेयी साहब, उनको सम्बोधन अत्यधिक पसन्द था। शायद रिटायर्ड व्यक्ति थे। कभी-कभी उनकी पत्र-प्रतिक्रिया प्राप्त होती थी। एक बार उन्होंने पैंतीस सौ रूपये का चैक भेजते हुए लिखा, ''आप हिन्दी की बड़ी सेवा कर रहे हैं। एक छोटा-सा चैक भेज रहा हूँ। स्वीकार करियेगा।'' वर्षों तक उनका स्नेह बना रहा। गत कुछ वर्षों से उनका कोई समाचार नहीं है। मध्यप्रदेश या छत्तीसगढ़से एक बार एक सज्जन का फोन आया। उन्होंने सम्बोधन का कोई अंक अपने एक मित्र के यहाँ देखा था। तत्काल उन्होंने मुझे बधाई दी और बैंक अकाउंट की जानकारी ली। एक सप्ताह बाद उनका एक रजिस्टर्ड लिफाफा मिला। मैंने लिफाफा खोला तो दंग रह गया। लिफाफे में से पत्र के साथ सम्बोधन के नाम ग्यारह हजार का चैक निकला। बाद में मालूम हुआ कि वह महाशय जिला कलेक्टर थे। इन सबके अतिरिक्त राजस्थान विधानसभा के तत्कालीन अध्यक्ष आचार्य निरंजननाथ, कवि एवं कथाकार मित्र मधुसूदन पांड्या, भाई बृजेन्द्र रेही और आप जैसे अनेक स्नेही मित्रों का सहयोग नहीं मिलता तो सोचता हूँ सम्बोधन कभी का दम तोड़ चुका होता और पचास वर्ष पूर्ण कर स्वर्ण जयन्ती के मुकाम तक नहीं पहुँच पाता।

सम्बोधन के विशेषांकों की भी एक खास परम्परा रही है। इसके पीछे कोई उद्देश्य?

आपने सही प्रश्न उठाया है। हमने पचास बावन वर्षों में अनेक विशेषांकों का प्रकाशन किया। इसका उद्देश्य स्पष्ट है कि साहित्य और समाज के सम-सामयिक मुद्दों को रेखांकित कर पाठकों को अपने दायित्व के प्रति जागरूक किया जाय, साथ ही हिन्दी के महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों पर भी विशेषांकों को फोकस किया जाय।

अब तक कौन-कौन से विशेषांक ज्यादा चर्चित रहे हैं?

लगभग सभी विशेषांक चर्चित रहे हैं, लेकिन कुछ विशेषांकों की खूब चर्चा हुई। जैसे कि साम्प्रदायिक सद्भाव अंक , लघुकथा-अंक, मिनी कविता अंक, उर्दू कविता अंक, नयी सदी अंक, लिव इन रिलेशनशिप पर केन्द्रित कहानी अंक, गजल अंक, राजस्थान के लेखकों पर केन्द्रित कविता और कहानियों के अंक, सोवियत कविता अंक आदि। मुझे यह बताते हुए अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है कि हिन्दी के चार वरिष्ठ साहित्यकारों काशीनाथ सिंह जी, स्वयं प्रकाश, आलमशाह खान और आचार्य निरंजननाथ पर केन्द्रित विशेषांकों की खूब धूम रही। पाठकों ने

इन विशेषांकों को हाथों हाथ लिया। आज भी इन विशेषांकों की जबरदस्त माँग है।

आज लघु पत्रिकाओं यानी साहित्यिक पत्रकारिता के सम्मुख किस प्रकार के खतरे हैं?

आज तो साहित्यिक पत्रकारिता के सम्मुख खतरे ही खतरे हैं। वर्तमान समय में साहित्यिक पत्रिकाओं को जिन्दा रहने के लिए जबर्दस्त संघर्ष करना पड़ रहा है। साहित्यिक पत्रिकाओं को पहले की तरह सरकारी विज्ञापन नहीं मिलते। मानव संसाधन मंत्रालय विगत कई वर्षों से जिन पत्रिकाओं की विद्यालयों के लिए एकमुश्त खरीद करता था उनमें से अनेक पत्रिकाओं की खरीद पर रोक लगा दी गयी है। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से भी पत्रिकाओं को प्रतिवर्ष जो आर्थिक सहयोग दिया जाता था उसमें भी कई पत्रिकाएँ भेदभाव का शिकार हैं। हमारे यहाँ राजस्थान साहित्य अकादमी भी साहित्यिक पत्रिकाओं को प्रतिवर्ष आर्थिक सहयोग प्रदान करती थी, गत वर्षों से वह भी बंद है। राजस्थान में किसी भी दल की सरकार हो साहित्य उनकी बुनियादी प्राथमिकता में नहीं है। साहित्य संवर्धन के प्रति ये सरकारें बहुत उदासीन रही हैं।

आज लघु पत्रिकाएँ अपने दायित्व का निर्वाह किस तरह कर रही हैं?

जैसा कि मैंने कहा वर्तमान समय में लघु यानी साहित्यिक पत्रिकाओं को जिंदा रहने के लिए जबरदस्त संघर्ष करना पड़ रहा है। इसके बावजूद वे अपने दायित्व का निर्वहन बहुत ही जिम्मेदारी और गंभीरता से कर रही हैं और मुझे उम्मीद है कि आगे भी करती रहेंगी।

नेट पत्रिकाओं के युग में लघु पत्रिकाओं के भविष्य के बारे में आप क्या सोचते हैं?

हाँ, वर्तमान युग नेट पत्रिकाओं का है, लेकिन आज भी कई शानदार लघु पत्रिकाएँ निकल रही हैं। लघु पत्रिकाओं को नेट पत्रिकाओं से कोई खतरा नहीं है। मेरे विचार से लघु पत्रिकाओं का भविष्य उज्ज्वल है।

आप कहानीकार के साथ कवि भी हैं। सम्प्रेषण की दृष्टि से कहानी और कविता में से आप किस विधा को अधिक प्रभावी मानते हैं?

वैसे तो दोनों ही विधाओं के माध्यम से हम अपनी बात ठीक-ठीक सम्प्रेषित कर सकते हैं, परन्तु मैं इस दिशा में कविता को अधिक प्रभावशाली मानता हूँ। जो बात हम कहानी के माध्यम से चार-पाँच पृष्ठ में कहते हैं वही बात कविता में पाँच-सात पंक्तियों में अधिक मजबूती के साथ कही जा सकती है। कविता संवेदनाओं की वाहक होती है इसलिए इसके तार पाठकों के दिल में आसानी से जुड़ जाते हैं।

हिन्दी साहित्य में एक दौर ऐसा भी आया जब रचना पर विचारधारा हावी हो गयी थी। आप इस स्थिति को कहाँ तक ठीक समझते हैं ?

वह मार्क्सवादी विचारधारा थी, न कि राजनैतिक इसलिए स्वीकार्य थी। मार्क्सवाद एक वैज्ञानिक विचारधारा है जो आम आदमी से जुड़ी हुई है, जो शोषित और संघर्षशील जन की पक्षधर है। हाँ, रचना में विचारधारा थोपी हुई नहीं लगनी चाहिए। नारेबाजी रचना को कमजोर बनाती है। मेरी रचनाओं पर भी ऐसे आरोप लगाये गये हैं, लेकिन वह दौर ही ऐसा था। बहुत से लोग लिख रहे थे।

लम्बी अवधि तक संपादन कार्य से जुड़े होने के नाते आपकी नजरों से हर दौर की रचनाएँ गुजर चुकी हैं। इस परिप्रेक्ष्य में वर्तमान सृजन को लेकर आपकी क्या धरना है ?

वर्तमान सृजन बहुत उत्कर्ष पर है। कविता हो या कहानी, नये लेखक शानदार लिख रहे हैं। आज का लेखन मारक और आक्रामक है। भाव और संवेदन की दृष्टि से आज का रचनाकर्म काफी पुष्ट है, हालाँकि विचारधारा धीरे-धीरे बैकफुट पर जाती दिखाई दे रही है।

सम्बोधन के लिए रचनाओं का चयन करते समय आप मुख्यतः किस बात का ध्यान रखते हैं? क्या किसी खास विचारधारा वाले अथवा संगठन विशेष से जुड़े लेखकों को प्राथमिकता दी जाती है?

सम्बोधन में हर विचारधारा के लेखक छपते रहे हैं। यह किसी एक संगठन की पत्रिका नहीं है। इसमें प्रगतिशील और जनवादी भी छपे हैं तो दक्षिणपंथी माने जाने वाले लेखक भी। काशीनाथ सिंह छपे हैं तो कोहली (नरेन्द्र) भी। रचना स्तरीय हो और मानवीय मूल्यों की पक्षधर हो यही देखा जाता है। जाति और सम्प्रदाय के आधार पर विद्वेष बढ़ाने वाली रचनाएँ हमने कभी नहीं छापी। सम्बोधन सामाजिक समरसता का समर्थक हैं।

देश के वर्तमान हालात के मद्देनजर आप युवा पीढ़ी को क्या सन्देश देना चाहते हैं?

आज की युवा पीढ़ी काफी प्रबुद्ध और समझदार है। उसे किसी के सन्देश की आवश्यकता नहीं है। युवा निर्णय लेने में सक्षम हैं। जो युवा सृजन पथ पर अग्रसर हैं उन्हें चाहिए कि वे खूब पढ़ें, लिखें और वर्तमान हालात पर अपनी रचनाओं के माध्यम से देश के पिछड़े, कुचले, कमजोर और वंचित लोगों के हालात पर ईमानदारी से अपने लेखकीय दायित्व का निर्वाह करें ताकि देश के लोग न्यायपूर्ण खुशहाल जीवन जी सकें।

लाल मादड़ी-नाथद्वारा (राज.) मो.9829588494

चित्रों में उद्भ्रांत जी

उद्भ्रांत जी की पुस्तकें

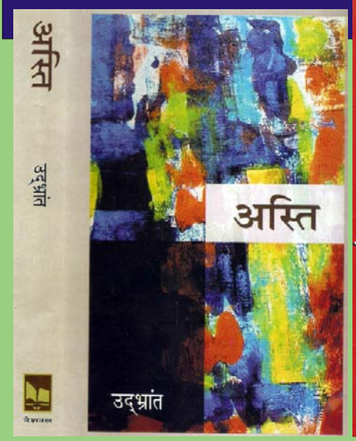

ઇન્ડેક્ષ્ટ-સી

ઇન્ડસ્ટ્રીઅલ એક્ષટેન્શન કોટેજ
(ગુજરાત સરકારની સંસ્થા)

રજી. ઓફીસ :
બ્લોક નં. ૭/૧, ઉદ્યોગ ભવન, સેક્ટર - ૧૧, ગાંધીનગર.
ફોન. : ૦૭૯ - ૨૩૨૫૪૨૬૧ - ફેક્સ:૦૭૯ - ૨૩૨૫૬૦૦૭
E-mail : exdire-indext-c@gujarat.gov.in
Website : www.craftofgujarat.gujarat.gov.in

ઇન્ડેક્ષ્ટ-સી - કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ સ્થાપવામા માહિતી અને માર્ગદર્શન પૂરું પાડતી ગુજરાત સરકારશ્રીની સંસ્થા

ઈન્ડેક્ષ્ટ-સીની રચના કોઈપણ નફાકારક પ્રવૃત્તિ સિવાયના નીચેના ઉદ્દેશો માટે થયેલા છે.

૧. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ સ્થાપવા ઈચ્છુક સાહસિકોને ઉદ્યોગોની પસંદગી, સ્થળ પસંદગી તથા જે તે ઉદ્યોગ માટે સરકારશ્રીના પ્રવર્તમાન પ્રોત્સાહનો / લાભો વિગેરેની જાણકારી આપવી.

૨. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ ક્ષેત્રની વિવિધ સહાયની યોજનાઓને એકત્રિત કરી તે વિશે ભાવિ ઉદ્યોગ સાહસિકોને માહિતી આપવી અને આવી માહિતીનું સાહિત્ય પ્રકાશિત કરવું.

૩. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ ક્ષેત્રના વિવિધ ઉદ્યોગની માહિતી અને ઉદ્યોગ માટેની રૂપરેખા (પ્રોજેકટ પ્રોફાઈલ)એકત્રિત કરી તે વિશે ઉદ્યોગ સ્થાપવા ઈચ્છુક વ્યકિતઓને તેની જાણકારી આપવી.

૪. કુટિર ઉદ્યોગ ખાતાની તથા કુટિર ઉદ્યોગ સંલગ્ન બોર્ડ / કોર્પોરેશનની વિવિધ યોજનાઓના ફોર્મ / અરજીપત્રક પૂરા પાડવા.

૫. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસ માટે જાહેરાત મારફત પ્રચાર ઝૂંબેશ ચલાવવી.

૬. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસ માટે સેમિનાર, વર્કશોપ તથા પ્રદર્શનનું આયોજન કરવું અને આવા આયોજન માટે સહાય પૂરી પાડવી.

૭. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસમાં ઉપયોગી હોય તેવી અન્ય પ્રવૃતિઓ હાથ ધરવી.

૮. કુટિર ઉદ્યોગ ક્ષેત્રની આર્થિક સમસ્યાઓના નિવારણ માટે બેન્કો તથા અન્ય નાણાંકીય સંસ્થાઓ જોડે ચર્ચા-વિચારણા હાથ ધરવી.

सपने और नियति

सुषमा मुनीन्द्र

सपने।

एक मुकम्मल परिभाषा देकर सपनों को डिफाइन नहीं किया जा सकता। कोई नहीं जानता सपने क्या हैं? कैसे बनते हैं? क्यों बनते हैं? सपनों की एक वास्तविकता होती है या एकदम अवास्तविक होते हैं? नींद में दिखने वाले सपने मनुष्य की अपेक्षित-इच्छित अधूरी मंशा होती है या दिन में देखे गये बहुत सारे दृश्य नींद में सपनों की रचना करते हैं? क्या इन सपनों में भविष्य के कुछ संकेत छिपे होते हैं? नाइट मेयर्स (डरावने सपने) तो ऐसे होते हैं कि लोग चीख मार कर उठ जाते हैं। सोने से डरने लगते हैं कि नाइट मेयर्स सतायेंगे। पते की बात यह है सपनों की कोई उम्र नहीं होती, मियाद नहीं होती, वास्तविकता नहीं होती लेकिन हर कोई रात में सपने देखता है। दिन में सपने पालता है। विचारक कहते हैं सपने बार-बार टूटते हैं और वे टूटने के लिये ही बने हैं लेकिन सपने देखना चाहिये क्योंकि वे एक जादू की तरह होते हैं। टूट कर भी उम्मीद और सकारात्मक भाव को पूरी तरह खत्म नहीं होने देते। हम इस उम्मीद में एक-एक कर कितने दिन बल्कि पूरी आयु गुजार देते हैं कि वह दिन आयेगा जब बार-बार टूट कर भी सपना अंतिम रूप से टूटने से बच जायेगा और हम लक्ष्य को पा लेंगे।

नियति।

एक मुकम्मल परिभाषा देकर नियति को भी डिफाइन नहीं किया जा सकता।

यह दिन में खुली आँखों से देखा जाने वाला एक दिवास्वप्न है या आशा, उम्मीद, योजना, गतिविधि, क्रियान्वयन, लक्ष्य? क्या सपना जब अंतिम रूप से टूट जाता है हम उसे नियति का सम्बोधन दे देते हैं? क्योंकि जहाँ सपना अंतिम रूप से टूट जाता है वहाँ एक ठहराव निर्मित हो जाता है। यह ठहराव मनुष्य को जिस निर्विकल्प स्थिति में डाल देता है वह नियति बन जाती है।

सपने।

नियति।

सिद्धि के सपने शायद टूटने के लिये बने हैं।

प्रबुद्ध की नियति शायद विधाता ने उसके भाल पर दोनों भौंहों के बीच जहाँ स्त्रियाँ बिन्दी लगाती हैं, ठीक वहीं एक छोटे, मामूली से उभरे हुये काले चमकदार तिल की जन्मजात सर्जना कर तय कर दी है।

कुछ रहस्य फिर रहस्य ही रह जाते हैं। तभी तो इस संसार में इतनी विविधता घटित होती है कि दिल से कभी आह-कराह, कभी वाह-उछाह अनायास निकल जाता है।

महीन आवाज, गोरे झक्क सुंदर मुख वाले दस वर्षीय प्रबुद्ध को सहपाठी खिझाते थे -

''प्रबुद्ध, तुम इस तिल के कारण लड़की लगते हो।''

शाला से लौटा, उद्विग्न मुख बनाये हुये प्रबुद्ध, सिद्धि से पूछता ''माँ, क्लास के लड़के कहते हैं मैं लड़की लगता हूँ।''

//2//

सिद्धि के दिवंगत चिकित्सक पति तीन बेटियों के बाद बड़े जप-तप से जन्में बेटे को अपनी तरह अच्छा सर्जन बनाना चाहते थे। ये कौन लड़के हैं जो उनके सपने जिसे उसने अपना सपना बना लिया है को तोड़ने की हिमाकत कर रहे हैं?

''प्रबुद्ध, तुम लड़के हो। तुम्हारे पापा कहते थे नाम अच्छा हो तो सब

चयन : मुकेश वर्मा

कुछ अच्छा होता है। इसीलिये उन्होंने तुम्हारा नाम प्रबुद्ध रखा।''

उच्छृंखल कटाक्षों से बेचैन होकर प्रबुद्ध ने स्कूल के अंतिम वर्ष में छोटी सी सर्जरी से तिल रिमूव करा लिया।

''माँ, मैं अब लड़की नहीं लगता न?''

''नहीं। तुम लड़के हो।''

कहते हुये सिद्धि बुरी तरह घबरा गई थी। इसे रोज देखती है लेकिन ठीक अभी पता चला अपनी भंगिमाओं, चेष्टाओं, फैशन के कारण इसकी स्त्रैण छवि बनती जा रही है।

सब कुछ ठीक चल रहा था। प्रबुद्ध के चिकित्सक पिता सड़क दुर्घटना में नहीं रहे और सब कुछ बिगड़ता चला गया। सिद्धि गहरे अँधेरे में डूब जाती लेकिन रोशनी के दो छोटे बिंदु उसके आस-पास थे। दो मंजिला मकान और छः साल का प्रबुद्ध। मकान, जीवन का अहम् हिस्सा होता है पहली बार जान रही थी। मकान न होता तो चार बच्चों के साथ न ससुराल में शरण मिलती, न मायके में। और प्रबुद्ध तो पिता की छवि यूँ लेकर जन्मा है कि उनके न रहने पर भी उनके होने का आभास बना रहेगा।

अद्‌भुत बात थी। प्रबुद्ध के लुक्स पिता की तरह थे फिर भी क्षीण काया, उज्ज्वल त्वचा, नारी प्रधान भंगिनाओं के कारण वह उनकी तरह पौरूष से दीप्त नहीं लगता था। सिद्धि, अतिशय सतर्कता - संरक्षण देकर प्रबुद्ध को इस तरह नाज से पाल रही थी मानो प्रबुद्ध को खराश आ जायेगी तो उसके पास जीने का कोई कारण, कोई बहाना, कोई माध्यम न बचेगा। सिद्धि की भावुकता, ठकुरसुहाती को परख कर प्रबुद्ध मर्जी का मालिक बनता गया। नियति असर दिखा रही थी या प्रबुद्ध, सिद्धि की उदारता का अतिरिक्त लाभ ले रहा था। उसे दूरदर्शन बचपन से लुभाता था। जब इस छोटे शहर में दूरदर्शन का प्रसारण शुरू हुआ, प्रबुद्ध छोटा था। आज की तरह असंख्य चैनल नहीं थे। निर्धारित वक्त पर प्रसारण होता था। प्रबुद्ध बुधवार और शुक्रवार के चित्रहार, रविवार सुबह की रंगोली, रविवार शाम की मूवी का दीवाना होता जा रहा था। उन दिनों बहुत कम परिवारों में टी.वी. सेट थे। मूवी देखने के लिये रविवार को प्रबुद्ध के घर बच्चे जुट जाते। खुद को प्रधान दर्शाते हुये प्रबुद्ध निर्देशित करता कौन कहाँ बैठेगा और शोर बिल्कुल नहीं करेगा। मूवी देखकर वह सम्मोहित हो जाता -

''माँ, मैं डांस सीखूँगा। गाना सीखूँगा। फिल्मों में काम करूँगा। टी.वी. सेट को पीछे से खोल कर दिखाओ, डांस करने के लिये इसमें कैसे घुसते हैं?''

सिद्धि उसकी चेष्टा पर मुग्ध हो जाती ''तुम अपने पापा की तरह अच्छे सर्जन बनोगे।''

''डांस करूँगा।''

वह बहनों की चूड़ियाँ, मोती की मालायें धारण कर, एक हाथ कनपटी पर, दूसरा कमर में रख कर ठुमकने लगता। अब टी.वी. चैनल में नाचने, गाने, जोखिम उठाने, बुद्धिमानी प्रमाणित करने वाले इतने सारे रियलिटी शो आयोजित होने लगे हैं कि अभिभावक दो-चार साल के बच्चों को नाच-गाना सीखने में झोंक दे रहे हैं पर उन दिनों नाच-गाना लड़कियों के जिम्मे था। नाच-गाने में रूचि रखने वाले लड़कों को नचनिया समझा जाता था। प्रबुद्ध को ठुमकते देख सिद्धि ताल देती जबकि कालेज में पढ़रही बड़ी पुत्री नलिनी हतोत्साहित करती -

''माँ, प्रबुद्ध नचनिया बन रहा है।''

सिद्धि किसी नतीजे और अंजाम पर ध्यान न देती ''बच्चा है।''

वह जैसे नींद में थी और प्रबुद्ध बहुत अच्छा सपना था। उसे पाठशाला के अतिरिक्त घर से बाहर नहीं जाने देती थी कि पास वाले चितहरा तालाब में

कुमुदिनी तोड़ने चला जायेगा और डूब जायेगा। पश्चिम दिशा में घर से कुछ फर्लांग की दूरी से गुजर रही रेल पटरी में दूसरे लड़कों की तरह दौड़ेगा और पटरी पर कान रख कर रेल के आने की ध्वनि सुनेगा। खेलने न जाने देती कि दौड़ते हुये गिरेगा या कोई मार-पीट देगा। सब्जी अथवा छोटी-छोटी चीजें लेने के लिये पास के बाजार में न जाने देती कि भीड़ में खो जायेगा। फिल्मी पत्रिकायें मँगाती कि प्रबुद्ध को पसंद हैं..... भिण्डी की सब्जी अक्सर बनाती कि प्रबुद्ध को पसंद है..... कई किस्म के अचार, चटनी बनाती कि प्रबुद्ध को पसंद है। फलस्वरूप घर में अघोषित दो गुट बन गये। एक गुट में सिद्धि और प्रबुद्ध दूसरे में पक्षपात सहती तीनों लड़कियाँ। सब्जी, भाजी लाते, गेहूँ पिसाते, नियमित कॉलेज-स्कूल जाते, फ्यूज बल्ब बदलते,, सिद्धि को लेकर बैंक जाते, साइकिल चलाते, मकान के भूतल में रहते किरायेदारों से किराये का हिसाब करते हुये लड़कियाँ व्यावहारिक होती गईं। सिद्धि की अतिरिक्त सुरक्षा में प्रबुद्ध मिट्टी का माधो बनता गया। कोई बात उसके मनमुताबिक न होती तो सिर में तेज दर्द होने का बहाना कर, कमरे में अँधेरा कर मुँह ढाँप कर पड़ा रहता। तीनों लड़कियाँ गैंगअप हो गईं। नलिनी मोर्चा सम्भालती -

''माँ, तुम प्रबुद्ध को बिगाड़ रही हो। बाजार का काम हम तीनों करते हैं। इसे सब्जी का झोला पकड़ने में शर्म आती है।''

सिद्धि बचाव करती ''छोटा है।''

''छोटा नहीं है। इस साल छठवीं पढ़रहा है। कोर्स की किताब कभी नहीं छूता। फिल्मी पत्रिकायें पढ़ता है। इससे फिल्म और कॉस्मेटिक प्रोडक्ट की बातें करा लो, हो गया।''

प्रबुद्ध दखल देता ''नलिनी, मुझसे मत लड़ो। मेरे सिर में दर्द होने लगता है।''

सिद्धि अनुमोदन करती ''नलिनी तुम सबसे बड़ी हो, यह सबसे छोटा है। इसका ध्यान रखो। बुराई करने लगती हो।''

मझली मंदाकिनी बोलती ''ध्यान रखते हैं। जानती तो हो सुहासिनी (छोटी बहन) चितहरा तालाब के पास वाले मैदान में साइकिल चला रही थी। तुम्हारी आँख बचा कर यह भी चला गया था। कुमुदिनी के लालच में तालाब में घुस गया था। सुहासिनी न बचाती तो डूब जाता। दोनों गीले कपड़ों में घर आये। प्रबुद्ध ने स्टोरी बना दी थी कि सुहासिनी उसे तालाब में ले गई। वह डूबने से बचा। तुमने वहशी की तरह सुहासिनी को पीटा था। माँ हम लोगों को बुरा लगता है। इस घर में वही होता है जो प्रबुद्ध चाहता है।

छोटा है पर हम लोगों को इससे डरना पड़ता है कि कुछ कह दो तो इसके सिर में दर्द हो जाता है। फिर यह खाना नहीं खाता है। इसे कितनी बहानेबाजी आती है।''

प्रबुद्ध दखल देता ''चुप रहो। मुझे सचमुच सिर में तेज दर्द उठने लगता है।''

सुहासिनी कहती ''सुधर जाओ प्रबुद्ध। चेहरे में क्रीम चुपड़ कर, नाखूनों में नेल पेंट लगाये घूमते हो।''

प्रबुद्ध ने ऊँगलियाँ फैलाई ''देख लो। नेल पेंट है?''

''स्कूल में डॉट पड़ी तब लगाना छोड़ा है।''

प्रबुद्ध का पतला-गोरा चेहरा तमतमा जाता ''सुहासिनी मुझसे जबान मत लड़ाओ।''

''मुझसे बड़ी बहस कर रहे हो। अभी फूफा या चाचा आ जायें तो भीतर छिप जाओगे।''

''क्योंकि ये जो एक ठो चाचा और दो ठो फूफा हैं शिक्षा बहुत देते हैं। छिंगली का नाखून क्यों बढ़ाते हो? बहनों से क्यों लड़ते हो? रोज स्कूल क्यों नहीं जाते? डॉक्टर साहब तुम्हें डॉक्टर बनाना चाहते थे, तुम डॉक्टर की लीद भी नहीं बन सकते .....। छीः ..... इतनी बकवास सुनने के लिये मैं इन लोगों के पास नहीं बैठ सकता। मेरा घर है, जैसे रहना होगा, रहूँगा।''

''तब डॉक्टर की लीद ही बनोगे। घर से बाहर निकलो। अच्छे लड़कों से दोस्ती करो। सेल्फ कान्फीडेन्स तुममें है ही नहीं।''

प्रबुद्ध पैर पटकता हुआ मास्टर बेड रूम में चला जाता। वह अपनी कक्षा की लड़कियों से बात नहीं करता था कि वे लड़कियाँ हैं। लड़कों से बात नहीं करता कि उसे छेड़ते हैं। घर से बाहर नहीं निकलता था कि सिद्धि निकलने नहीं देती थी।

प्रबुद्ध पचमढ़ी स्कूल टुअर में जाने का हौसला नहीं कर पा रहा था। सिद्धि जाने भी न देती। कक्षा में टुअर में जाने वाले विद्यार्थियों की सूची बनाई जा रही थी। छात्र बड़ी संख्या में छात्रायें बहुत कम जा रही थीं। उन्हें परिवार वाले जाने नहीं दे रहे थे। विद्यार्थियों ने प्रबुद्ध का उपहास किया ''कुछ लड़कियाँ फिर भी जा रही हैं। यह नहीं जा रहा। लड़कियों से भी गया-गुजरा है।''

प्रबुद्ध ने पचमढ़ी जाने का ऐसा हठ पकड़ा कि सिद्धि रोकना चाह कर भी रोक न सकी। निर्धारित तिथि पर उसे रेलवे स्टेशन पहुँचाने गई। उसके साथ बर्थ तक आई। छात्रों से कहा ''प्रबुद्ध का ध्यान रखें।''

उसी बर्थ पर बैठे एक शिक्षक ने चौंक कर सिद्धि को देखा ''आपको क्यों लगता है ये छात्र अपने साथ प्रबुद्ध का भी ध्यान रख लेंगे और प्रबुद्ध खुद अपना ध्यान नहीं रख सकेगा? घबराये नहीं। विद्यार्थियों को हम अपनी जिम्मेदारी पर ले जा रहे हैं।''

प्रबुद्ध की अनुपस्थिति में सिद्धि को घर, घर नहीं लग रहा था। प्रबुद्ध के लौटने पर उसके प्राण बहुरे। प्रबुद्ध ने बहुत अलग व्यवहार किया -

''माँ, लड़के मुझे सता रहे थे, तुम लड़की हो, तुम्हारी माँ ने कहा है हम तुम्हारा ध्यान रखें। सिर दर्द से फटा जा रहा है। आराम करूँगा।''

सिद्धि प्रबुद्ध से, उसके सिर दर्द, जिद से यूँ डरने लगी थी कि उसका साहस न हुआ अँधेरे शयन कक्ष में जाकर प्रकाश करे और प्रबुद्ध से समुचित जानकारी ले।

सिद्धि के सपने दरक रहे थे।

प्रबुद्ध की नियति प्रबल हो रही थी।

स्थितियाँ जाल बुन रही थीं।

इधर नलिनी एल0आई0सी0 में और मंदाकिनी एक निजी महाविद्यालय में नौकरी कर रही थीं, उधर प्रबुद्ध फिल्म जगत को लेकर दीवानगी बढ़ा रहा था। इधर नलिनी फिर मंदाकिनी विजातीय विवाह कर सिद्धि की इज्जत और जिम्मेदारी कम कर कूच कर गईं उधर दो साल में किसी तरह द्वितीय श्रेणी में बारहवीं उत्तीर्ण कर प्रबुद्ध ने उस कॉलेज में प्रवेश लिया जहाँ सुहासिनी एम0एस-सी0 कर रही थी। इधर सुहासिनी कर्तव्यनिष्ठ हो कोर्स पूरा कर रही थी उधर वह जानकारी एकत्र कर रहा था कि फिल्म लाइन में किस तरह भाग्य आजमाया जाये। फिल्मी नायकों की भाँति कभी कंधे तक बाल बढ़ा लेता, कभी मुंडन करा लेता, कभी कलमें हटा कर कटोरा कट बाल रखता, कभी बालों में कलरिंग करा लेता। उसका वस्त्र विन्यास परिवर्तनशील होता। कभी सुर्ख लाल पतलून, कभी सुआपंखी, कभी पारदर्शी सफेद शर्ट, कभी गले में स्कार्फ। कई किस्म के फेस पैक, स्क्रब, लोशन के उपयोग से चेहरा चमकाता। विद्यार्थी उसके करीब मँडराते -

''ऐसा चमकदार, गोरा चेहरा है कि लड़कियों को काम्प्लैक्स हो जाये।''

''इसके चेहरे को छूने की इच्छा होती है।''

''बहुरूपिया लगता है, सेक्स चेंज कर ले तो हसीन लगेगा।''

प्रबुद्ध असहज हो जाता। सिद्धि को सिर दर्द जैसा कारण बता कर हफ्तों

कॉलेज न जाता। सुहासिनी समझ रही थी लड़के प्रबुद्ध पर उच्छृंखल कटाक्ष करते हैं। इसीलिये जब सहपाठिनी निधि देशपाण्डे ने सूचित किया, सुहासिनी अपमानित और किंकर्तव्यविमूढ़ हुई, लेकिन अचरज नहीं हुआ -

''सुहासिनी, प्रबुद्ध को समझाओ अपना हुलिया सुधारे। मेरा भाई उसके साथ पढ़ता है। बता रहा था लड़के प्रबुद्ध को छेड़ते-चिढ़ाते हैं। उसे तुम लोग पढ़ाई के लिये कहीं बाहर क्यों नहीं भेज देते?''

''माँ से बात करूँगी।''

सुहासिनी जानती थी कहने का अर्थ नहीं, लेकिन सिद्धि से खुलकर बात करना जरूरी हो चला था -

''माँ, प्रबुद्ध को कहो अपना हुलिया बदले वरना परेशान रहेगा। यह खुद को हीरो समझता है। लड़के इसे बहुरूपिया कहते हैं।''

प्रबुद्ध अब हर बात चिल्ला कर, असभ्य तर्ज में करता था ''सुहासिनी लड़के बेहूदा हैं।''

सिद्धि दहशत में, ''प्रबुद्ध, कौन हैं ये बेहूदा लड़के? प्रिंसिपल से शिकायत करो। हे भगवान, हम शांति से क्यों नहीं रह पाते?'' सुहासिनी खुल कर बोली ''क्योंकि तुमने इसे जिम्मेदार नहीं बनने दिया। कभी सोचती हो तुम्हारे उदार व्यवहार ने इसका कितना नुकसान किया है?''

सिद्धि इस तरह सुहासिनी को देख रही थी मानो उसने अनोखी बात कर दी है - ''आज तुम्हारे पापा होते तो तुम मुझसे इस तरह बात करने की मजाल न करती। न ही लड़के, प्रबुद्ध को परेशान करने की हिम्मत करते।''

सुहासिनी चुप नहीं हुई ''माँ, बिना पिता के भी लड़के अच्छा करके दिखाते हैं बल्कि जिम्मेदारी जल्दी समझने लगते हैं। यह फिल्मों के सपने देखता है। पूरा नचनिया लगता है।''

प्रबुद्ध की सुंदर काली आँखें सुलगने लगीं ''तुम चार महिलाओं के बीच में रह कर मेरा और हो भी क्या सकता है? मुझे फिल्मों में अच्छा काम मिल जायेगा तो यही लड़के मेरे तलवे चाटेंगे।''

''फिल्मों में अच्छा काम मिलने के लिये टैलेण्ट चाहिये। तुम्हें कोई स्पाट ब्वॉय न बनायेगा। सपने न देखो, ग्रेजुएशन पूरा करो।''

''सुहासिनी तुम मुझे टार्चर कर रही हो। मेरा सिर दर्द से फट रहा है।''

''सिर दर्द तुम्हारा बिहैवियरल इश्यू है। न्यूरोलॉजिस्ट या साइकियाट्रिस्ट से कन्सल्ट करो।''

प्रबुद्ध को सचमुच परामर्श की आवश्यकता थी। रात को सोने की कोशिश करता तो वह दृश्य बहुत साफ दिखने लगता। कॉलेज के पीछे बने स्टेडियम के एकांत में उसे चार लड़कों ने घेर लिया था। बेहूदा गतिविधि शुरू करते इसके पूर्व थोड़ी दूरी पर गन्ने के खेत में काम कर रहे किसी ने हल्ला कर दिया था ''क्या हो रहा है वहाँ?''

लड़के असावधान हुये और प्रबुद्ध भाग चला। एक लड़का चिल्लाया ''चेहरे को इतना चिकना न बना किसी दिन एसिड डाल कर जला देंगे।''

यह दृश्य प्रबुद्ध के सक्रिय और सुप्त दिमाग में इतना प्रभावी होता गया कि उसकी नींद बाधित होने लगी। लगता लड़के दरवाजा तोड़ रहे हैं .....। छत पर कूद रहे हैं ..... एसिड डालना चाहते हैं .....। वह निद्रामग्न सिद्धि को झिंझोड़ डालता ''माँ, कितना सोती हो। लड़के छत पर चढ़गये हैं।''

आक्रांत आँखों वाला प्रबुद्ध, सिद्धि को डरा हुआ, विचित्र बल्कि विक्षिप्त लगता।

''कोई नहीं है।''

''आवाजें आ रही हैं। लड़के एसिड से मुझे जला देंगे।''

''सोने की कोशिश करो। नींद आ जायेगी।''

''जिसे नहीं मालूम कल का सूरज देखेगा या नहीं, उसे नींद नहीं आ सकती।''

''धीरे बोलो। सुहासिनी जाग जायेगी।''

जबसे सुहासिनी ने खुलकर सिद्धि पर आरोप लगाये, वह प्रबुद्ध से ही नहीं सुहासिनी से भी डरने लगी है। उसके लिये व्यथित भी होती है - नलिनी और मंदाकिनी इस घर की घुटन से निकल कर अपना संसार रौशन कर रही होंगी। इस बेचारी को प्रबुद्ध के कारण कॉलेज में विचित्र स्थिति का सामना करना पड़ता है। नलिनी और मंदाकिनी के अन्तर्जातीय विवाह के कारण इसके विवाह में बाधा आ रही है। प्रबुद्ध के मानसिक रोग का प्रचार हो गया तब तो सुहासिनी का विवाह और कठिन हो जायेगा। अच्छा घर-वर मिल जाता तो इसकी दुनिया आबाद हो जाती।

यह कामना सिद्धि ने शायद बड़े मन से की थी। सुहासिनी का विवाह हुआ और बड़ी शान से हुआ। प्रबुद्ध ने उसके उपदेश और हस्तक्षेप से मुक्ति पाई जबकि सिद्धि को लगा वह आखिरी सहारा थी। प्रबुद्ध टी.वी. पर मूवी देखता या सिर दर्द लिये कमरे में अँधेरा कर पड़ा रहता। उसे खुद से, सिद्धि से, परिवार से, समाज से, दुनिया से बहुत शिकायत थी। सिद्धि को अनिश्चय डराने लगे। सुहासिनी मोबाइल पर सम्पर्क बनाये रखती। उसकी सलाह पर, बड़ा जतन कर सिद्धि, प्रबुद्ध को मनोचिकित्सक के पास ले गई। चिकित्सक ने प्रश्न पूँछे। प्रबुद्ध ने उत्तर नहीं दिये। चिकित्सक धीरज से समझाने लगा - ''चूँकि आप मुझ पर विश्वास नहीं कर पा रहे हैं इसलिये अपनी परेशानी नहीं बता रहे हैं। होता है। जब भी कुछ पूँछना हो, बताना हो, बिना संकोच किये मेरे पास आ सकते हैं। ..... मानसिक रोगों के विषय में मैं सामान्य जानकारी आपको जरूर दूँगा। समझ लेंगे तो आप उपचार की मानसिकता बना सकेंगे। हारमोन के असंतुलन या गुण सूत्रों के विकार या वातावरण के प्रभाव से मानसिक रोग की शुरूआत होती है। व्यक्ति अपने व्यक्तित्व, सामाजिक-पारिवारिक वातावरण, अनुवांशिकता के कारण मानसिक रोगी हो सकता है। बचपन से लेकर बड़े होने तक व्यक्ति के स्वभाव, प्रकृति, अनुभव, वातावरण के बीच निरंतर क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है जिसका असर मस्तिष्क पर पड़ता है। कुण्ठा, हीनभावना, अवसाद, निराशा, वहम या एक ही विचार के बार-बार आने से व्यक्ति परेशान हो जाता है। उदासी घेर लेती है। फिर भी यह आम गतिविधियों की तरह एक स्थिति ही है। .....घबराने जैसी बात नहीं है। यह इलाज थोड़ा वक्त लेता है पर आप ठीक हो जायेंगे। काउन्सलिंग के लिये आइये। आपको अच्छा लगेगा। चाहें तो कुछ दिन के लिये शहर से बाहर कहीं घूम आयें .....।''

प्रबुद्ध इस तरह लापरवाह होकर बैठा रहा मानो चिकित्सक को कोई महत्व नहीं दे रहा है। सिद्धि को लगा चिकित्सक जाने-अनजाने उसे दोषी साबित कर रहा है। उसकी जोर से रोने की इच्छा हुई पर चिकित्सक कहेगा प्रबुद्ध को ही नहीं आपको भी उपचार की जरूरत है।

सिद्धि ने मोबाइल पर सुहासिनी से चर्चा की। सुहासिनी ने कुछ दिन के लिये अपने घर आने का प्रस्ताव रखा। प्रबुद्ध जाने को तत्पर न था। सिद्धि ने सकल जतन किये। सुहासिनी और उसके पति सज्जन ने बार-बार आग्रह किया कि उनके एक परिचित मनोचिकित्सक हैं। उनसे सेकेण्ड ओपीनियन ली जा सकती है। इच्छा या अनिच्छा से प्रबुद्ध सेकेण्ड ओपीनियन के लिये सहमत हो गया।

परिचित मनोचिकित्सक ने बहुत अधिक डरा दिया ''प्रबुद्ध आप इलाज से इतना डरते क्यों हैं? डिप्रेशन ऐसी अवस्था है जब रोगी विक्षिप्त हो सकता है। इलाज शुरू करना होगा।''

विक्षिप्त होने के अंदेशे ने प्रबुद्ध सहित सभी को समान रूप से विचलित

कर दिया। लम्बा-मँहगा उपचार शुरू हुआ। काउन्सलिंग हुई। इंजेक्शन लगे। एक बार शॉक दिया गया। प्रबुद्ध को लगा यहाँ से वह बॉडी बनकर अपने घर लौटेगा। क्षमता भर चीखने से उसके गले की नसें फूल रही थीं -

''माँ, घर चलो। यहाँ मेरी हत्या हो जायेगी।''

प्रबुद्ध की दारूण दशा देखकर सिद्धि स्तब्ध थी '' शुभ- शुभ बोलो बेटा।''

''मैं यहाँ नहीं रहूँगा।''

प्रबुद्ध की पतली टाँगें काँप रही थीं।

सज्जन ने सहारा देकर उसे अपने समीप बैठाया ''प्रबुद्ध, हम सब तुम्हारी भलाई चाहते हैं।''

'' शॉक दिलवा कर?''

''अपना हुलिया सुधारो। यह जो पारदर्शी काली टी शर्ट और छोटा सा हाफ पैण्ट पहने हो, भद्दा लगता है। परिवार में रहने का एक तरीका होता है।'' ''मुझे फिल्म लाइन में जाना है। यह लेटेस्ट फैशन है।''

''फिल्म वाले कुछ भी पहन लेते हैं पर हम लोग ऊटपटाँग फैशन अपनाते हैं तो लोग खिल्ली उड़ाते हैं। कौन फिल्म स्टार कौन सी क्रीम लगाता है, कौन सी हीरोइन योगा क्लास चलाती है, कौन डांस क्लास, किसका, किससे ब्रेक अप हुआ यह जानने में अपनी एनर्जी और समय को बर्बाद मत करो। बी0एस-सी0 पूरा कर लो तो अस्पताल में तुम्हें अनुकम्पा नियुक्ति मिल सकती है। बिजी रहोगे। स्वस्थ हो जाओगे।''

प्रबुद्ध पर विपरीत असर हुआ ''माँ, तुम सुहासिनी और जीजा पर बड़ा भरोसा करती हो। मुझे टार्चर कर रहे हैं। मैं यहाँ नहीं रहूँगा।''

सिद्धि को प्रबुद्ध बहुत दयनीय, असहाय लगा। इसके स्वास्थ्य लाभ के लिये यहाँ आई पर बच्चा एकदम टूट गया है। प्रबुद्ध को लेकर लौट आई।

एकांत घर में जीने की कोशिश करते माँ-बेटे।

प्रबुद्ध अक्सर कहता ''माँ, मैं मुम्बई जाकर फिल्म इण्डस्ट्री में किस्मत आजमाना चाहता हूँ।''

''बी.एस-सी. फाइनल ही तो बचा है। पूरा कर लो। फिल्म इण्डस्ट्री में भी एजुकेशन को महत्व देते होंगे। ग्रेजुयेट होते ही अनुकम्पा नियुक्ति के लिये आवेदन कर दो। नौकरी तुरंत नहीं मिल जायेगी। इस बीच मुम्बई हो आना।''

सिद्धि मानो उसे भ्रम दे रही थी।

वह भ्रम में जीने का आदी था।

लेकिन सभी के खाते में कुछ अच्छे दिन होते हैं। दो साल लगे लेकिन प्रबुद्ध विज्ञान स्नातक हो गया। अनुकम्पा नियुक्ति के लिये आवेदन किया। सिद्धि को योजना समझाई -

''माँ, नौकरी आज ही तो मिल नहीं जा रही है। मैं एक बार मुम्बई जाना चाहता हूँ। वो मेरा क्लासमेट था न विश्वनाथ।''

''कौन विश्वनाथ?''

''एक-दो बार घर आया है। तुम कहती थी इसे घर न आने दिया करो। फिल्मों की बहुत बात करता है।''

''याद नहीं है।''

''उसके जयंत चाचा फिल्म लाइन में हैं। कुछ दिन हुये एक शादी में विश्वनाथ के घर आये थे। अखबार में उनका इन्टरव्यू छपा था। इन्टरव्यू पढ़कर मैं उनसे मिलने विश्वनाथ के घर गया। वे बोले मुम्बई आओ, काम दिलायेंगे। माँ, मैं विश्वनाथ के साथ जाना चाहता हूँ।''

''जयंत ने कौन सा तुरूप मार दिया जो तुम्हें काम दिलायेंगे। एक-दो फिल्म में पंडा और दूधिये के रोल में दिखे हैं।''

''तुम फिल्म नहीं देखती इसलिये उनके काम को नहीं जानती। वे कई फिल्मों के नाम बता रहे थे।''

''तुम दुनिया का छल-कपट नहीं जानते। चार दिन में लुटे-पिटे चले आओगे।''

''चार दिन को ही जा रहा हूँ लेकिन लुटा-पिटा नहीं अच्छा चेंज लेकर लौटूँगा। विश्वनाथ साथ में जा रहा है। वहाँ जयंत चाचा हैं ही। एक बार देखूँ तो। आज ही तो काम नहीं मिल जायेगा।''

सिद्धि का बैंक खाता अमीर नहीं तो गरीब भी नहीं है। जमा होती फेमिली पेंशन व मकान के किराये से समृद्ध है। उसने आवश्यकता से अधिक पैसा व अपना ए.टी.एम. कार्ड देकर प्रबुद्ध को रवाना किया। काफी पैसा खर्च कर प्रबुद्ध आठवें दिन लौट आया -

''जयंत चाचा ने कहा है, आते रहो। काम दिलायेंगे।''

नहीं बता सका जयंत चाचा से एक दिन भी मुलाकात नहीं हुई क्योंकि शूटिंग में वे बाहर थे।

''ठीक है, तब तक शायद पोस्टिंग मिल जाये।''

''देखो, क्या होता है।''

खाते का एक और अच्छा दिन।

प्रबुद्ध को स्टोर कीपर का पद मिल गया। सिद्धि को लगा सपने बार-बार टूटते हैं लेकिन अंतिम रूप से टूटने से बच जाते हैं। नियति धोखे देती हुई प्रतीत होती है लेकिन सही वक्त आने पर सब कुछ ठीक कर देती है। प्रबुद्ध को प्रथम नियुक्ति तेईस किलोमीटर दूर कस्बे में मिली। फिर जल्दी ही स्थानीय जिला अस्पताल में स्थानान्तरित होकर आ गया। सिद्धि ने नातेदारों-परिचितों में खूब प्रचार किया -

''प्रबुद्ध, सरकारी नौकरी में है। अच्छी लड़की बताओ। मैं बहू की जिंदगी भर गुलामी करूँगी, बस वह मेरे बच्चे को खुश रखे।''

नातेदार, इस सपने देखती स्त्री का दिल नहीं तोड़ना चाहते थे कि प्रबुद्ध से सहानुभूति रखी जा सकती है, किसी लड़की को इसके साथ बाँधने की मूर्खता नहीं की जा सकती। वे औपचारिक आश्वासन दे देते ''अच्छी लड़की मिलती है तो जरूर बतायेंगे।''

सिद्धि आश्वस्त हो चली थी।

प्रबुद्ध के संकट खत्म न हो रहे थे।

''माँ, अस्पताल में बहुत भ्रष्टाचार है। दवाईयाँ बेंच दी जाती हैं। मैं हिस्सा नहीं लेता हूँ लेकिन किसी दिन जाँच होगी, मैं फँस जाऊँगा।''

''प्रबुद्ध, कौन क्या करता है ध्यान मत दो। अपना काम करो।''

''अस्पताल में गंदी राजनीति होती है। गुण्डे-बदमाश नर्स ढूँढने आते हैं। मुझसे कहते हैं नर्सें दिलाओ।'' सिद्धि को प्रबुद्ध का भयभीत चेहरा भोले बच्चे की तरह लगा। ईश्वर, इस बच्चे को कहीं सुकून क्यों नहीं मिलता? क्या इसे निरर्थकता में ही जीना है? क्या यही इसकी नियति है? क्या इसीलिये चाह कर भी उस होने को रोक नहीं पाती है जो हो रहा है? .....अशक्त-विवश सिद्धि देख रही है .....प्रबुद्ध मेडिकल लगाता है ..... छुट्टियाँ लेता है ..... ज्वॉइन करता है ..... सिर दर्द लिये अँधेरे शयन कक्ष में पड़ा रहता है ..... मोबाइल पर किसका कॉल आता है कि सुनकर स्याह पड़ने लगता है .....। रहस्य फिर रहस्य ही रह जाता। लेकिन प्रबुद्ध नहा रहा था इधर उसके सेल फोन पर निरंतर रिंग आ रही थी। सिद्धि ने जैसे ही कॉल रिसीव किया, मोटी-मर्दाना आवाज सुनाई दी ''.....नर्सें दिलाओ, वरना तुम्हें परेशान .....।''

सिद्धि का मुख उसी तरह स्याह पड़ गया जैसे कॉल सुनकर प्रबुद्ध का पड़ जाता है। स्त्रैण छवि के कारण इसे परेशान किया जा रहा है? एसिड फेंकने की धमकी देने वाले छात्रों ने इसे किस स्तर पर सताया होगा? सद्यःस्नात

प्रबुद्ध ने सिद्धि की उड़ी रंगत देखी ''माँ, तुमने मेरा कॉल रिसीव क्यों किया?''

''प्रबुद्ध, यह तो सचमुच नर्स .....

''तुम्हीं कहो। यह नौकरी करने लायक है? यह शहर रहने लायक है?''

''कुछ दिन के लिये सुहासिनी के पास .....

''कब तक भागते फिरेंगे? विश्वनाथ कहता है फिल्म इण्डस्ट्री में काम चाहिये तो वहाँ रहना पड़ेगा। स्ट्रगल करना पड़ेगा।''

''एक बार इतना पैसा बर्बाद कर आये। फिर चार दिन में लुटे-पिटे चले आओगे।''

''हो सकता है लौट आऊँ। तुमने मेरा आत्मविश्वास डेवेलप ही नहीं होने दिया। बहनें ठीक कहती हैं ओवर प्रोटेक्शन देकर तुमने मुझे मिट्टी का माधो बना दिया है। मैं नलिनी और मंदाकिनी की तरह साहसी, और सुहासिनी की तरह व्यवहारिक नहीं बन पाया। सब तुम्हारे कारण।''

अब यही होने लगा था।

प्रबुद्ध, सिद्धि को आरोपी बनाने का मौका न चूकता।

सिद्धि, विपरीत बोलकर उसकी परेशनी नहीं बढ़ाना चाहती। लेकिन बोली - ''मैंने अच्छा, बुरा जो भी किया, अपने हिसाब से सही समझ कर किया। ईश्वर से हमेशा तुम्हारा कल्याण माँगती रही। कौन से देवी-देवता नहीं सुमिरती .....आज एक बात जरूर पूँछूगी। तुमने कभी अपना क्रिया-व्यवहार बदलने के लिये क्यों नहीं सोचा? सारी अड़चनें तुम्हीं से क्यों जुड़ती हैं? खुद को बदलने का विचार क्यों नहीं सताता?''

प्रबुद्ध अवाक्। सिद्धि को आरोपी बना कर बरी हो जाता था। ये तो पलटवार करने लगीं।

''कोई भी योजना बनाता हूँ, तुम पानी फेर देती हो। गुण्डे-बदमाश किसी दिन मुझे मार डालेंगे या गला घोट कर मैं अपना अंत कर लूँगा। मुझे जीने में उलझन होने लगी है।''

प्रबुद्ध की दृष्टि इतनी विचित्र थी कि सिद्धि डर गई - ठीक इसी वक्त इसे तेज सिर दर्द होगा या विक्षिप्त हो जायेगा या उस पर आक्रमण कर देगा। प्रकम्पित आवाज मे बोली -

''सुहासिनी और सज्जन से सलाह ले .....।''

''जीजा नर्वस कर देंगे। नहीं चाहते मैं कुछ अच्छा करूँ। विश्वनाथ साथ में जायेगा। जयंत चाचा का मोबाइल नम्बर मेरे पास है।''

संक्रमण काल।

अब कहने का अर्थ नहीं।

लेकिन कुछ दर्दनाक घट गया तो .....। आगे नहीं सोच पाई सिद्धि।

प्रबुद्ध काफी रूपिया और सिद्धि का ए0टी0एम0 कार्ड लेकर विश्वनाथ के साथ मुम्बई चला गया। इधर सिद्धि दहलती रही। खुद को भरमाती रही। सपने टूटते रहे ..... टूटने से बचाये रखने की कोशिश करती रही। उधर प्रबुद्ध की नियति का निर्धारण हो रहा था। विश्वनाथ, प्रबुद्ध के धन से मौज-मजा कर एक सप्ताह में लौट आया। जयंत चाचा ने उसे अपना पेइंग गेस्ट बनाकर एक मुश्त रकम लूटी।

छः माह बाद प्रबुद्ध लौटा।

वृहदाकार फोटो एलबम सिद्धि को दिखाते हुये बच्चों की तरह किलक-कुहुक रहा था'' माँ, मेरा पोर्ट फोलियो देखो।''

इनडोर, आउटडोर शूटिंग के क्लोजअप, फुल पोज, हाफ पोज, साइड पोज। विविध मुद्रायें, पोशाकें, केश- विन्यास, भाव-भंगिमायें। रंग, चमक, मुस्कुराहट।

''जयंत चाचा ने मदद की ..... मुझे परितोष फोटोग्राफर से मिलवाया। परितोष इतना अच्छा पोर्ट फोलियो बनाता है कि कई लड़के-लड़कियों को अच्छे रोल मिल गये। ..... परितोष कह रहा था मेरा फेस फोटोजेनिक है, कद अच्छा है। मुझे अच्छे रोल मिल सकते हैं ..... कह रहा था ब्रेक दिला सकता है। कुछ प्रोड्यूसर, डिरेक्टर से उसका अच्छा परिचय है। जयंत चाचा भी मदद करेंगे ..... माँ मुझे अच्छा काम मिलने लगेगा तो हम मुम्बई शिफ्ट हो जायेंगे ..... इस शहर ने तो तबाह ही किया .....।''

सिद्धि प्रफुल्ल प्रबुद्ध को देखती रही। इसकी आँखों में आश्वासन है, चेहरे में चमक है, कुछ कर दिखाने का जज्बा है। ..... तो इसे मौका दिया जाये। भर ले पैरों में ताकत। खड़ा हो जाये अपने ही सहारे। स्थान परिवर्तन और रूचि का काम करने से यदि इसकी मानसिक स्थिति में सुधार होता है तो जिंदगी को जिंदगी की तरह जीना सीख लेगा। यह तो जैसे हर क्षण मौत ही जीता रहा है। मुम्बई में प्रबुद्ध का काम जम जाता है तो मकान बेंच कर वहाँ शिफ्ट हो जायेगी। अक्सर नहीं लेकिन होता है जब फेलियर लोग इतिहास रच देते हैं। आयेंगे सपनीले - झिलमिल दिन .....।

सिद्धि को एक सपना थमा कर प्रबुद्ध मुम्बई लौट गया। दिन बीते ..... सप्ताह .....महीने .....। प्रबुद्ध कॉल कर सिद्धि को शूटिंग की बात बताता ..... फिल्म का टाइटिल अभी नहीं रखा गया ..... रिलीज होगी तो बतायेगा .....। एकांत घर में अकेले कठिन समय बिताती सिद्धि। टी.वी. में मूवी देखने का खूब अभ्यास कर लिया है। नई रिलीज्ड मूवी देख रही है ..... सपने को अंतिम रूप से तोड़ने के लिये स्क्रीन पर है यह दृश्य .....। विश्वास नहीं होता सलवार-कुर्ते, पोनीटेल वाली जो लम्बी-छरहरी काया एक कार्यालय में घुस कर समूह भर किन्नरों के साथ कमर लचकाते, ताली पीटते हुये हाय ..... हाय..... राजा ..... कह रही है, वह प्रबुद्ध है। समूह में सबसे अधिक खूबसूरत लगने के कारण कैमरा कम से कम एक मिनिट उसके चेहरे और भाव भंगिमाओं पर फोकस था। सिद्धि की हृदय गति इतनी तेज अब तक न हुई थी। ईश्वर, जिस बच्चे का जन्म सुंदर था, जीवन सुंदर क्यों नहीं हुआ? बड़े अरमानों से इसे नेक इंसान और सफल सर्जन बनाने के सपने देखे थे। उम्र के बत्तीसवें वर्ष में यह क्या बन गया? ..... दिवास्वप्न, दुःस्वप्न में क्यों बदल जाते हैं? ..... यह लड़का जिंदगी को जिंदगी की तरह क्यों नहीं जी पाता? ..... इसकी परेशानियाँ खत्म क्यों नहीं होतीं? ..... हल क्यों नहीं निकलता? ..... घुटन खत्म क्यों नहीं होती? ..... किसी दरीचे से इसके पास तक ताजी हवा क्यों नहीं पहुँचती? सचमुच इसके साथ ज्यादती हुई है। अनजाने में ही सही। इसे वे हाथ नहीं मिले जो सँवार देते। कोमल हाथ बहुत उम्दा मिट्टी से भी सुंदर पात्र नहीं गढ़सकते। गढ़ने के लिये हाथों का निर्धारित दबाव जरूरी है। ओह .....इस छोटी सी भूमिका के लिये यह बच्चा किस संघर्ष , शोषण से गुजरा होगा .....।

सिद्धि के गले में है कड़वाहट, आँखों में आँसू .....। फिल्म को अंत तक देखती रही। प्रबुद्ध अगले किसी दृश्य में दिखेगा।

नहीं दिखा।

द्वारा श्री एम.के.मिश्र 'एडवोकेट'
लक्ष्मी मार्केट, रीवा रोड
सतना (म.प्र.) - 485001
मोबाइल नं. 08269895950

86 वें जन्मदिन पर हार्दिक बधाईयों सहित

व्यंग्य में शालीनता के पक्षधर - सूर्यकांत नागर

हरीश कुमार सिंह

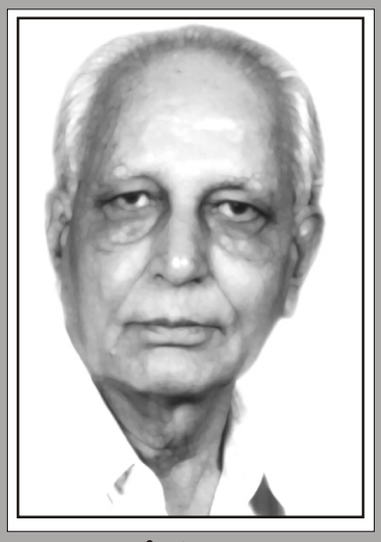

सूर्यकांत नागर
जन्म 3 फरवरी 1933
शाजापुर (म.प्र.)

इंदौर निवासी पिच्चासी वर्षीय वरिष्ठ व्यंग्यकार श्री सूर्यकांत नागर यूँ तो हरफनमौला साहित्यकार हैं मगर व्यंग्य में उनकी उपस्थिति को बहुत ही आदर और सम्मान से रेखांकित किया जाता है। हरफनमौला इसलिए कि साहित्य की प्रमुख विधाओं में श्री नागर जी ने खूब लिखा है और उपन्यासकार ,कहानीकार या एक कथाकार के रूप में वे सुविख्यात हैं। जब दसवीं कक्षा में थे तभी संपादक के गुण भी आपमें आ गए थे और 'विद्या' नामक हस्तलिखित पत्रिका अपने संपादन में निकाल डाली। लघुकथाओं में आपका नाम इतना विख्यात है कि विश्व लघुकथा कोष में आपकी लघुकथाएं सम्मिलित हैं। प्रसिद्ध समाचार पत्र नई दुनिया में वर्षों तक फीचर संपादक रहे तो कभी चेहरे पर वो संपादकीय दंभ नहीं ओढ़ा बल्कि बहुत ही विनम्रता से आगंतुक रचनाकारों से मिला करते थे। आपकी कई रचनाओं का अन्य भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। आपका उपन्यास 'युद्ध जारी रहे' साहित्य जगत में चर्चित रहा है। मध्यप्रदेश साहित्य परिषद के सुभद्राकुमारी चौहान पुरस्कार सहित देश भर के अनेकों सम्मान आपको मिले। दो व्यंग्य संग्रह , दो उपन्यास सहित करीब बीस पुस्तकें आपकी प्रकाशित हुई हैं। जोहान्सबर्ग के 2012 के विश्व हिन्दी सम्मलेन में शिरकत और मारीशस की यात्रा भी आपने की है।

अब बात नागर जी की 'व्यंग्य' यात्रा पर। हालांकि नागर जी मानते हैं कि व्यंग्य लेखन एक नैसर्गिक देन है और व्यंग्य एक आलोचनात्मक यथार्थ है। व्यंग्य लेखन के लिए चिन्तन ,मनन ,अध्ययन ,अनुभव का होना जरूरी है। एक अच्छा व्यंग्यकार होने के लिए एक ख़ास किस्म की व्यंग्य दृष्टि ,राजनीतिक ,सामाजिक ,आर्थिक समझ और कल्पनाशीलता जरूरी है और एक अनुकूल समावेशी भाषा भी। एक सार्थक व्यंग्य के लिए प्रतिबद्धता जरूरी है और परसाई की तरह ही नागर जी का मानना है कि प्रतिबद्धता इससे तय होती है कि समाज में जो द्वंद है, विषमता है, विसंगति है उसमें लेखक किस और खडा है - पीड़ित के साथ या शोषक के साथ। व्यंग्य केवल वार करने के लिए नहीं होता बल्कि उसमें मानवीय करूणा भी होना चहिये। नागर जी यह भ्रम भी नहीं पालते कि व्यंग्य लेखन से को समाज सुधार या क्रांति आ सकती है बल्कि वे यह मानते हैं कि एक व्यंग्य का एक पत्थर उछालकर ठहरे पानी को थरथराया जा सकता है , शांत पानी में लहरें तो पैदा की ही जा सकती हैं।

व्यंग्य में हास्य और व्यंग्य के बारे में नागर जी का मानना है कि शुद्ध हास्य और शुद्ध व्यंग्य दो जुदा चीजें हैं। हास्य और व्यंग्य को आप अलग अलग मानते हैं तथा आपका कहना है कि शुद्ध हास्य लिखना आसान नहीं है और व्यंग्य भी आपको हंसा सकता है पर व्यंग्य की हंसी में एक खरोंच होती है ,एक चीख होती है। व्यंग्य की हंसी मनोरंजन नहीं करती बल्कि एक टीस पैदा करती है। व्यंग्य विधा है या नहीं इस विवाद में पड़े बगैर नागर जी मानते हैं कि व्यंग्य अपना कार्य कर रहा है और यदि अच्छे व्यंग्य लिखे और पढ़े जाएँ तो व्यंग्य अन्य विधाओं से स्वतः आगे निकल जाएगा। नागर जी के अधिकतर व्यंग्य सामाजिक ही हैं और नागर जी के धीर, गंभीर, विनम्र व्यक्तित्व की तरह उनके व्यंग्य भी शालीनता की सीमा में प्रवृतियों पर प्रहार करते हैं। उनके व्यंग्य के विषय मानव का दोहरा चरित्र, साहित्य की राजनीति, समाज की विसंगतियों के विरूद्ध आवेश, आक्रोश और असंतोष है। कथाकार होने से नागर जी के व्यंग्यों की शब्द सीमा पर कोई सवाल खड़ा नहीं होता। नागर जी के व्यंग्य, शब्द सीमा के मामले में व्यंग्य की कसौटी खरे उतरते हैं क्योंकि क वरिष्ठ व्यंग्यकार अखबारों के शब्द सीमा वाले स्तंभों को व्यंग्य न मानकर, व्यंग्य टिप्पणी मात्र मानते हैं और उसे व्यंग्य के नाम पर खारिज भी करते हैं। नागर जी स्वयं ऐसे व्यंग्य स्तंभों के संपादक रहे हैं इसलिए उनका यह कहना उचित है कि श्रेष्ठ व्यंग्यकार वही है जो पाठक का कम समय लेकर उसे अधिकाधिक दे। अखबारों में व्यंग्य स्तंभ परसाई जी, शरद जोशी, रविन्द्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल, गोपाल चतुर्वेदी, डॉ. शिव शर्मा , ज्ञान चतुर्वेदी , प्रेम जनमेजय, सुशील सिद्धार्थ, कैलाश मंडलेकर, डा पिलकेंद्र अरोरा सहित अन्य व्यंग्यकार लिखते रहे हैं और ये स्तंभ लोकप्रिय भी हुए। जाहिर है कि अखबारों के ये व्यंग्य कालम केवल शब्द सीमा के कारण खारिज नहीं किये जा सकते बल्कि समसामयिक मुद्दों पर लिखने के लिए भी काफी मानसिक श्रम और सजगता जरूरी होती है। भागमभाग की इस दुनिया में जहाँ पठन पाठन के लिए समय निकालना कठिन होता जा रहा है , अखबारों के व्यंग्य स्तंभ , यदि संपादक व्यंग्य का जानकार है तो अपनी अलग अहमियत रखते हैं। व्यंग्य लिखने के लिए जीवन के कटु अनुभवों से नागर जी ने बहुत कुछ सहा और सीखा जो उनके व्यंग्य लेखन में परिलक्षित होता है। नागर जी के व्यंग्य की भाषा अलंकारिक न होकर पाठक के लिए सुगम लेकिन प्रभावी होती है। नागर जी कहते हैं कि मेरे लिए व्यंग्य लिखना चुनौतीपूर्ण है और व्यंग्य लेखन दिन प्रतिदिन कठिन होता जा रहा है। नागर जी की यह साफगोई और स्वीकारोक्ति उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही है क्योंकि आजकल व्यंग्य लेखन कईयों के लिए बाएं हाथ का खेल हो गया है। इधर घटना घटी और उधर एक समसामयिक व्यंग्य तैयार। व्यंग्यकारों की यही प्रवृति ,व्यंग्य के लिए खतरा बनती जा रही है क्योंकि ऐसा व्यंग्य ,व्यंग्य न होकर एक ,टिप्पणी बन जाता है जिसे व्यंग्य समझकर और भी उसी राह पर चल पड़ते हैं जबकि व्यंग्य लेखन सबसे कठिन और जिम्मेदारी का लेखन है और नागर जी समाज की विसंगतियों की कलम से चिकित्सा कर अपनी जिम्मेदारी बखूबी सकारात्मक व्यंग्य के जरिये निभा रहे हैं।

नागर सा.सदैव स्वस्थ एवं सृजनरत रहें। ऐसी मंगलकामनाएँ

सी-1/3, ऋषिनगर, उज्जैन मो.9425481195

समावर्तन को अपने अभिनव सृजन सहयोग और वक्रोक्ति स्तम्भ को सम्पादन की उष्मा देने वाले वरिष्ठ कथाकार व्यंग्यकार श्री सूर्यकांत नागर को उनके 86वें जन्मदिवस पर समावर्तन परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाओं के साथ यहाँ प्रस्तुत है समावर्तन के कार्यकारी संपादक डॉ.हरीश कुमार सिंह का यह आलेख जो नागर सा. की 'व्यंग्यकार शख़्सियत' पर एक महत्त्वपूर्ण वक्तव्य है।

- संपादक

काव्यराग 16

समावर्तन के अधबीच कविता केन्द्रित विशेष अर्द्धवार्षिक स्तम्भ

इस बार विशिष्ट कवि : प्रदीप मिश्र

(46)

काव्यभूमि : श्रीराम दवे

(47)

प्रदीप मिश्र की कविताएँ

(48)

चहचहाती हुई कविता लिखने का

रियाज़ कर रहा हूँ : प्रदीप मिश्र

(50)

प्रदीप मिश्र की कविता पर

सुधीजनों के विचार

(51)

रानी श्रीवास्तव की कविताएँ

(52)

जगदीशचन्द्र पण्ड्या 'अक्स' की ग़ज़लें

(52)

सूर्यप्रकाश मिश्र के दो गीत

(53)

विशेष आलेख : कवि की लीला

डॉ.भगवतीलाल राजपुरोहित

अनुभूति के आलोक में सृजन का पर्व

श्रीराम दवे

अनुभूति को अनुकूल शब्दों का साथ मिल जाता है तो सर्जना सफल हो जाती है किन्तु यही अनुभूति जब अपने समय को अभिव्यक्त करने लगती है तब वह सर्जना महत्त्वपूर्ण हो जाया करती है। सही भी है, आज की सृजनात्मकता केवल काल्पनिक नहीं है। अपने समय से पुष्ट हुआ अनुभव और चिन्तन की पैगे जब उसी अनुभव को नए बिम्ब, नए अर्थ और नयी सर्जना की शक्ल में ढालते हैं तब मौन मुखर हो जाता है, शब्द बोलने लगते हैं अर्थ और अनुभूतियाँ नए परिधान पहन कर शब्दों का वसन्त चित्र लिखित कर देते हैं।

वसन्त से याद आया, अभी मौसम वसन्त का ही है जो वस्तुतः सृजन का ही पर्व है। सृजन की ऋतु में आइये, काव्यराग छेड़े और समकालीन कविता के एक ऐसे युवा हस्ताक्षर की कविताओं से रूबरू हों जिसकी स्मृतियों में गाँव, गलियाँ और घर अभी भी टटके हुए हैं। उसे अपनी जड़ें और नाभिनाल की स्मृतियाँ कुरेदती है और वह फिक्रमंद हो जाता है। जी हाँ, हम बात कर रहे हैं अपनी युवावस्था पार कर रहे युवा कवि प्रदीप मिश्र की जो पेशे से तो 'केट' में तकनीकी अधिकारी है किन्तु दुनियाभर की फिक्रें पालता है और कविता के मिजान में खरा रहता है। अपने शब्द अपनी भाषा और उसके व्याकरण और उच्चारण को लेकर कवि नहीं अकवि ही सही कहलाने किन्तु खरी-खरी कहने वाले प्रदीप अपनी टोन को यथावत रखना चाहते हैं और यह भी कि वे इन दिनों चहचहाती हुई कविता लिखने का रियाज़ कर रहे हैं -

मैंने गढ़लिया है तर्क कि/रौशनी से भी प्रदूषण होता है और/बुझा देता हूँ जलते हुए दीपक को/ दीपक मुझसे पूछता रहता है/रोशनी का पता/ रोशनी तो मेरे पूरबिया टोन में थी/जहाँ मेरी भाषा कमजोर पड़ गयी थी उच्चारण और व्याकरण के बाजार में।

काव्यराग का दूसरा स्वर पटना (बिहार) की रानी श्रीवास्तव का है जो रोशनदान में छिपी गौरेया के उस प्रश्न को सुन लेती है जिसे गौरेया ने घोंसले के तिनकों से किया है, पानी में भीगती हुई मनी प्लान्ट की पत्तियों की अनभिज्ञता को महसूसती है और तमाम स्त्रियों, तमाम लड़कियों की सुरक्षा के लिए चिन्तित रहती है-

स्त्री जलती जीवन भर/धुआं नहीं लपट नहीं
भीतर ही भीतर की आँच/ भीतर ही भीतर का ताप
वह जलती है सिर्फ जलती/ तिल-तिल

काव्यराग में तीसरा स्वर एक उस्ताद शाइर का है। शाइर हैं श्री जगदीशचन्द्र पण्डया 'अक्स'। 'अक्स' जी वैसे तो एक राष्ट्रीयकृत बैंक के बड़े अधिकारी होकर सेवानिवृत्त हैं किन्तु इन दिनों एक के बाद एक करके अपनी ग़ज़लों और अशआरों आदि के मज़मुए शाया कर रहे हैं। देखकर लगता है कि इन्होंने कितनी नफ़ासत के साथ अपनी अनुभूतियों को सहेजा है और वक्त आने पर उन्हें दीवान बनाकर पेश भी कर दिया है। अक्स जी का एक शेर जो मेरे ज़ेहन में न जाने कब से पैबस्त हुआ है, आप तक पहुँचाता हूँ-

हर तरफ पाये तकल्लुफ़ और तबस्सुम के फरेब-
घर नहीं घर रह गये अब 'अक्स' होटल हो गये

खुशी और परेशानियों के धोखों के बीच घरों के बदलते मिज़ाज की यह बानगी निश्चित ही उन्हें अमीर बनाती है। ग़ज़लों में और भी ऐसे कई अशआर देखे जा सकते हैं।

वक्त ने तुझसे जुदा जो कर दिये
शख्सियत के ऐसे हिस्से ढूंढमत

***

धुंध आँखों में उतरता ही नहीं
आइने बूढ़े कभी होते ही नहीं

***

ग़ज़लों से होते हुए आइए, समय, का मुहावरा गुनगुनाने वाले गीतों और उनके छंदों में छुपे हुए विट को महसूस करें तथा वाराणसी के रचनाकार सूर्यप्रकाश मिश्र के दो गीतों का आनंद लें।

इस काव्यराग के अंतिम सौपान में लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान डॉ.भगवतीलाल राजपुरोहित का एक महत्त्वपूर्ण आलेख 'कवि की लीला' भी है जो निश्चित ही कविता के मर्म तक पहुँचने में पाठकों का मार्गदर्शन कर सकेगा और कवि की लीला का दर्शन भी कराएगा ही। कल्पना, काव्य, नवनवोन्मेष आदि के शास्त्रीय पक्षों पर विद्वता और सप्रमाण प्रकाश डालने वाला यह आलेख समावर्तन की उपलब्धि है।

काव्यराग के सभी रचनाकारों लेखकों और पाठकों को वसन्त पर्व की अनन्त शुभकामनाएँ।

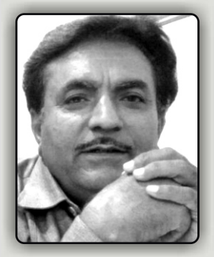

26, निर्माण नगर,
(रवीन्द्र नगर के पास) , उज्जैन
मोबाइल : 94259-15010
E-mail:shriram.dave@gmail.com

कवि नहीं अकवि सही

प्रदीप मिश्र

//एक//

शब्द मेरे लिए पहेली हैं
जिन शब्दों से करता हूँ प्यार
वे अपने अर्थ में हो जाते हैं घृणित
जिन शब्दों से घृणा करता हूँ
वे बहुत प्यारे अर्थ देने लगते हैं
मान लेता हूँ शब्दों को ब्रह्म
और वे ब्रह्मलीन हो जाते हैं

जिन शब्दों को पुल्लिग समझता हूँ
बन जाते हैं स्त्रीलिंग
जिनको स्त्रीलिंग
वे उभयलिंग में बदल जाते हैं
शब्दों के इस जादुई खेल में
बिगड़ गई है मेरी भाषा
का की जगह लिख देता हूँ की
की हो जाती है का

भाषा में इतनी गड़बड़ी के बावजूद
लिखता हूँ कविता
निस्पृह बहती/ भावों की सरिता।

//दो//

कवि हूँ मेरी भाषा
सधी और सटीक होनी चाहिए
शब्दों को गुलाब की तरह खिलना चाहिए
कविता इतनी चुस्त होनी चाहिए कि
जरा सी भी गुंजाइश न हो अनर्थ का
व्याकरण में गलतियों की छूट नहीं
लय कविता का प्राण

भाषा को साधने का करता हूँ रियाज
बदल जाता हूँ सेल्समैन में
सटीक भाषा के चक्कर में
लिख देता हूँ विज्ञापन
शब्द खिलते तो हैं गुलाब की तरह
लेकिन उनके अंदर जज्ब जीवन बदबूदार है
समय से पहले ही जनम जाती है
कुपोषित कविता
जिसमें अनर्थ होने की होती है भरपूर गुंजाइश
स्वीकार ही नहीं कर पाया
व्याकरण का अनुशासन
पुल्लिग को हमेशा स्त्रीलिंग पर हावी पाया
संधि और समास से तो मेरा छत्तीस का आकड़ा
जिस जीवन से उमगती हैं मेरी कविताएं
वहाँ कोई लय नहीं है

आलोचक गण
अब आप ही बताएं कैसे लिखी जाए
चुस्त-दुरूस्त-तंदुरूस्त कविताएं

फिलहाल /कवि नहीं अकवि सही
जो भी कही खरी कही ।

//तीन//

बहुत किया रियाज
नतमस्तक हो गया
व्याकरण के अनुशासन में
मिल गयी मुझे अपनी भाषा
सभ्य-सुगठित- संभ्रांत भाषा
चारों तरफ वाह-वाही
लिखा महा काव्य
रचे बड़े-बड़े ग्रन्थ

अब मैं और मेरा काव्य संसार
बाकी सब बेकार

घिरा हुआ हूँ
अपने मैं के तम में
मैंने गढ़लिया है तर्क कि
रोशनी से भी प्रदूषण होता है और
बुझा देता हूँ जलते हुए दीपक को

दीपक मुझसे पूछता रहता है
रोशनी का पता
रोशनी तो मेरे पूरबिया टोन में थी
जहाँ मेरी भाषा कमजोर पड़ गयी थी
उच्चारण और व्याकरण के बाजार में।

सपनों के साथ कबड्डी

पेड़ पर बचा हुआ है
आखिरी पत्ता
जिसका अंतस अभी भी हरा है

आत्महत्याओं के बीच
कुछ किसान फसल पर चर्चा कर रहे हैं
उनके सपनों का खेत अभी बंजर नहीं हुआ है

प्रदूषण की सड़न में बदबू से भर गईं हैं नदियाँ
गाद उनके बहाव में बाँध की तरह ऊपर उठ रहा है
फिर भी बह रहीं हैं /वे जानतीं हैं
बहाव में /परिवर्तन की कोंपलें फूटती हैं

प्रदीप मिश्र

जन्म : 1 मार्च 1970, गोरखपुर उ.प्र. विद्युत अभियन्त्रण में उपाधि, हिन्दी तथा ज्योतिर्विज्ञान में स्नातकोत्तर। साहित्यिक पत्रिका भोर सृजन संवाद का अरुण आदित्य के साथ संपादन। कविता संग्रह 'फिर कभी' (1995) तथा 'उम्मीद' (2015), युवा द्वादश (2016) में कविताएं संकलित, वैज्ञानिक उपन्यास 'अन्तरिक्ष नगर' (2001) तथा बाल उपन्यास 'मुट्ठी में किस्मत' (2009) प्रकाशित। साहित्यिक पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, आकाशवाणी, ज्ञानवाणी और दूरदर्शन से रचनाओं का प्रकाशन एवं प्रसारण। म.प्र. साहित्य अकादमी का जहूर बक्स पुरस्कार, श्यामव्यास सम्मान, मलखानसिंह सिसौदिया कविता पुरस्कार 2016, कुछ अन्य सम्मान भी। कुछ रचनाओं का अंग्रेजी एवं अन्य भाषाओं में अनुवाद। अखबारों में पत्रकारिता। फिलहाल परमाणु ऊर्जा विभाग राजा रामान्ना प्रगत प्रौद्योगिकी केन्द्र, इन्दौर में वैज्ञानिक अधिकारी के पद पर कार्यरत।

संपर्क : दिव्याँश 72 ए, सुदर्शन नगर,
अन्नपूर्णा रोड, डाकघर सुदामा नगर,
इन्दौर-452009 म.प्र.
मो.919425314126

सुबह चहचहातीं हैं चिड़ियाँ
उड़ान भरती हैं
बुनती रहती हैं घोसले
इस तरह से वे हमारी हताशा को फुर्र कर देतीं हैं

कोयल की कूक सुनाई दे ही जाती है
मन में बज उठता है संगीत

रात के अंधकार का वर्चस्व तोड़ते जुगनुओं को
अपनी पुतलियों पर चिपकाए हुए
हम सफर में हैं

अभी थके नहीं हैं हम
अपने सपनों के साथ कबड्डी खेल रहे हैं।

सोकर उठेंगे

हम सोकर उठेंगे/ और मुंह धोने के लिए
नहीं मिलेगा पानी

हम सोकर उठेंगे
और नाश्ते में कुछ नट-बोल्ट होंगे
जिनको चबाते हुए
टूट जाएंगे हमारे दाँत

हम सोकर उठेंगे
रोबट/ हमें नींद की सूई लगाकर
निकल जाएंगे/ काम पर

हम सोकर उठेंगे
तब तक शताब्दियाँ बदल गयीं होंगी

जिस समय में खुलेगी
हमारी नींद
वह समय
मनुष्यों का समय नहीं होगा ।

कब को किसतरह कहेगा घर

उस बच्चे से कोई पूछेगा घर कहाँ है
भूख से बिलबिलाते हुए उठेगा
और एक विस्फोट हो जाएगा

अपनी मासूमियत के चिथड़ों को समेटते हुए
जिस घर को वह याद करेगा
उसमें भरी होगी बारूद की दुर्गंध

किसी को नहीं बता पाएगा
अपने घर का पता
जिसमें दफ्न हैं
माँ-पिता-भाई -बहन और
न जाने कितने उसके अपने

भला कब्र को वह
किस तरह से कहेगा अपना घर

सत्ता और आतातायियों के दुःस्वप्न से घिरा
एक मासूम बच्चा
फिर सो जाएगा चिरनिद्रा में।

घर गोरखपुर

कहीं पढ़ता हूँ गोरखपुर
तो घर भी पढ़ता हूँ साथ-साथ

घर पढ़ता हूँ तो
मेरे डीएनए में
पसीजने लगता है
पुरखों के पसीने का नमक

हृदय में बहने लगती है
राप्ती नदी अविकल

भोजपूरी ताल और लय में
कजरी, चइता, गारी, फगुआ
सुना देने लगते हैं सब
प्रेमिका के स्वर की तरह

पचास बरस के अधेड़ से
बीस वर्ष के युवा में बदल जाता हूँ

शबे मालवा की खिली चाँदनी में
सितारों से बतियाते हुए
कछार और तराई की चर्चा निकल ही आती है
जहाँ गड़ा हुआ मेरा नाभिनाल
अभी भी जीवित है

नाभिनाल के कसमसाने की टीस
उमगती है बार-बार

स्मृतियों के क्षार में घुलता हुआ
बुदबुदाता रहता हूँ....घर गोरखपुर....घर गोरखपुर

जबसे छूटा है गोरखपुर /एक मुकम्मल शहर
घर में बदल गया है।

आत्मकथ्य

चहचहाती हुई कविता लिखने का रियाज कर रहा हूँ

प्रदीप मिश्र

जन्म दिया राप्ति ने और नर्मदा ने जीवन/लुप्त सरस्वती बहती रहती है/मन की गहराई में चुपचाप/शबे मालवा में खुद को तलाशती मिलती है शिप्रा/जिसकी लहरों का दर्द मेरे अंतस में अमावस्या बनकर जज्ब है/मेरी रगों के लोहे में नदी की तरह/बहती है माँ/नदियाँ बहती रहतीं हैं/मेरे अंदर/जिनके सूखते हुए बहाव को दर्ज कर रहा हूँ / दोस्तों मैं कविता लिख रहा हूँ।

आत्मकथ्य लिखना मेरे लिए बहुत कठिन है। कुछ भी अपने बारे में लिखना हमेशा ही मुझे आत्मावलोकन की तरफ ले जाता है और मुक्तिबोध पूछते हैं - अब तक क्या किया, जीवन क्या जिया ? फिर सवालों की झड़ी लग जाती है - क्यों लिखता हूँ ? नहीं लिखता तो क्या होता ? कविता क्यों आती है मेरे पास ? कविता किस तरह से आती है ? कविता पहले मेरी होती है फिर सबकी क्यों हो जाती है ? अनुत्तरित सवालों को लेकर मैं अपने अंदर की नदी में तैरता रहता हूँ। तलाशता हूँ अपने होने और लिखने का तर्क। मेरे लिए लिखने का तर्क हमेशा ही समकाल से बनता है और एक तरह की मनःस्थिति में ले जाता है जहाँ लिखना ही एक मात्र विकल्प होता है।

मेरे पास कविता किसी भी तरह से, किसी भी

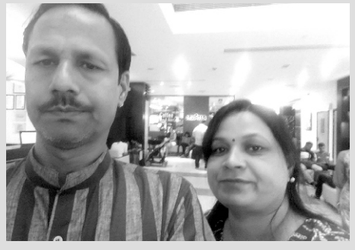

समय में और किसी भी जगह पर आ जाती है जैसे एक लड़की मेरे पास से फर्राटेदार स्कूटर चलाती हुई गुजर जाती है और कविता आ जाती है। गुटखा खाता हूँ और समय की कड़वाहट से भरी कविता मिल जाती है। कलैण्डर पलटता हूँ अच्छे दिनों की कविता मिल जाती है। बिना भाषा और बिना व्याकरण की कविताऐं तो मुझसे टकराती ही रहती है और बिगाड़ती रहती हैं मेरी भाषा। मेरी कविता में पूरबिया टोन झलकता है और संतोष होता रहता है कि जड़ें अभी जीवित है। जड़ें जीवित हैं इसलिए हरा होने की उम्मीद है और यही मेरी कविताओं की ऊर्जा है।

दरअसल कविता से मेरी पहली मुलाकात कब हुई यह तो याद नहीं है लेकिन पहली बार उर्वरक नगर गोरखपुर में आयोजित एक कवि सम्मेलन में सार्वजनिक हुई। पहली कविता की किताब जिसको पढ़कर कविता से परिचय हुआ वह हरिवंशराय बच्चन की 'मधुशाला' थी। लेकिन जिस कविता संग्रह से प्रेम हो गया वह धूमिल का 'संसद से सड़क तर्क' था। फिर अवतार सिंह पाश के कविता संग्रह 'बीच की रास्ता नहीं होता' ने मेरी लाइन और लेंथ को सेटकर

दिया। मेरे लिए कविता में कथ्य की शक्ति सबसे जरूरी तत्व बन गया। कथ्य और विचार के संतुलन का लक्ष्य और सरोकार के संस्कार जनवादी लेखक संघ से मिले। पहली कविता 1988 में दिल्ली की आजकल पत्रिका में छपी फिर अपने समय के पत्र-पत्रिकाओं में छपते हुए कविता की जमीन तलाशता रहा। लघुपत्रिका आंदोलन से निकला हुआ कवि हूँ। मुझे मेरे संग्रह के प्रकाशन से ज्यादा पत्र-पत्रिकाओं में छपना संतोष देता है। राजेश जोशी मेरे आदर्श कवि हैं और चंद्रकांत देवताले आदर्श कवि व्यक्तित्व।

जब खुद को कवि कहता हूँ तो झिझक लगती है और एक सवाल उपजता है कि क्या एक भी मुकम्मल कविता हुई तो स्वीकार कर लेता हूँ कि अभी रियाज कर रहा हूँ, कविता का आना बाकी है। मैं कथ्य को कविता का शरीर मानता हूँ और विचार को दृष्टि। मेरी कविता को भाषा उसके परिवेश से मिलती है और बिम्ब संस्कृति से। मुझे कविता का व्याकरण कभी भी समझ में नहीं आया। इसलिए इसे मैं पाठकों और भविष्य के कविकर्मियों पर छोड़ता हूँ।

समाज के समग्र अध्याय का विद्यार्थी बनकर कविता लिखना सीखता रहता हूँ। अपने खलिहान को खरहरे (अरहर के दाल का पेड़ जो झाड़ू की तरह प्रयोग होता है) से बुहारता हुआ किसान मुझे कवि की तरह दिखाई देता है, जो अपने खलिहान को खेत से आने वाले अनाज के लिए तैयार कर रहा है। पसीना, नमक और दर्द के आस्वाद से भरी कविताएं मेरी प्रिय कविताएं हैं। कला के अपच से बीमार कविता मुझे निराश करती है।

मेरा यह मानना है कि कविता कभी भी किसी व्यक्ति विशेष की नहीं होती है। एक बार लोक में जाने के बाद वह लोक की होती है। इसलिए सिर्फ वे कविताएं हीं मेरीं हैं जो अभी तक पाठकों तक नहीं पहुँचीं हैं। एक बार पाठक तक पहुँचने के बाद वह सबकी कविता हो जाती है। सबकी कविता लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। मेरी कविता को पढ़कर किसी के अंदर का सोता हुआ मनुष्य जग जाता है तो मैं इसको अपनी कविता की सफलता मानता हूँ। मैं यह मानता हूँ कि कविताओं का सही मूल्याँकन हमारे समय के दुःख-दर्द करते हैं। एक अच्छी कविता जैसा कुछ लिखकर मैं थोड़ा ज्यादा मनुष्य हो जाता हूँ। मेरे अंदर का मनुष्य बचा रहे इसलिए भी कविता लिखने के रियाज में बना हुआ हूँ। मैंने पत्रकारिता किया है, नाटक लिखा है, वैज्ञानिक उपन्यास लिखा है और समीक्षा लिखता रहता हूँ। इन सब विधाओं में आवाजाही के बीच मैं अपनी कविताओं में ही बैठकर सुस्ताता हूँ या हाँफता हूँ। मेरी कविता प्रेम करती है तो उसकी चाह किसी मजदूर के घर बनती हुई मोटी-मोटी रोटियों के प्रति, उसके दिनभर के भूखे बच्चे की चाह की तरह होती है। कविता मेरे लिए बलि के ठिये पर पड़े बकरे की आँख है। मुझे उम्मीद है कि वह सुबह होगी जब चिड़ियों की तरह हम सब निकलेंगे उड़ान पर और शाम को लौटकर अपने घोंसलों में चहचहाऐंगे। चहचहाती हुई कविता लिखने का रियाज कर रहा हूँ। बस इतना ही।

कवि प्रदीप मिश्र की कविताओं पर सुधीजनों के विचार

प्रदीप की कविता सृजन की ऊष्मा के एक ऐसे विराट विस्फोट की कामना करती है जिसमें सृजन की ऊष्मा पूरे अंतरिक्ष में फूटकर उसी तरह बिखर जाये जैसे एक किसान खेतों में बीज बिखेरता है। यह ऐसी कामना है जिसमें धरती कभी आँख से औझल नहीं होती। जिसमें न हमारे समय के सवाल अदेखे रहते हैं न हमारे समय की विसंगतियाँ और विद्रूपताएँ। प्रजापति की तरह कवि अपनी कल्पना में इस पूरी सृष्टि को अपने ढंग से उलट पुलट देना चाहता है। हिमालय को समुद्र में और समुद्र को हरे भरे पहाड़ में बदल देना चाहता है। उसकी कामना है कि पेड़ पौधे मनुष्यों की तरह चलें फिरें। चिडियाँ समुद्र में तैरें और मछलियाँ उड़ान भरें। वह चाहता है कि नई नई भाषा निर्मित हो और नए नए शब्द आयें जीवन में।

- राजेश जोशी, भोपाल

प्रदीप मिश्र लगभग तीन दशकों से कविता लिख रहे हैं। उनके पास किसी भी समस्या के मर्म में घुसकर उसका विश्लेषण करने की योग्यता है; इसका बहुत कुछ श्रेय उनकी सजग, प्रगतिशील जीवन-दृष्टि और उनके वैज्ञानिक मिजाज को है। उनकी कविता अंधविश्वास और उपभोक्तावाद के दोनों मोर्चों पर साथ-साथ लड़ती है। इसलिए वह संघर्षधर्मी तेवर न अपनाकर भी वह जुझारू मनुष्य के साथ खड़ी होती है; निराशा और अवसरवाद से दूर, आशा, विश्वास और संघर्ष की चेतना जगाती है। व्यवसायिकरण, भूमंडलीकरण और संप्रदायीकरण के दौर में संभावना या उम्मीद की बात करना हौसले का विषय

लग सकता है। वामपंथी सांस्कृतिक संगठनों और उनके नेताओं के पतन को देखते हुए यह हौसला बहुत अटपटा मालूम होता है। लेकिन यह बात भी दावे से कही जा सकती है कि आज के दौर की चुनौतियों का सामना करने, उन चुनौतियों का प्रतिकार करने की सबसे समर्थ युक्तियाँ वामपंथी दायरे के कवि ही प्रदर्शित कर रहे हैं। आप चाहे राजेश जोशी को देखें, अरूण कमल को देखें, बद्री नारायण को देखें, लीलाधार मंडलोई को देखें या नीलेश रघुवंशी को देखें। इसका कारण यह है कि ये कवि अपनी भावना में रँगकर वास्तविकता को विकृत नहीं करते बल्कि एक दूसरे से स्वतंत्र दिखने वाली स्थितियों की आंतरिक संबद्धता को पहचानते हैं। प्रदीप इसी पंक्ति के कवि हैं। उनके यहाँ अपने अग्रजों-सहधर्मियों की भाँति असम्बद्ध स्थितियाँ आपस में स्वतंत्र और संबन्धित रूपों में एक साथ आती हैं। इसके लिए वे अनेक प्रकार की युक्तियों का प्रयोग करते हैं। बेशक, प्रदीप बहुत 'पिछड़ी' चेतना के कवि हैं, उनके लिए मानवीय संबंध और देशप्रेम अब भी अर्थ रखते हैं! भूमंडलीकरण द्वारा उपस्थित संभावनाओं को वे इन्हीं कसौटियों पर परखते हैं।

- अजय तिवारी, दिल्ली

प्रदीप मिश्र अपनी कविताओं में मध्यमवर्गीय स्थूल और प्रायः प्रचलित उपादानों का प्रयोग न कर उसकी मूल चेतना को कविता के केन्द्र में रखते हैं। शायद इसलिए आपको प्रदीप की कविताओं में उस वर्ग के लम्बे-लम्बे विवरण नहीं मिलते बल्कि उसका ठोस धरातल और वे महीन रेशे दिखाई देते हैं जिससे उसकी बुनावट हुई है। प्रदीप मिश्र मूलतः अपनीई मानदार संवेदनाओं के जरिए अपनी कविता पाना चाहते हैं, वे कविता गढना नहीं बुनना चाहते हैं।

- निरंजन श्रोत्रिय, गुना

प्रदीप मिश्र विशिष्ट के कवि नहीं हैं और न ही संभ्रांत शिष्ट समाज के। वे कठिन समय के कवि हैं। वस्तुतः कविता उनके लिए कवि कर्म न होकर कवि धर्म है। वे इस दायित्व को बखूबी निबाहते हैं।

- डॉ. सुधा उपाध्याय, दिल्ली

प्रदीप का कवि भाषा और प्रतीकों को लेकर सजग है। वह विज्ञान पर भी कविता लिखता है, ग्लोबलाइजेशन पर भी कविता लिखता है, तो ईश्वरीय सत्ता को भी कविता की परिधि में लाता है। प्रदीप हमारे समय की जटिलता को बखूबी पकड़ कर सामने ले आता है - वह कहीं ना कहीं कविता को सामाजिक सरोकारों की ओर लेकर जाता है और इसी लिये इन कविताओं को पढ़ने के बाद लगता है कि हम कुछ और बेहतर मनुष्यता की तरफ जाते हैं।

- प्रदीप कान्त, इन्दौर

प्रदीप की कविता में आम इन्सान से लेकर अति आधुनिक विशिष्ट जन की पड़ताल है तो वहीं अंधविश्वास से लेकर सूचना प्रौद्योगिकी एवं वैज्ञानिक युग की गूंज भी है। विषय-वस्तु हाशिए से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय मसले तक है। अर्थपूर्ण, संकेतों, प्रतीकों, बिम्बों, व्यंग्यों की यहाँ समूची सृष्टि है। प्रदीप की कविता में पाठक की जरूरत का सबकुछ मौजूद है।

- डॉ. पूनम सिंह, गाजियाबाद

रानी श्रीवास्तव की तीन कविताएँ

प्रश्न

रौशनदान में छिपी गौरेया ने
घोसले के तिनकों में
छोड़ा है एक प्रश्न

अँधियारी रात में
शहर के कोने में बैठी
सहमी हुई लड़कियों ने
मांगा है जवाब
अपने कुचले वजूद का

मेघ में भींगती
ठिठुरती हुई
खिड़की से दाखिल होती
मनीप्लांट की पत्तियाँ
नहीं जानती
घर के अन्दर
घुट जाएगा उनका दम

लकड़ियों के गट्ठर में
धधकेगी आग
रोशन होंगी सड़कें
उसी राह पर चलकर
चोट खाई लड़कियाँ देंगी
सवालों के जवाब

आग के चारों ओर बैठे
सुकून से अलाव तापते हुए
लोगों ने देखा
दूर आसमान पर
टिमटिमाता हुए एक तारा
भक से जल उठा

इस बार का वसन्त

संदली मखमली मिज़ाज से अलग
इस बार का वसन्त
कुछ और तरह का है

नई कोपलें हरा दूब
पीला सरसों गाती कोयल
सब तो है
किन्तु इस साल वसन्त में
स्मृतियों के दंश
मन की घुटन
काँटों की चुभन
कैक्टस और नागफनी भी हैं।

हवा में घुले फागुन के रंग
आम के पेड़ों पर गदराये मंजर
उन्मत्त गलबहियाँ मधुमय संगीत
सब तो हैं
किन्तु इस साल बसन्त में
दिल्ली की सड़कों पर फैला लाल रंग
आम के पेड़ों पर गदराये मंजर
उन्नमत्त गलबहियाँ मधुमय संगीत
सब तो हैं
किन्तु इस साल बसन्त में
दिल्ली की सड़कों पर फैला लाल रंग
हवा में गूंजती पुकार
हमरे दिलों को बेधती चीख भी है

इसीलिये मैं कहती हूँ
संदली मखमली मिजाज से अलग
इस बार का बसन्त
कुछ और तरह का है
(निर्भया के लिए)

उसका जलना

गीली लकड़ी जलती कम
धुँआती ज्यादा
बुझ भी जाती धीरे-धीरे
स्त्री जलती जीवन भर
धुँआ नहीं लपट नहीं
भीतर ही भीतर की आँच
भीतरी ही भीतर का ताप
वह जलती है सिर्फ जलती
तिल-तिल जलती!

जिस तरह फूल खिलते
सितारे जगमगाते
रात के माथे पर
चाँदनी छिटकती
पूरब के दरवाजे
डगरा भर सूरज उग आता
वह भी जलती ठीक उसी तरह।

उसका जलना स्थान्तरित होता
पीढ़ी दर पीढ़ी
फलता-फूलता
बुजुर्गों के आशीर्वाद सा
दृश्य नहीं बदलते
पटाक्षेप नहीं होता
रूपान्तरित नहीं होता उसका जलना
उसका जलना
पारस होना होता है!
ताउम्र जलने पर भी
नहीं जलती पूरी की पूरी
नहीं जलते कभी
स्त्री के दो हाथ

परिचय

जन्मतिथि : 1 जुलाई 1958, जन्म स्थान-छपरा बिहार
शिक्षा : एम.एस-सी, पी.एचडी.
सम्प्रति : एसोसिएट प्रोफेसर बी.एम.डी. कॉलेज, दयालपुर (मुजफ्फरपुर), बिहार
पद : अध्यक्ष, प्रगतिशील लेखक संघ, पटना इकाई,
संपादक मण्डल चौथा तहलका (हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका)
संपर्क : 301, सी, लेखराज परिसर, ईइट पटेल नगर,
रोड नं-3 पटना -800023 बिहार
मो.9934836793

जगदीशचन्द्र पण्ड्या 'अक्स' की तीन ग़ज़लें

करम करती किसी पर तो किसी को आज़माती है,
मुहब्बत है वो शै अक्सर जो दीवाना बनाती है।

किसी का दिल चुराकर यह उसे आबाद भी करती,
किसी की शोख़ रातों को ये अश्कों से सजाती है।

कभी यह एक मौसम की नहीं होकर रही शैदा[1],
किसी दम आह भरती है किसी दम मुस्कुराती है।

उठाती ख़ून में तूफ़ाँ, कभी तस्कीन भी देती,
दिलों की फितरतें पढ़कर अजब-से गुल खिलाती है।

बिना इसके रही थी ज़िन्दगी मेरी खफ़ा होकर,
मुझे सरशार[2] रखने मैकदा दिल को बनाती है।

मुकद्दर के कहे में चल के दिखलाती है अपने रंग,
किसी का घर बसाती है, किसी का घर जलाती है।

अदा महबूब की देखो, जुदाई में नहीं सोया,
मेरे आग़ोश में आकर उसे अब नींद आती है।

सितारे हैं, हवा साकित[3] है, छत पर कौन निकला है,
सुबकने की कहाँ से 'अक्स' यह आवाज़ आती है।

****

पानी की अब के शहर में किल्लत बहुत रही,
सरकार के हिसाब से कसरत बहुत रही।

करता लहुलूहान हर इक गाम[4] पे था जुर्म,
सच बोलने की पर हमें आदत बहुत रही।

कुछ तो पुलिस ने जुर्म की तफ्तीश ही न की
कायम कुछ अद्ल[5] पर भी अदालत बहुत रही

करने लगी नुमाइशें, उया[6]- बदन बहुत,
मश्गूल अपनी धुन में सियासत बहुत रही।

सदशुक्र[7] दिल ने जिस्म पर एहसान कर दिये,
उसकी नवाजिशों में रियायत बहुत रही।

उम्रे-दराज़ से है मेरी उसकी रग्बतें[8]
दीगर है बात जिस्म से हुज्जत बहुत रही।

****

जो न बन सकते वो रिश्ते ढूंढमत,
तीरगी[9] में यूँ ही साये ढूंढमत।

वक़्त ने तुझसे जुदा जो कर दिये
शख़्सियत के ऐसे हिस्से ढूंढ़मत।

मत खड़ी कर मुश्किलें उसके लिये
आशिकी में आएँ फित्ने[10] ढूंढ मत

शोख़ चाहत ने गढ़े उनके सिवा,
जिंदगी में और किस्से ढूँढमत।

सरहदों के पार वो तुझसे मिला,
और ज्यादा अब करिश्में ढूँढमत।

प्यार की मंज़िल ख़ुदा का घर हुआ,
चल वफ़ा पर, और रस्ते ढूँढमत।

परिचय

जन्म : 15 सितम्बर 1946, उज्जैन
आत्मज : स्व.गेंदालाल पण्ड्या, रूद्रेश
शिक्षा : भौतिकी में स्नातकोत्तर
कार्यक्षेत्र : पंजाब नेशनल बैंक में सहायक महाप्रबंधक पद से सेवानिवृत्त
सृजन : बारह ग़ज़ल संग्रह, सात अशआर संग्रह, एक दोहा संग्रह, एक आलेख संग्रह, चार काव्य संग्रहों का संपादन तथा दो कृतियां प्रकाशनाधीन
संप्रति : संस्थापक गजलांजलि साहित्य मंच, उज्जैन
संपर्क : 112, संतनगर, उज्जैन 456010
मो.9977050269, 8959084403

1-आशिक, 2-उन्मत, 3-मौन, 4-अधिकता, 5-न्याय, 6-नग्न, 7-ईश्वर को धन्यवाद, 8-चाहतें, 9- अंधकार, 10-उपद्रव

सूर्यप्रकाश मिश्र के दो गीत

गरम कमीज

मुखिया गरम कमीज दे गये

खुश हैं बुधुवा उतरन पाकर
जैसे दुर्लभ चीज दे गये

जाड़े भर ठिठुरा करता था
अब थोड़ा आराम रहेगा
बुधुवा - बुधनी की जुबान पर
मुखिया जी का नाम रहेगा

बेगारी की फसल उगेगी
सोच समझकर बीज दे गये

फटा हुआ कालर का कोना
चौराहे पर सिल जायेगा

पलटन से लौटेंगे बबुवा
तब जूता भी मिल जायेगा

बँधा रहे बुधुवा तन-मन से
वादों की ताबीज दे गये

फिर चुनाव आने वाला है
मौसम कुछ सनसनी खेज है
कदम रख रहे फूँक-फूँक कर
मुखिया जी की नज़रें तेज है

साध रहे हैं एक-एक कर
लालच की दहलीज दे गये

बैरी माघ

बुधुवा फसल अगोर रहा है

सरक रहा पुअरा मचान पर
खड़ा माघ झकझोर रहा है

बहुत खास है मुखिया जी का
टहल मिली है लगा हुआ है
धमक लग रही-चौपाये की
बीड़ी पीकर जगा हुआ है

गुदरे की औकात पता है
खींचतान कर ओढ़रहा है

बुधनी बड़ी सास की भगतिन
गोड़ दाब कर सुला दिया है
बोरसी में गोंइठा बटोरकर
कउड़ा मजिगर जला दिया है

सन्नाटा पसरा सिवान तक
झबरा रोकर तोड़ रहा है

मड़ई के भीतर है बुधनी
फिर भी रह-रह काँप रही है
गुदरा तो मलिकार ले गये
वो बस कउड़ा ताप रही है

दादी के संग घुसा मंगरुआ
रह-रह गोड़ सिकोड़ रहा है

जाग रही है बुधनी फिर भी
बुधुवा की ही सोच रही है
कैसे वो होगा मचान पर
मुए माघ को कोस रही है

माघ बड़ा बैरी गरीब का
सूखा हाड़ निचोड़ रहा है

बी-23/42ए.के. खोजवां (दुर्गाकुण्ड)
वाराणसी - 221001
मो.नं.09839888743

कवि की लीला

भगवतीलाल राजपुरोहित

काव्य का लक्षण साहित्यकारों और विद्वानों के लिए सदा से यक्षप्रश्न बना हुआ है। कोई भी परिभाषा किसी विवेकशील को संतोष नहीं दे पाती। अन्धे के हाथी के समान काव्य की पहचान भी अपूर्ण, भ्रामक और एकांगी रही है। उसका कारण है। हमारे सुधी लक्षणकार लक्षण के लक्षण की उपेक्षा करके काव्य के मनमाने लक्षण बनाते चले गये। यदि लक्षण के बनाने के नियमों का पालन होता तो यह समस्या न होती।

भारतीय विद्वानों ने लक्षण बनाने के मानदंड बना रखे हैं। लक्षण बनाने से पहले यह जानना जरूरी है कि लक्षण का लक्षण क्या है? परिभाषा किसे कहते हैं? उसका समाधान है कि असाधारण धर्म लक्षण है। तात्पर्य है कि ऐसा नपा-तुला परिचय जिससे उसके स्वरूप, गुण, विशेषता आदि का यथार्थ ज्ञान हो जाय उसे परिभाषा या लक्षण कहते हैं। जैसे जिसके गलकंबल (गले के नीचे की लटकन) हो वह गौ है। गाय से बहुत कुछ समान होने पर भी भैंस में यह धर्म (विशेषता) नहीं होता। किसी अन्य प्राणी में भी यह विशेषता नहीं पायी जाती है। यह विशेषता केवल गौ में ही पायी जाती है। गलकंबल वाला जो भी प्राणी हो वह गौ होता है। ऐसा निश्चयात्मक और अभ्रामक लक्षण होना चाहिए।

ऐसा निर्दोष लक्षण भी बन सकता है जब लक्षण त्रिदोष रहित हो। ये त्रिदोष है- अतिव्याप्ति, अव्याप्ति और असंभव। चार पैर वाली गाय है। यह कहने से सब चौपायों का नाम गाय हो जाता है। गौ जाति से भिन्न चौपायों की भी यह विशेषता होने से इसमें अतिव्याप्ति दोष है। केवल गौ का ही लक्षण नहीं है यह। शब्दार्थ काव्य है। यह कहने से शब्द और अर्थ वाला समस्त वाङ्मय काव्य कहलाने लगता है। तब कोष, व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक, विज्ञान आदि किसी भी विषय की पुस्तक काव्य कहला सकती है। केवल काव्य का बोधक नहीं होने से इसमें अतिव्याप्ति दोष है।

दूसरे अव्याप्ति दोष से भी बचना चाहिए। गौ श्वेत होती है। यह कहने से अव्याप्ति दोष होता है, क्योंकि गाय काली, पीली, चितकबरी भी होती है। रसात्मक वाक्य काव्य है तो रसेतर अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्तिपरक रचनाएँ भी काव्य होती हैं। अतः उस परिभाषा में अव्याप्ति दोष है, क्योंकि वह लक्ष्य की आंशिक विशेषता का उद्घाटन कर रहा है। इसी प्रकार केवल रीति, केवल ध्वनि, केवल वक्रोक्ति या केवल अलंकार को काव्य कहने से लक्षण का एक अंश ही प्रकट होता है। सम्पूर्ण लक्षण तो तभी होता है जब उसमें रस, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, अलंकार, औचित्य ही नहीं इनके अतिरिक्त भी जो कोई विशेषताएँ हों वे भी उससे व्यक्त होती रहें।

एक तीसरा असंभव नामक दोष है जो धर्म लक्ष्य में बिल्कुल न पाया जाए वह असंभव दोष है। गौ के एक खुर होता है। इसमें असंभव दोष है, क्योंकि सब गौ के प्रत्येक पैर में दो खुर होते हैं। घोड़े के पैर में एक खुर होता है। इसी प्रकार मात्रा (गुरु लघु) हीन काव्य होता है। यह कहना भी असंभव दोष है, क्योंकि बिना लघु गुरु मात्रा की कोई भाषा नहीं होती और भाषा काव्य का आधार है।

लक्षण के दो प्रयोजन होते हैं- प्रथम है व्यावृत्ति अर्थात् सजातीय अथवा विजातीय अन्य पदार्थों से भेद करना और द्वितीय है व्यवहार को प्रवृत्त करना। गाय को समान जातीय भैंस आदि चौपायों से और असमान जातीय सिंह आदि चौपायों से भिन्न बताना प्रयोजन है। काव्य का लक्षण करते हुए शब्दार्थमय सजातीय अन्य विषयक शास्त्र विज्ञान-वाणिज्यादि और प्रदर्शनकारी वाचिक अभिनय आदि विजातीय पदार्थों से काव्य को भिन्न बताना एक प्रयोजन है। यही लक्षण काव्य व्यवहार का प्रवर्तक होता है। इस प्रकार व्यवहार भी प्रयोजन होने से लक्षण के दो प्रकार के प्रयोजन माने जाते हैं। इस प्रकार इन दोनों प्रयोजनों को साधने वाली और पूर्वोक्त त्रिदोष रहित लक्षण या परिभाषा होनी चाहिए। ऐसी परिभाषा ही निर्दोष और अपने लक्ष्य को संतुलित सुपरिभाषित कर सकती है, जिससे उस पर कोई संशय न हो, न फिर उसके और संस्कार परिमार्जन की या पुनर्विचार की आवश्यकता रहे। तब काव्य की निर्दोष और लक्ष्य को स्पष्ट करने वाली ऐसी क्या परिभाषा हो सकती है, जिसमें सम्पूर्णता हो और जो लक्ष्य से न अधिक हो, न कम हो तथा काव्य के असाधारण धर्म को व्यक्त करे तथा अपने लक्षण के प्रयोजन के अनुसार हो, क्योंकि लक्षण तो असाधारण धर्म कहा जाता है।

लक्षणन्त्वसाधारणधर्मवचनम् ।

भारतीय शास्त्रों की पृष्ठभूमि दार्शनिक रही है। काव्यशास्त्र दर्शन की इस पद्धति की रूपरेखा का अनुसरण करे तो उसका ढाँचा निर्दोष हो सकता है। प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने दार्शनिक पद्धति का अनुसरण किया तो भी वे पटरी से उतरते गये या पटरी बदलते गये। तो लक्षण की पूर्वोक्त पद्धति का अनुसरण करते हुए काव्य लक्षण बनाने का एक और प्रयास तो किया ही जा सकता है। ऐसा दोषरहित लक्षण जो अपने प्रयोजन को साधे और असाधारण धर्म भा प्रकट करे।

प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्रज्ञों ने काव्य की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ की हैं। सर्वप्राचीन प्रमुख रूप से है- शब्दार्थ सहित काव्य है। भामह ने ''शब्दार्थो सहितौ काव्यम्'' कहा। पर उससे पहले कालिदास ने भी (वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये) यही कहा। रुद्रट, कुन्तक, मम्मट, दंडी, वाग्भट्ट, जगन्नाथ, अग्निपुराण आदि सबने मूलतः शब्दार्थ को ही काव्य कहा। उनमें गुण सहित, दोषरहित मनोहर, अलंकरण सहित या रहित आदि विशेषताएँ हों, परन्तु केन्द्र शब्दार्थ है। वास्तव में पूरा वाङ्मय शब्दार्थ ही तो है। शब्द और अर्थ से ही तो वाचिक व्यवहार होता है। शास्त्र हो या काव्य। सबमें शब्दार्थ होता है। अतः इन लक्षणों में अतिव्याप्ति दोष होता है। पंडितराज के अनुसार काव्य का लक्षण आनंदवर्धन के अनुरूप है। सहृदय के हृदय को आह्लादित करने वाला शब्दार्थ।

सहृदयहृदयाह्लादिशब्दार्थमयत्वमेव काव्यलक्षणम् ।

आम जनता की भाषा के शब्दों में होने पर भी शब्दों के चयन के कारण काव्य की भाषा विशेष है। जाने-पहचाने वे ही शब्द होते हैं, परन्तु शब्दों की विशेष जमावट से कवि शब्द और अर्थ में अनोखा आकर्षण ला देता है। तथ्य यह है कि शब्द और अर्थ के बिना भाषा नहीं और न किसी भाषा का वाङ्मय या साहित्य। अतः शब्द और अर्थ केन्द्र में है, परन्तु शब्दार्थ तो भाषा में होता ही है।केवल भाषा काव्य नहीं है। भाषा में तो समस्त वाग्वहार और किसी भी विषय का लेखन होता है। समस्त वाग्व्यवहार और लेखन भाषागत होने पर भी साहित्य नहीं होता। शास्त्रीय, अशास्त्रीय, वैज्ञानिक, वाणिज्यिक या सामाजिक विज्ञान की साहित्येत्तर समस्त बातें और लेखन भी शब्दार्थ में होता है। वह सब काव्य या साहित्य नहीं होता। अतः शब्दार्थ को काव्य कहने में अतिव्याप्ति दोष है। रीति, काव्य की आत्मा है, ध्वनि काव्य की आत्मा है, वक्रोक्ति काव्य का प्राण है, रस काव्य की आत्मा है इत्यादि कहने में अव्याप्ति दोष है, क्योंकि ये सब एक-एक विशेषता के पक्षधर होने से अन्य पक्ष छूट जाते हैं अथवा एक को प्रधान कहने से अन्य गौण हो जाता है। इस अव्यापकता की ओर राजा भोज का ध्यान गया और उन्होंने अपने सरस्वतीकण्ठाभरण में विभिन्न पक्षों के समन्वय का आंशिक प्रयास किया। वे कहते हैं कि अलंकार और रसपूर्ण गुण सहित निर्दोष काव्य करते हुए कवि कीर्ति और प्रीति पाता है।

निर्दोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम् ।
रसान्वितं कविः कुर्वन्कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति ।।

इसमें भी ध्वनि, वक्रोक्ति आदि की चर्चा नहीं है। अतः इस परिभाषा में भी अव्याप्ति दोष है और इन विभिन्न सभी पक्षों का नामस्मरण कर ले तो भी कोई अज्ञात अथवा भावी नया पक्ष प्रकट हो जाने से लक्षण में अव्यापकता आ सकती है। अतः किसी मतवाद का नाम न लेते हुए मूल लक्ष्य (काव्य) को परिभाषित करने से ही निर्दोष लक्षण हो सकता है। वाङ्मय होने से काव्य में शब्दार्थ तो होता ही है। शब्दार्थ विशेष हो तो काव्य होता है। **इह विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम् ।** यह तेरहवीं

शती के समुद्रबंध का कहना है। यहाँ भी साधारण की अपेक्षा विशेष शब्दार्थ कहने से बात स्पष्ट नहीं होती। जैसे विशेष पशु गाय है। यह कहने मात्र से गाय की पहचान नहीं हो सकती। इसमें भी अतिव्याप्ति दोष है। इस पूरे विवरण से यह तो स्पष्ट है कि समस्त वाङ्मय के समान काव्य में भी शब्द और अर्थ तो होता ही है, क्योंकि शब्दार्थ से ही भाषा बनती है। तो इस आधार पर राजशेखर ने कहा कि शब्द और अर्थ का मिला-जुला रूप भाषा या काव्य का शरीर है। उक्ति वाली वाणी है। यह तो समस्त भाषाओं में होता है। साहित्य में भी होता है। शरीर के अवयव संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, छंद कहा और रस को आत्मा कहा। यह राजशेखरकालीन काव्य रूप बनता है। फिर छंदहीन गद्य इसके अनुसार काव्य नहीं होता। अतः इसमें अव्याप्ति दोष है। उक्ति विशेष को काव्य कहने से अतिव्याप्ति दोष होता है। काव्येतर भी उक्तिविशेष हो सकती है।

भाषा में होने से काव्य में शब्द तो होते ही हैं। बिना अर्थ की आवाज ध्वनि होती है। अतः हर शब्द का अर्थ होता है। प्रत्येक भाषा में शब्द का अपना भिन्न-भिन्न अर्थ होता है। अतः शब्दार्थ भेद के कारण भाषा भेद होता है, परन्तु समस्त भाषा में शब्दार्थ होता ही है। काव्य भी भाषा में होता है और हर भाषा या बोली में काव्य हो सकता है। शब्दार्थ तो होता ही है, अतः शब्दार्थ काव्य का आधार तत्त्व है। शब्दार्थ काव्य की प्राथमिक आवश्यकता है, परन्तु शब्दार्थ ही काव्य नहीं है। शब्दार्थ को ही काव्य मानने से अतिव्याप्ति दोष हो जाता है। शब्द भाषा का आकार है। अर्थ से उसकी पहचान होती है। अंग्रेजी के पुट (रखना) और संस्कृत के पुट (परत) शब्द में ध्वनिसाम्य होने पर भी अर्थभेद है। इस अर्थ भेद का कारण भाषाभेद है। अतः अर्थ से भाष की जाति या नाम ज्ञात होता है। प्रत्येक भाषा का अपना शब्दार्थ होता है। प्रत्येक भाषा की अपनी शब्दार्थ पद्धति होती है।

शब्दार्थ लीला काव्य है। लीला में हेतु नहीं देखा जाता। वह हेतु निरपेक्ष है। शास्त्र में शब्दार्थ लीला लक्ष्य नहीं होती। वहाँ शास्त्र की बातें कहना लक्ष्य होता है। काव्य में शब्दार्थ की लीला या क्रीड़ा की छूट होती है। प्रत्येक कवि की शब्दार्थ प्रयोग पद्धति अपनी होती है। वह पद्धति अन्य कवि के समान होती हो यह आवश्यक नहीं है। इसे ही रचना शैली कहते हैं। प्रत्येक कवि की अपना रचना पद्धति होने से अपनी शब्द लीला होती है। अतः शब्दार्थलीला काव्य है। यह कहने से भी अतिव्याप्ति दोष हो जाता है, क्योंकि वाचिक अभिनय, व्याख्यान आदि भी शब्दार्थलीला है। अतः काव्यकर्ता की या कवि की स्वरचित शब्दार्थ लीला काव्य है। इसमें असंभव दोष नहीं है, क्योंकि काव्य में शब्दार्थ होता है और शब्दार्थ की लीला भी होती है। अतिव्याप्ति दोष नहीं है, क्योंकि न तो काव्येतर या साहित्येतर वाङ्मय इसकी सीमा में आता है और न वाचिक अभिनय या अन्य कोई पक्ष। इस काव्य लक्षण में अव्याप्ति दोष भी नहीं है, क्योंकि किसी भी भाषा का किसी भी शैली या विधा में रचा गया साहित्य इस लक्षण में समाहित हो सकता है। इस परिभाषा में आया लीला शब्द, दर्शन और पुराणों में भी ईश्वर की लीला अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ईश्वर का लीलासंसार और उसकी गतिविधियाँ हैं। उसी प्रकार कवि या रचनाकार की शब्दार्थ परम्परा और व्याप्ति चर्चा के योग्य है। रचनाकार की शब्दार्थ लीला कहने से रामलीला, रासलीला आदि का भी निरास हो जाता है, क्योंकि ये तो नट या भक्तों की अपने इष्ट की अनुकरणात्मक लीला है। इसप्रकार यह लक्षण के लक्षण के अनुसार काव्यलक्षण है।

ईश्वर के समान कवि लीला करता है। ईश्वर की लीला जगत् की भीतरी-बाहरी गतिविधियों के रूप में पायी जाती है। कवि की लीला भी काव्य के भीतर पायी जाती है, जिसे कभी कोई अभिनेता या स्वयं कवि मंच पर भी प्रकट कर देता है।

प्रश्न उठता है कि लीला करने का कारण क्या है? सर्वप्रमुख कारण साधक करण होता है। यह साधक कारण होता है। कपड़ा बुनने में धागा, डंडा आदि प्रमुख कारण हैं। उसी प्रकार शब्दार्थ लीला प्रमुख कारण है। बिना धागे का कपड़ा नहीं होता। यह समवायिकारण है। असमवायिकारण कपड़े का रंग आदि उसके साथ स्थायी जुड़ा रहता है। इन दोनों को उपादान कारण भी कहते हैं। बुनकर कवि आदि निमित्त कारण हैं। कपड़ा बनने या काव्य रचे जाने के बाद इनके बिना भी वे रहते हैं। निमित्त और उपादान दोनों अलग कारण होते हैं, परन्तु ईश्वर उपादान कारण भी है और निमित्त कारण भी। जैसे मकड़ी अपनी लार से जाला बनाती है। जाला बनने के बाद उसके हट जाने पर भी जाला बना रहता है। उसी प्रकार कवि भी काव्य का उपादान और निमित्त दोनों कारण है। वह अपने अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि या प्रतिभा तथा अहंकार या अभिमान से) शब्दार्थ द्वारा काव्य रचता है। अस्तित्वबोध का नाम अभिमान है। रचना के बाद निमित्त कारण कवि के हट जाने पर भी उसके अन्तःकरण से और शब्दार्थ से बना वह काव्य बना रहता है। कल्पना या उत्प्रेक्षा, स्मृति आदि अन्तःकरण की ही छटाएँ हैं। अतः अन्तःकरण से जागृत प्रतिभा के बल स्मृति, कल्पना आदि से स्फुरित उत्प्रेक्षा की शब्दार्थ द्वारा लीलात्मक अभिव्यक्ति काव्यरचना हो जाती है। उत्प्रेक्षण (सामान्य से ऊपर की विशेष दृष्टि) ही ऋषित्व है। ऋषिर्दर्शनात्। प्रत्येक कवि का अपना अपना उत्प्रेक्षण होता है। अतः प्रत्येक कवि ऋषि है। अतः उत्प्रेक्षा काव्य का बीज है।

समस्त मनोरथसिद्ध की गतिविधियाँ बिना प्रयोजन की केवल लीला के लिए होती है। निराकांक्ष ईश्वर का सृष्टि व्यापार केवल लीला है, लीलाविलास है। उसी प्रकार काव्य रचनाकार की रचनाप्रक्रिया भी लीला विलास है। ब्रह्म माया से आवृत्त होकर ईश्वर कहलाता है। ईश्वर सृष्टि, स्थिति, लय का करण है। उसकी प्रवृत्ति का उद्देश्य लीला है। ईश्वर के समान कवि लीला के लिए लीला या काव्य की सृष्टि करता है। अतः काव्य का हेतु लीला है और फल भी लीला। कारण लील और कार्य भी लीला। जैसे संसार ईश्वर की लीला के लिए लीला है, उसी प्रकार काव्य कवि की लीला के लिए लीला है। काव्य की स्थिति और लय तो समय के हाथ में रहता है, कवि के हाथ में नहीं। काव्य सृष्टि के साथ ही कवि का कर्त्तव्य (रोल) पूरा हो जाता है।

निर्विशेष निर्लक्षण ब्रह्म से सविशेष जगत् की उत्पत्ति होती है, परन्तु सविशेष कवि से निर्विशेष (अस्थूल) काव्य की रचना होती है। इसलिए कवि की लीला ईश्वर की लीला से भिन्न होती है। अतः कवि की रचना अलौकिक होती है, अनिर्वचनीय होती है। रचना के बाद स्थिति, लय कवि के हाथ में नहीं रहता। माया के कारण ईश्वर के समान कवि की रचना के लिए प्रवृत्ति होती है। एक जगत् रचता, दूसरा कविता जगत् या काव्यगत जगत् रचना है।

माया त्रिगुणात्मिका होती है, परन्तु न वह सत् है, न असत्। अतः वह अनिर्वचनीय है। सृष्टि के आरम्भ से पूर्व न सत् था, न असत् था। वह अनिर्वचनीय माया थी। ब्रह्म से बाधित होने के कारण वह सत् नहीं। माया की प्रतीति होती रहती है। अतः वह असत् भी नहीं। इसी प्रकार काव्यगत संसार जगत् में बहुधा यथावत् नहीं होने से वह सत् नहीं, परन्तु रचना में विद्यमान होने से वह असत् भी नहीं। अतः काव्य भी अनिर्वचनीय होता है। वह सदसत् से परे विलक्षण है।

माया प्रेरित करती है। यह उसके कार्य से पता चलता है। काव्यरचना हो जाने पर उसका पता लगता है। माया न सत् है, न असत् , न उभयात्मक है। न अंग सहित, न अंगरहित, न उभयात्मक है। उसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता। यह महाद्भुत और अनिर्वचनीय है। यही स्थिति कविता की भी है। महाद्भुताऽनिर्वचनीयरूपा (विवेकचूड़ामणि) माया की दो शक्तियाँ होती हैं। आवरण और विक्षेप। इनकी सहायता से ब्रह्म के वास्तविक रूप को ढँककर अवस्तु रूप जगत् की प्रतीति का उदय होता है। आधार के सच्चे रूप को ढँकने पर ही नयसे रूप की उस पर स्थापना की जाती है। उससे भ्रान्ति उत्पन्न होती रहती है। जादूगर आकाश में कंगन उछालता है और भूमि पर सिक्का बन कर गिरता है। पहले (आवरण) ढँककर सी वस्तु को नवीन रूप में प्रस्तुत करना (विक्षेप) है। इससे भ्रान्ति तैयार होकर जादू कहलाती है, कविता कहलाती है। कंगन वास्तव में नहीं बदलता, बदलने का आभास होता है। उसी प्रकार जगत् तो नहीं बदलता, परन्तु काव्य में बदलने का आभास होता है। यह माया का विलास है। यही लीला है। उस जादू से दर्शक प्रभावित होते हैं, जादूगर नहीं। वह अछूता रहता है। विलास की इच्छा का नाम लीला है- लीला नाम विलासेच्छा (वल्लभाचार्य) जो माया है, वही

लीला का परिणाम है।

ईश्वर माया से लीला करता है। कवि अपनी प्रतिभा कल्पना से लीला करता है। वह लीला काव्यरचना है। कवि लीला द्वारा माया रचता है। वह माया अदृश्य है। उसका श्रोता पाठक चित्त से अनुभव कर सकता है। अतः ईश्वर की माया से कवि की माया (लीला) भिन्न है।

जगत् में करने वाली कर्त्ता और कृति का विषय मिट्टी आदि घर का उपादान (कारण) माना जाता है। अतः ब्रह्म निमित्त और उपादान दोनों कारण हैं। ब्रह्म ने सोचा- मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ। एकोऽहं बहुस्याम्। एक का अनेक हो जाने की आकांक्षा कवि की विभिन्न रचनाएँ बनती जाती है। उनमें अभी तक असुना सुना हुआ, अमत मत, अविज्ञान विज्ञान होने लगता है।

येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम् । *(छान्दोग्योपनिषत् , 6-1-3)*

ब्रह्मसूत्र कहता है- लोकवतु लीलाकैवल्यम् (2-1-13)। यह लोकलीला है, केवल लीला। कर्त्ता और कृति दोनों ब्रह्म हैं। दोनों कवि हैं। इसीलिए काव्य कवि की अपनी कृति (आत्मरचना) या स्वयं की पुनः रचना है। अपनी मानस रचना है। अपने आपको स्वयं बनाना। तदात्मानं स्वयमकुरुत (तैत्तरीयोपनिषत् 2-7)। कवि अपनी रचना में स्वयं को बनाता है। यह आत्मघटना है।

परमात्मा की लीला संसार है। कवि की लीला काव्य है। चित्रकार की लीला चित्र है। मूर्तिकार की लीला प्रतिमा है। वास्तुकार की लीला भवन है। यंत्रकार की लीला यंत्र है। इसी प्रकार अपने इष्ट की गतिविधियों का अनुकरण भी लीला है। विरहिणी नायिका मनोरंजन के लिए अपने प्रिय के बोलने, वेश, गति, हास्य, दृष्टि आदि द्वारा अनुकरण करे तो वह भी लीला कहलाती है।

अप्राप्तवल्लभसमागमनायिकायाः
सख्याः पुरोऽत्र निजचित्तविनोदबुद्ध्या ।
आलाप-वेश-गति-हास्य- विलोकनाद्यैः
प्राणेश्वरानुकृतिमाकलयन्ति लीलाम् ।। *(उज्ज्वलनीलमणि)*

इष्ट की यह अनुकरण-भक्ति लीला है। रासलीला हो या रामलीला। शरीर के अंगों से की गयी चेष्टाओं में से एक है लीला। यह स्वभावज लीलाविलास है। शुद्ध नाट्य में सात प्रकार के तांडवों में एक लीला भ्रमण तांडव होता है। वे हैं- दक्षिण भ्रमण, वाम भ्रमण लीला भ्रमण, भुजंग भ्रमण, विद्युद् भ्रमण, लता भ्रमण, ऊर्ध्व तांडव (भरतार्णव 13/709-10)।

इन सबकी लीला माया दृश्य है, परन्तु कवि की लीलामाया अदृश्य रहती है। वह वाणी में निवास करती है। वाणी उसे प्रकट करती है।

वण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते। *(भर्तृहरि)*

कवि को वाणी अलंकृत करती है। कवि वाणी को अलंकृत करता है, शोभित करता है।

काव्य रचना का मूल कारण है अन्तःकरण। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का सम्मिलित नाम अन्तःकरण है। कविता की रचना में और कविता के रसास्वादन में इन सबको योग होता है। अतः अन्तःकरण काव्य का कारण है और फल का आधार भी अन्तःकरण ही है। स्थूल शरीर से सूक्ष्म इन्द्रियाँ श्रेष्ठ, बलवान और सूक्ष्म होती है। इन्द्रियों से पर मन, मन से पर बुद्धि और बुद्धि से पर वह (आत्मा) है (गीता 3/42)। बुद्धि से विवेक जागृत होता है। विवेक द्वारा वस्तु, शब्द, अर्थ, छन्द, रचनापद्धति का चयन और प्रयोग होता है। बुद्धि उसकी निमित्त सामग्री तैयार करती है- स्मृति, मति और प्रज्ञा से। व्यतीत व्यथार्थ और वर्तमान का स्मरण स्मृति कहलाती है। वर्तमान की मंत्रणा मति करती है और अनागत (भविष्य) को जानने वाली प्रज्ञा होती है। (काव्यमीमांसा, अ.4)। तब चित्त की एकाग्रता से समाधि अवस्था में प्रतिभा द्वारा काव्य की रचना होती है। नयी-नयी सूझ कौंधना (नवनवोन्मेष सम्पन्न) प्रतिभा से होता है। यह नये-नये आभास करवाती है। ये आभास कल्पनाजनित उत्प्रेक्षा से होता है। सामान्य की अपेक्षा ऊपर की विशेष दृष्टि उत्प्रेक्षा है। उसे ही संभावना कह सकते हैं। पर है वह संभावना से भी सूक्ष्म और

परिचय

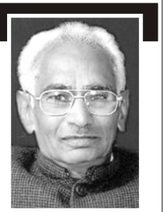

डॉ.भगवतीलाल राजपुरोहित
जन्म : 2 नवम्बर 1943 चन्दोड़िया (धार-मप्र.)
शिक्षा : एम.ए. (हिन्दी संस्कृत) पी.एचडी.
प्रकाशन : राजाभोज, कालिदास, उज्जैन कला, संस्कृति, अभिलेख, इतिहास, उपन्यास, नाटक (अनुवाद) काव्य, मालवी लोकगीत, समीक्षा संबंधी लगभग चालीस से अधिक कृतियाँ।
पुरस्कार/सम्मान : डॉ.राधाकृष्ण सम्मान, म.प्र.उच्च शिक्षा अनुदान आयोग श्रेष्ठ पुरस्कार म.प्र. संस्कृति अकादमी, बालकृष्ण शर्मा नवीन पुरस्कार म.प्र. साहित्य परिषद एवं अनेक सम्मान और पुरस्कार।
संप्रति : विक्रमादित्य शोध पीठ, उज्जैन के निदेशक
संपर्क : बिलोटीपुरा, उज्जैन 456006
दूरभाष : 0734-2576008

बढ़कर। उसे ही सब कल्पना नाम से जानते हैं।

चित्त जिस-जिस स्थिति या रूप में रहता है। योगसूत्र के अनुसार वे पाँच स्थितियाँ हैं-

1. प्रमाण (प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम (शास्त्रीय))
2. विपर्यय (मिथ्या ज्ञान)
3. विकल्प (संशयात्मक ज्ञान)
4. निद्रा (तम का प्रभाव, ज्ञान का अभाव)
5. स्मृति (अनुभूत विषय का अवशेष)

इनके द्वारा क्लेश या क्लेशाभाव का अनुभव हो सकता है। निद्रा में स्मृतियाँ विपर्यय और विकल्प सहित आती है तो वह स्वप्न कहलाता है। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प और स्मृति के योग से कल्पना तैयार होती है। इस कल्पना से उत्प्रेक्षा करके कवि काव्य का आन्तरिक संसार रचता है। यह निर्विकल्प से होकर सविकल्प बनता जाता है। निर्विकल्प क्रमशः तर्क-वितर्क से सविकल्प में रूपान्तरित होता जाता है। ठीक वैसे जैसे निष्कल शिवलिंग से स- कल साकार शिवरूप प्रकट होता है।

जिस स्मृति का विषय कल्पित अथवा अयथार्थ होता है उसे भावितस्मर्तव्यास्मृति कहते हैं। यह सदा स्वप्न में होती है। जिस स्मृति का विषय अकल्पित होता है, उसे अभावितस्मर्तव्यास्मृति कहते हैं। यह सदा जाग्रत अवस्था में होती है। जाग्रत अवस्था में भी स्मृतिलीन व्यक्ति जगत् निरपेक्ष अवस्था में पहुँच जाता है। इस विशेष स्थिति में व्यक्ति अन्तर्यात्रा में लीन रहने से जागते हुए भी संसारनिरपेक्ष रहता है। विचारलीन भी उस अवस्था में पहुँचता रहता है और कवि, भावक, भाविक, भावुक भी उस अवस्था में पहुँचकर रचना के काल्पनिक संसार का मानसिक रचनागत या रचनात्मक रसास्वादन में लीन रहता है। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए विशेष अलंकार का नाम भाविक है। भाविक अलंकार में भूत और भावी बातों का प्रत्यक्ष वर्तमान की तरह निरूपण किया जाता है। यही तो होता है काव्य में। अतः स्थूल रूप से यह भी कहा जा सकता है कि सभी काव्य में भाविक अलंकार होता है। अतः भाविक अलंकार की विभिन्न छटाओं का नाम साहित्य है।

आसीदंजनमात्रेति पश्यामि तव लोचने।
भाविभूषणसम्भासं साक्षात्कुर्वे तवाकृतिम् ।।

कवि नायिका का वर्तमान में पूर्वकृत रूप की कल्पना में कहता है कि तुम्हारी आँखों में केवल काजल देख सकता हूँ और तुम्हारी आकृति में भावी अलंकारों से अलंकृत छवि भी देख रहा हूँ। भूत और भविष्य की कल्पना वर्तमान में प्रस्तुत हो रही है। यही तो होता है काव्य में। अप्रत्यक्ष के वर्णन में प्रत्यक्षवत् प्रतीति होती है इस भाविक अलंकार में। यही तो होती है कोई भी साहित्यिक रचना। अन्य उदाहरणों से

भी यह स्पष्ट हो सकता है।

विष पीकर नीलकंठ हो, तुम जग अमृतमय करना।

अथवा

नटनागर नागफणों पर नाचे, तुम संसार नचाना जी।

भूतकाल के विषपान करने वाले वर्तमान शिव से भविष्य में जगत् को अमृतमय करने की कामना है। इसी प्रकार नागफण पर नाचते भूतकाल के नटनागर से वर्तमान काल में भावी संसार को नचाने की बात कही गयी है। दोनों स्थान पर ''तुम'' शब्द वर्तमान का बोधक है। इस प्रकार पीछे के भूत और आगे के भविष्य वर्तमान में व्यक्त हो रहे हैं। काव्य या साहित्य में भी बात वर्तमान में कही जाती है, परन्तु भूत और भविष्य की स्मृतियाँ, कल्पनाओं की उत्प्रेक्षा करते हुए। इस प्रकार संभावनामूलक उत्पेक्षा से भाविक रचते रहने में साहित्य की रचना होती जाती है। यह उल्लेखनीय है कि व्याकरण में भी वर्तमान कालिक धातु से ही भूत और भविष्यकाल बनता है। बिना वर्तमान में आये न तो भूत बनता है, न भविष्य। यह उल्लेखनीय है कि भट्टनायक ने भावकत्व का अर्थ साधारणीकरण किया है, परन्तु भावक अलंकार तो उससे पूर्व की रचनात्मक स्थिति से आरम्भ कर साधारणीकरण और भोजकत्व व्यापार तक पूरी रचनात्मकता और रसास्वाद तक को समेट लेता है।

यह उल्लेखनीय है कि भगवद्गीता में भूत और भविष्य को प्रकट करते हुए कृष्ण विद्यमान हैं। वे जब कहते हैं कि-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ *अध्याय 4/7*

और तब ***'सम्भवामि युगे युगे'' ॥*** *4/8*

रचनाकार भी रचना में स्वयं का सृजन करता है। कवि भी श्रीकृष्ण के समान कह सकता है कि सम्भवामि कृतौ कृतौ मेरे तेरे अनेक जनम गये। उन्हें तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ।

बहूनि में व्यतीतानि जन्मानि तव चर्जुन।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥

कवि अपनी कृति में अपने भूत और भविष्य काल्पनिक रूपों का वर्तमान में सृजन करता रहता है। अर्जुन देख रहा है कि वीरों का समुदाय विराट् रूप के मुखों में तेजी से प्रवेश कर रहा है। भीष्म, द्रोण, कर्ण और अन्य भी प्रवेश कर रहे हैं (11/26-27)। विराट् रूप में कृष्ण कहते हैं कि उन्हें तो पहले ही मैंने मार डाला है, तुम तो निमित्त हो। जब कि वे सब योद्धा सामने युद्ध के लिए तैयार खड़े हैं। यही होता है साहित्य में। वास्तव में जगत् में परिवर्तन नहीं होता, परन्तु रचनाकार के भीतर प्रवेश कर जगत् के परिवर्तन का आभास साहित्यमुख से पाठक श्रोताओं को होता रहता है। जैसे अर्जुन उस दृश्य से प्रभावित होकर काँपने लगा। पाठक भी साहित्य स्वादन में वैसी स्थिति में पहुँच जाता है। पूरी गीता और जन्मान्तर के सातत्य में भाविक अलंकार के सूत्र व्याप्त हैं। काव्यरचना उस व्यापक सूत्र का अंग है। स्वप्न या कल्पनागत संसार भी वैसा ही है।

अलंकारशास्त्रज्ञों ने उत्प्रेक्षा की व्याप्ति 176 भेद तक मानी है। (साहित्यदर्पण, पृ. 748, चौखम्बा, वाराणसी) इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बतायी गयी है- उत् + प्र + ईक्षा उत्कटा प्रकृष्टस्य (उपमानस्य) ईक्षा ज्ञानमुत्प्रेक्षा। प्रकृत की उत्कृष्ट अप्रकृत के रूप में संभावना। संभावना संशय अथवा भ्रम से भिन्न प्रकार का अनुभव है। इस अलंकार में एक पक्ष का बाध और एक का प्रतिष्ठापन होात है। अतिशयोक्ति और उत्प्रेक्षा दोनों अध्यवसायगर्भ (विषय निगरण) हैं। अतिशयोक्ति में सिद्ध रूप का निगरण होता है और उत्प्रेक्षा में साध्य रूप का निगरण होता है। साहित्य में दृश्य जगत् का बाध और काल्पनिक जगत् का प्रतिष्ठापन होता है। उसमें विशेष दृष्टि होती है। उस दृष्टि से विद्यमान संसार का बाध करते हुए उससे परे नये काल्पनिक जगत् की रचनात्मक प्रतिष्ठा की जाती है। अतः समस्त काव्य उत्प्रेक्षा है। यह उत्प्रेक्षा केवल एक सामान्य अलंकार नहीं है। यह साहित्य का बीज अलंकार है। अलंकारोतीति अलंकारः। अलं अर्थात् पर्याप्त करना। अलंकार अर्थात् पर्याप्तीकरण। पर्याप्त अर्थात् सम्पूर्ण। सम्पूर्णता लाना अलंकरण है। काव्य में सम्पूर्णता लाने वाला काव्यालंकार होता है। यह संपूर्णता बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार की होती है। दोनों प्रकार की संपूर्णता उत्प्रेक्षा से ही संभव है। शब्दशोभा, अर्थशोभा और दोनों मिलकर काव्यशोभा विशेष दृष्टि य उत्प्रेक्षा से ही सम्भव है। इस उत्प्रेक्षा की व्यापकता के लिए केवल उत्प्रेक्षा अलंकार के संस्कार को हटाना चाहिए। यह अलंकारों का अलंकार ही नहीं, काव्य का बीज है, सर्वस्व है। उत्प्रेक्षा के बिना किसी काव्य की रचना सम्भव नहीं है। उत्प्रेक्षा और भाविक शब्द अलंकारशास्त्र से प्राप्त होने पर भी यहाँ उनकी भूमिका केवल अलंकार की अपेक्षा अधिक व्यापक और पूरे काव्य के आधार बनने की है।

कल्पना में आभास होता है। वह निर्विकल्प होता है। निर्विकल्प ही कल्पना के माध्यम से सविकल्प बनता जाता है। यह उस कल्पना या उत्प्रेक्षा की लीला है जो काव्य की अन्तर्लीला बनती जाती है। इस अन्तःकरण की लीला को पाठक का अन्तःकरण ही ग्रहण करके उसका रसास्वाद लेता रहता है। अतः कवि का अन्तःकरण रचना तैयार करता है। पाठक का अन्तःकरण अपने देश, काल और प्रवृत्ति के अनुसार उसे ग्रहण करता जाता है। जितने पाठक उतने अन्तःकरण और उतनी ही उनमें बनने वाली उस एक काव्यकल्पना की अनेक छवियाँ। इस प्रकार एक कवि की रचना अगणित रूपों में प्रतिभासित होती जाती है। एक कल्पना अनेक कल्पनाएँ हो जाती हैं, एक रचना अनेक रचनाएँ हो जाती हैं। यही तो है- **एकोऽहं बहु स्याम्।**

स्मृति में किसी की छवि आती है। मूर्तिकार उसकी मूर्ति बनाता है, चित्रकारा चित्र बनाता है। मूर्ति और चित्र साकार होने के कारण विभिन्न दर्शकों को बहुधा उसी एक रूप का बोध होता है, परन्तु काव्यगत वस्तु निराकार होने के कारण जितने श्रोता-पाठक उतने रूपाकार बनते जाते हैं। जितनी बार पढ़ते-सुनते उतनी बार नये-नये रूपाकार बनते जाते हैं और कालांतर में उनका लोभ होता जाता है। कवि उसे अपनी रचना में उतारता है। हर पाठक चित्त में उसकी अलग-अलग छवि आभासित होती है। कोई किसी का स्मरण करता है तो उसकी छवि चित्त में आती है। स्वप्न में उसकी छवि बनती है। हर व्यक्ति को एक साथ न जाने कितने लोग याद करते हैं और उनके चित्तों में उतनी ही छवियाँ बनती हैं। स्वप्न में जितने जितनी बार उसे देखें तो उतनी ही छवियाँ बनती हैं, परन्तु यह उस मूल को ज्ञात नहीं होता कि वह कितनी ही स्मृतियों में साकार हो रहा है। इतनी स्मृतियों में पहुँचने के समय भी मूल वस्तु या व्यक्ति में भेद या प्रभाव नहीं होता। पानी भरे जितने कटोरे, उसमें चंद्र के उतने ही प्रतिबिम्ब। चन्द्रमा निरपेक्ष निर्विकार। कवि की कविता जितने सहृदय पढ़ें, उतने बनते जाते हैं बिम्ब। पर कवि या उसकी कविता का मूलभाव निर्विकार निरपेक्ष बना रहता है। यही है एकोहं बहुस्याम् । परमात्मा के समान कवि की लीला। यह लीला ही तो है कवि की कि जिन शब्दों से हम बातचीत करते हैं और जिन अर्थों का हम उल्लेख करते हैं। उन्हीं शब्दों और अर्थों के विशेष प्रकार की जमावट के ढ़ंग से कविगण संसार को मोहित कर लेते हैं। यह कवि की शब्दार्थ विन्यास लीला ही तो है और यह प्रत्येक कवि की अलग-अलग होती है, इससे उसकी अपनी शैली बनती है। यही हर कवि की अपनी-अपनी काव्यलीला है।

यानेव शब्दान्वयमालपामो

यानेव चार्थान्वयमुल्लिखामः।

तैरेव विन्यासविशेषभंगैः

सम्मोहयन्ते कवयो जगन्ति ॥

अन्य कवि की अथवा स्वरचित कविता का पाठ करना वाचिक अभिनय है। उस रचनापाठ में भी वागर्थ लीला हो सकती है। अतः जब रचना रचने के दौरान वागर्थ लीला होती है तभी वह काव्य के लक्षण का अंग बन सकती है। इस वागर्थ लीला में सभी मतवाद समाहित हो सकते हैं। वे चाहे भूत, भावी के हों अथवा वर्तमान में नये-नये कहीं भी कल्पित हो रहे हों।

समग्र रूप से यह प्रतीत होता है कि उत्प्रेक्षा द्वारा भाविक रूप में रचनात्मक वागर्थ लीला का नाम काव्य है।

कहानी

पीली तितलियाँ

रजनी मोरवाल

''तुमको हम दिल में बसा लेंगे तुम आओ तो सही,
सारी दुनिया से छुपा लेंगे तुम आओ तो सही,
एक वादा करो कि हमसे ना बिछड़ोगे कभी,
नाज हम सारे उठा लेंगे तुम आओ तो सही...''

गजल खत्म होते ही एक वजनदार आवाज उभरी थी ''फरमाइशी कार्यक्रम में ये गजल लिखी थी 'मुमताज राशिद' ने और जिसे गाया था चित्रा जी ने।'' उस रोज जगजीत सिंह व चित्रा सिंह स्पेशल कार्यक्रम चल रहा था, तभी विपिन ने पीछे से उसके कंधे को छुआ था।

''क्या हुआ ? इतनी मगन होकर क्या सुन रही हो ?''

''यह गजल... कितनी मीनींगफुल है न ?''

''अरे खत्म हो गई।''

''कहो तो फिर बजवा दूं ?'' सुमी ने मजाक में कहा था किन्तु उसकी पलकों पर चित्रा सिंह की जादुई आवाज से छिटककर कुछ नमी समा ही गयी थी।

''ओहो... लो देखो यह गजल तो वाकई रीपीट हो गई सुमी ! तुम्हारी जुबान पर सरस्वती बैठी थी उस वक्त जब तुमने इस गाने को दुबारा सुनवाने के बारे में कहा था, या ये एंकर तुम्हारी पहचान में तो नहीं कोई ?''

''अरे वाह... गजब इत्तेफाक है !'' वे दोनों बैठकर रेडियो की तरफ देखते रहे थे। कानों में मिश्री-सी घुली जा रही एक नाजुक स्वर लहरी कर्पूर की तरह भीनी-भीनी खुशबू समेटे पूरे कमरे को सुगन्धित कर गई थी। *''राह तारीक है और दूर है मंजिल लेकिन, दर्द की शम्मे जला लेंगे तुम आओ तो सही''* वातवरण भीगा-भीगा-सा हो उठा था और सुमी के हृदय में भयंकर खलबली थी।

अगले गाने की फरमाइश के बीच में रेडियो में गंभीर आवाज गूंजने लगी थी- ''शाम ढलने को हे, सूरज के डूबने से पूर्व चाँद अपने होने की आहटों को किरणों के दुपट्टे से लिपटाकर आसमान में बिखेरने को आतुर हुआ जा रहा हे, मगर इश्क की आँखों में ख्वाबों की कोई और ही दुनिया बसी हुई हे। तो लीजिये अपनी फरमाइश की गजल सुनें जिसे लिखा है 'सुदर्शन फ़ाकिरा' और 'ख्वाज़ा हैदर अली आतिश' ने और जिसे गाया हे, जगजीत सिंह व चित्रा सिंह ने-

''इश्क में गैरत ए' जज्बात ने रोने ना दिया,
वरना क्या बात थी किस बात ने रोने ना दिया।''

कार्यक्रम कबका खत्म हो चुका था किन्तु सुमि थी की किसी और ही दुनिया में खो चुकी थी,

''तुम है को हे क्यों कहते हो ?''

''अच्छा... मुझे तो नहीं लगता हे।''

''देखो ! फिर तुमने हे कहा'' और वे दोनों जोर से हँस पड़ते थे।

सुमि मन ही मन सोचने लगी, अगर यह वही है तो इसकी है को हे बोलने की आदत में सुधार नहीं हुआ अब तक।

बरसों पूर्व ऐसे ही किसी शाम को उसने अपनी भूरी पेंट के ऊपर जांघ वाले हिस्से पर नाखून से खरोंचकर पूछा था- ''डू यू लव मी ?''

''कच्च...'' सुमि तब अपनी पढ़ाई में गले तक डूबी थी। दसवीं के बोर्ड एक्जाम सिर पर थे और इस पागल को ये क्या शहरी बीमारी लगी है, उसने इस बार सुमि की हथेली पकड़कर अंगुली से हौले से वही तीन शब्द उकेरे थे।

''तुम पगला गए हो ? कल तुम्हारा मैथ्स का पेपर है और तुम्हें ये बकवास सूझ रहा है, जाओ निकलो यहाँ से'' और वह वाकई वहाँ से निकल गया था और तो और फेल भी होकर बैठ गया था। बाद में सुना था कि वह कोई और विषय पढ़ना चाह रहा है अब जिसके लिए उसके परिवार वाले किसी दूसरे शहर में शिफ्ट हो गए थे। मसला खत्म हो चुका था पर हथेली पर उकेरे वे तीन शब्द सुमि की हथेलियों में जज्ब होकर रह गए थे जिन्हें ताउम्र वह न मिटा पाई। एकाकीपन में गाहे-बगाहे उसकी हथेलियों में अकुलाहट होते देख वह रूमाल को जोर से भींच लिया करती थी ताकि अनुभूतियाँ पनपने न पाएँ किन्तु अकुलाहट कभी खत्म न कर पाई वह।

बरस-दर-बरस बीतते चले गए, उसने कत्थक में विशारद कर लिया और साथ ही ग्रेजुएशन भी, विवाह की जल्दबाजी उसे कतई न थी। वह घूंघरूओं की रूनक-झुनक में ही जिन्दगी के अर्थ तलाशना चाहती थी। गुरूजी जब उसे कत्थक सिखाते तो लगता है उसके जीने का सिर्फ और सिर्फ एक ही मकसद है और वह है कत्थक। एक-एक पैर में 200-200 घुंघरूओं की झनकार में पसीने से तरबतर सुमि की बलैयां लेते हुए गुरूजी उसके हाथ में एक सिक्का थमा देते थे, जो उसके नृत्य का ईनाम हुआ करता था। सिक्कों से खनखनाता गुल्लक उसने अब तक संभालकर संदूक में सँजो रखा है। यह बात अलग है की इधर बरसों से उसमें सिक्कों की संख्या न बढ़ी है न घटी है। उसने नृत्य करना बंद कर दिया ऐसा भी नहीं था किन्तु वक्त की मांग के आगे छूट जरूर गया था। हाँ टाँड़ की सफाई करते वक्त घुंघरू अवश्य अपनी खनखनहाट बिखेरकर उसके कानों में मिश्री-सी घोल देते थे, उनकी झंकार सुमि के भीतर उदासी भर जाती है और वह हौले से उन्हें गिनने लगती है जबकि जानती है की न एक घुँघरू कम हुआ है न अधिक गूँथा था उन लड़ियों में। मन को तसल्ली देने के लिए वह पूरे गिन चुकने के बाद बुदबुदा उठती है-

''भरी पिचकारी मारी सररररररररर
भोली पनिहारी बोली सररररररररर''

और कुछ कतरे उसकी आँखों से सररररररररर करते हुए अक्सर उसकी साड़ी में जज्ब हो जाते हैं।

''दहेज में तमाम चीजों के साथ उसके अधूरे सपनों की एक गठरी भी उसने चुपचाप बांध ली थी। पापा ने तुलसा माँ के हाथों संदेश भिजवाया था कि सुमि को कुछ अपनी पसंद की वस्तु चाहिए तो बता दे। पापा से उसका अबोला चल रहा था उन दिनों में, सो तुलसा माँ के माध्यम संवाद किया जाता था। सब जानते थे सुमि के कमरे का दरवाजा सिर्फ तुलसा माँ के लिए ही खुलता है, बचपन से ही हर सुख-दुख में सुमि ने तुलसा माँ का आँचल ही तलाशा था, माँ-पापा की डांट से बचने के लिए भी उसका इस्केप कोर्नर तुलसा माँ ही थी।

बहुत सोचने के पश्चात सकुचाते हुए उसने एक रेडियो की फरमाइश की थी। तुलसा माँ जो उनकी दाई कम माँ अधिक थी भीतर से उसके घुँघरू भी उठा लाई थी और विदाई के वक्त अपने पल्लू में संभाले-संभाले कार की पिछली सीट पर आ बैठी थीं। सब वाकिफ थे की सुमि के बाद तुलसा माँ उस घर में न रह पाएँगी। बस तभी से सुमि की नई-नवेली गृहस्थी के साथ-

साथ उसके सुख-दुख भी बाँटती रही थी। अब बुढ़ाने लगी थी तुलसा माँ। सुमि की पोनीटेल में भी तो अब आधे बाल सलेटी हुए जाते हैं पर सुमि की संगत में पनपा तुलसा माँ का रेडियो प्रेम अब तक बरकरार है, संगीत की समझ उन्हें कितनी थी ये तो पता नहीं किन्तु लय वे बखूबी पकड़ लेती थीं, इसीलिए जब तक रेडियो बजता था उनकी अंगुलियों में थिरकन समाई रहती थीं। सुमि के साथ संगत जमाने में उनका कोई मुकाबला नहीं था, सुमि जब कत्थक की प्रेक्टिस किया करती थी तब भी उसके पैरों में घुँघरू बाँधने से लेकर खोलकर सहेजने तक का पूरा जिम्मा तुलसा माँ ने अपने हिस्से ले रखा था।

विवाह के पश्चात सुमि अपनी तुलसा माँ को लिए देश के दूर इस हिस्से केरल की राजधानी तिरूवनंतपुरम में आ बसी, जीवन कुछ कठिनाई भरा न होते हुए भी उतना आसान भी नहीं गुजरा था उन पर। गृहस्थी की जिम्मेदारी अपने ऊपर यूं ओढ़ली थी सुमि ने की नृत्य लगभग छूट ही गया। विपिन ने कई मर्तबा उसे टोका भी था कि कत्थक के साथ कथकली को मिक्स करके उसे कोई न कोई नए प्रयोग करने चाहिए। बच्चे छोटे थे तबतक तुलसा माँ के भरोसे बच्चों को छोडकर वह नृत्य की अकादमी से जुड़ी भी रही फिर बच्चों की पढ़ाई तुलसा माँ के बस से बाहर होने लगी तो सुमि ने अपने घूंघरूओं को सहेजकर भविष्य के अनदेखे सपनों के साथ रख दिया था।

यूं तो उसके पति विपिन रेल्वे में बड़े अधिकारी थे और उनकी पोस्टिंग 'चेंगन्नूर' हुई थी। यहाँ उन्हें रेल्वे की कुछ नयी लाइनें बिछाने का कार्यभार सौंपा गया था। शुरूआती कुछ दिन तो वे रेलवे स्टेशन चेंगन्नूर के पास ही रहे फिर बढ़ते बच्चों की बढ़ी होती जाती पढ़ाई के कारण सुमि को तिरूवनंतपुरम में शिफ्ट करना पड़ा था। दोनों बच्चे अपनी-अपनी राह चल पड़े तब जाकर सुमि और विपिन अपने जन्मस्थान भोपाल की ओर रूख कर गए थे।

सुमि के पैरों में दर्द रहने लगा है, उम्र को कोई ऐसी भी नहीं गुजरी उस पर बस समय और जीवन की बढ़ती जिम्मेदारियों ने उसे थका दिया था, विपिन तो कई दिनों से उसे प्रोत्साहित कर रहे हैं कि उसे अपने नृत्य को फिर से गंभीरता से लेना चाहिए पर दुनिया इतनी तेजी से बदली है। सुमि अपने-आपको पिछड़ता हुआ मान बैठी है।

''ऐसा कुछ खास नहीं बदला वह भी कला के क्षेत्र में, बेसिक तो तुम्हें रटा पड़ा है, आखिर विशारद हो, कुछ क्लासेस तो तुमने तिरूवनंतपुरम में भी जॉइन की थी। बस जरा सी हिम्मत करने की जरूरत हैं, नृत्य तुम्हें खुशी देता है मैं जानता हूँ इसीलिए मैंने तुम्हें हमेशा ही प्रोत्साहित किया है, मानता हूँ घर-गृहस्थी तुम्हारे लिए प्राथमिकता रही है पर अब तो हम मुक्त हैं''

''मन जब मुक्त हो तब पंख उड़ान भरना ही चाहें ये जरूरी तो नहीं है, इच्छायें-आकांक्षाएँ भी कुछ होती हैं''

''प्रेरणा की उड़ान जब पंख पसारेगी तो तुम भी खुद को रोक नहीं पाओगी, चलो मैं आज ही तुलसा माँ से

कहकर तबला और घुंघरू निकलवाता हूँ''

''हाँ...तुम ही निकलवाओगे'' सुमि को अनचाहे भी कभी-कभी विपिन पर खीज होने लगी है,

''कुछ कहा तुमने ?''

''नहीं....यूं ही''

''तुम आजकल मर्मरिंग करती हो, खीझने लगी हो सुमि तुम, शायद उम्र के इस मोड पर यह सब होता होगा''

''खयालों के गुबार हैं निकल जाते हैं'' दरअसल तो सुमि कहना चाहती थी तुम जो ये वोलेंटरी रिटायरमेंट के बाद मेरे सपने जीने लगे हो इन्हें बंद करो, अपने सपने तुम खुद देखो, मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो, तुम्हारे साथ के अलावा भी मेरी अपनी एक सोच हो सकती है...कोई प्रायवेसी हो सकती है किन्तु वह अपने उद्‌गार इजहार नहीं कर पाती। स्त्रियाँ को चुप रहना प्रकृति गर्भ में ही सिखा देती है यदि कुछ कमी रह जाती है तो दुनियावी रिश्तों की कहानियाँ गुनते-बुनते वे सीख ही जाती हैं,

''हम खुलकर बात कर सकते हैं सुमि, मैं स्त्रियों की बराबरी का हकदार रहा हूँ।''

''जानती हूँ पर ये बात तुम्हारे और मेरे बीच की नहीं, ये बात मेरे और सिर्फ मेरे बारे में है जिसे मुझे स्वयं से बूझना है।'' सुमि कैसे बताए कि मेरे स्व को मेरे अपने लिए छोड़ दो, फैसला मुझे लेने दो और अपना जीवन अपने हिसाब से जिओ, वह चुप ही रह जाती है।

अगला दिन कड़ी धूप से चमचमाता हुआ उगा था, गली से बाहर झाँका तो गहन सन्नाटा साँय-साँय कर रहा था।

''ब्रंच का ख्याल अच्छा रहेगा ?''

''हम्म... सुमि थोड़ा सकपकाई, विपिन उसके ठीक पीछे सटकर खड़ा था।

''इस कड़ी धूप में जहाँ हवा का नामोनिशान भी नहीं, एक पत्ता भी कहीं जो हिलता दिख जाए तो देखो ...प्रकृति रूठी हुई है हमसे ?''

''नहीं...दरअसल हमने अपनी बेपनाह चाह से उसकी साँसे घोंट दी'' वो एक क्या तो शेर है 'ओबेदुल्ला अलीम' के *''अजीज इतना ही रखो कि जी संभल जाये, अब इस कदर भी न चाहो कि दम निकल जाए।''*

''बेपनाह चाह भी कभी किसी की साँसे...?''

''ओह...'' विपिन अपने वाक्य को अधूरा छोड़कर अचानक सुमि से दूर छिटक गया था। सुमि भी रसोई की तरफ चल दी थी, तभी रेडियो पर एक गंभीर आवाज गूंजी थी। सुमि ठिठक गयी थी।

''आज के कार्यक्रम में हमने चुने हैं फिल्मों से कुछ बेहतरीन नगमें जिनमें आपको एक से बढ़कर एक क्लासिकल नृत्य के बेमिसाल नगीने सुनाएँगे।'' उसने तुलसा माँ को देखा और एक सहमति जो बरसों से उन दोनों के मध्य ठहरी थी कि जिसको शब्दों में ढालने की जरूरत न पड़ी। तुलसा माँ ने घुँघरू सुमि के पैरों में यूं बांधे जैसे पूजा की तैयारी कर रही हो। वाकई सुमि के लिए नृत्य कला किसी पूजा की तरह ही था। पहला गाना सुनिए फिल्म नवरंग से बजा -

''धागिन धिनक धिन
धागिन धिनक धिन
धागिन धिनक धिन
अटक-अटक झटपट पनघट पर
चटक मटक इक नार नवेली
गोरी-गोरी ग्वालन की छोरी चली
चोरी-चोरी मुख मोरी-मोरी मुसकाये अलबेली
कंकरी गले में मारी कंकरी कन्हैया ने
पकरी बांह और की अटखेली
भरी पिचकारी मारी सररररररररर
भोली पनिहारी बोली सररररररररर''

सुमि एक के बाद एक कई गानों के पर नाची, जब थककर ढह गई तो दो

जोड़ी हथेलियों की तालियों के साथ कुछ आँसू भी थे जो उसकी स्वयं की आँखों से बह रहे थे। विपिन न जाने कब आकर वहाँ बैठ गए थे और उस वक्त उसे बस मंत्रमुग्ध हुए देखते रहे थे। जब सुमि सामान्य हुई तो दो लिफाफे उसके हाथों में थमाते हुए विपिन ने कहा था -

''और यहाँ तुम अकेली जाओगी, चाहो तो तुलसा माँ को ले जाना पर मैं कुछ व्यस्त हूँ।''

सुमि ने देखा लिफाफों में दूरदर्शन पर उसके कार्यक्रम की प्रस्तुति के लिए निमंत्रण पत्र था तो दूसरा एक टॉक शो का था, जिसमें उसे रेडियो पर जिसमें ''कत्थक नृत्य का इतिहास'' विषय पर एक्सपर्ट के तौर पर अपने विचार रखने थे। सुमि की आँखों से झरते आँसुओं में खुशी के साथ एक आत्मविश्वास भी था कि अभी भी बहुत देर नहीं हुई है, अभी भी उसके सपने जिंदा हैं।

दूरदर्शन कार्यक्रम के लिए महीने भर का समय बाकी था, किन्तु टॉक शो नजदीक था। सुमि ने विशारद तक की सभी किताबें पढ़ी और नोट्स तैयार किए। बहुत तैयारी के बाद भी एक भय था जो हर वक्त उसके साथ-साथ सफर करता रहा था। यहाँ तक जब वह माइक के साथ ऑन एयर थी तब तक किन्तु एक बार जो बोलना प्रारम्भ किया उसने तो मस्तिष्क की सोयी सभी नसें स्मृतियों को झंकृत कर गयी थीं।

''आप बहुत प्रवाह में थीं, आपकी बातें तार्किक और प्रभावपूर्ण थीं।''

''जी शुक्रिया... वो मैंने पहली मर्तबा इस तरह के किसी टॉक शो में भाग लिया तो कुछ घबराहट थी मन में।''

''हर काम कभी न कभी पहली दफा होना ही होता हे, अन्यथा न ले तो एक बात कहूँ?

''जी कहिए।''

''आपको कहीं देखा हे... क्या आप m/79 बँगले में रहती थीं ?''

''जी... आप अब भी है को हे कहते हैं ?'' सुमि ने सकुचाते हुए पूछ ही लिया था।

''जी... तो आप वही ? तभी मैं कहूँ कि ये आँखें... बहुत बोलती-सी !'' वह कुछ झिझका था।

''तो आप वहाँ से यहाँ आ पहुंचे ?''

''और आप वहाँ से यहाँ ?''

''जी वक्त रंगीन से सफेद हो बैठा।'' सुमि ने दोनों के बालों को इंगित करते हुए कहा था।

''रंग महज धोखा हे निगाहों का, वगरना जिंदगी स्याह या सफेद ही होती हे बस सफर के साथ-साथ हम इस सच्चाई पर एतबार करना सीख जाते हे।'' वह कुछ-कुछ दार्शनिक होने लगा था।

''बातें बनाना आपका काम ठहरा, कार्यक्रमों में यही तो करते हैं।''

''काम हे मेरा वह।''

''अच्छा तो चलूँ ?''

''एक कप चाय हमारे यहाँ की रवायत हे जो कुछ समय रूक पाओ ?''

''बड़ी फैन फोलोइंग हैं भई तुम्हारी ! माफ कीजिये मैं बेख्याली में आपको तुम कह गयी।''

''बेख्याली तो रही हे, वह भी इतनी कि तू से आप तक आ पहुँची ?'' वह लौटा रहा था सुमि को वहीं जहां वह लौटना नहीं चाहती थी। सुमि चुपचाप चाय की चुस्कियाँ लेने लगी थी।

''मेरी वजह से तुम फेल हो गए थे। दरअसल मैं आत्मग्लानि से मुक्त हो जाऊँ जो माफ कर पाओ ?''

''माफी... हाहाहा...! मैं तो तुम्हारा शुक्रगुजार हूँ।

''हम्म...''

''तुम जरा भी नहीं बदली, वही 'हम्म' कहकर जब्त करने का हुनर'' वह लगातार हँस रहा था, मगर सुमि झेंप गयी थी। वह कहना चाहती थी कि बदल तो सब कुछ गया है, हम यकीन ही न करना चाहें तो बात अलग है मगर जाहिराना तौर पर बोली।

''विपिन इंतजार कर रहे होंगे अब चलना चाहिए मुझे।''

''तो चलो फोन नंबर बदलने की औपचारिकता भी पूरी कर लें, वैसे यहाँ सब पार्टीसीपेंट्स के नंबर दर्ज होते हैं पर मैं ये गुस्ताखी तुमसे ही नंबर लेकर करूंगा, क्योंकि वह जानकारियाँ हमारी ऑफिसियल होती हैं।''

''यकीनन...'' तो अब मैं चलूँ ?''

''उस खरोंचे गए प्रश्न के लिए मुझे माफ कीजिएगा, हालांकि वह प्रश्न मैंने जिंदगी में किसी से नहीं पूछा, अपनी पत्नी से भी नहीं। बाय... ऑल द बेस्ट फॉर यौर सेकंड इनिंग्स ! वह गेट तक चला आया था।''

''न... न... बाय नहीं कहते, ये निहायत मनहूस शब्द है।'' सुमि के मुंह से शब्द फिसल गए थे अनायास ही। वह कार में बैठकर निकल चुकी थी। घर पहुँची तो व्हाट्स एप में एक पीली तितली मंडरा रही थी।

''इसका मतलब ?''

''अजनबी दुनिया में किसी पहचाने से मिलने पर एक 'हग' तो बनता है।''

''मगर पीली तितली ?''

''पीला रंग ऊर्जा, उमंग, आत्मविश्वास, खुशी और सकारात्मकता का प्रतीक होता है और इस तितली को गौर से देखो ! इसके पंख... जैसे बाहें फैलाए गले मिलने का गुमाँ देती हे, तुमसे गले नहीं मिल सकता तो यही भेज दी।''

''मंजूर... मगर पहले एक वादा करो कि तुम 'हे' को 'है' कहोगे और वह जो कार्यक्रम में लगातार बोलने से तुम्हारे होंठ सूख जाते हैं न तो एक अजीब-सा 'चप्प' सुर निकालता है उसे सुधार लोगे।''

''वादा...! तुम भी अपनी रियाज जारी रखना, इस नए आगाज को मंजिल जरूर मिले।''

सुमि ने यहाँ-वहाँ झाँककर देखा टीपी विपिन बेसब्री से बगीचे में चहलकदमी कर रहे थे। उसे देखते ही उत्साह से बोले - ''कैसा रहा ? तुम घबराई नहीं होंगी, मैं जानता हूँ, तुम्हारी तैयारी बढ़िया थी, मैंने फोन करके तुम्हें डिस्टर्ब नहीं करना चाहा हालांकि मन को समझाना मुश्किल था।''

बिना किसी सवाल का जवाब दिये सुमि जाकर विपिन से लिपट गई थी। विपिन ने सुमि को अपने से दूर हटाते हुए तनिक बनावटी लहजे में कहा था- ''क्या हुआ भई ? चलो-चलो अब अगली तैयारी मे जुट जाओ !'' रूआंसी हो आई सुमि ने कहा-''वह देखो पीली तितलियाँ !'' ''कहाँ...?'' विपिन उसे हैरत में देखते रहे फिर दोनों खुलकर हँस पड़े। हजारों-हजार पीली तितलियाँ कमरे में उड़कर सुमि के इर्द-गिर्द मँडराने लगी थीं।

23/97, स्वर्ण पथ, मानसरोवर
जयपुर - 302020
मोबाइल : 9824160612

परामर्श : **प्रतापसिंह सोढ़ी**
विशेष संपादक : **वाणी दवे शर्मा,**

गरिमा संजय दुबे की लघुकथाएँ

इन दिनों महिला लघुकथाकारों का साहित्य में बढ़ चढ़कर योगदान देना निश्चित ही प्रशंसनीय है। लघुकथा लेखन के माध्यम से महिलाओं की अभिव्यक्ति को एक और आयाम मिला है। यह कहा जा सकता है कि अपने स्वतंत्र विचारों को अपने लेखों में व्यक्त करने वाली डॉ.गरिमा दुबे इस बार के घरौंदे में अपनी लघुकथाओं के साथ प्रस्तुत है।

गरिमा जी की कलम केवल लेख या लघुकथाओं तक ही सीमित नहीं है बल्कि पुस्तक समीक्षा और कथाओं की भी यात्रा करती है। आइए उनकी कुछ लघुकथाओं पर बात करें -

'सिर्फ तुम और मैं' एक ऐसी ही लघुकथा है, जहाँ एक प्रेमी जोड़ा अपने भावी वैवाहिक जीवन की योजना तो बनाता है लेकिन उसकी नींव अपने ही माता-पिता की अनुपस्थिति पर रखना चाहता है। इस लघुकथा का दुखद पक्ष यह है कि पहल लड़की यह कहकर करती है- ''हमारे जीवन में बस हम दोनों रहेंगे, कोई और नहीं, तुम्हारे माँ-बाप भी नहीं। इन सारे रिश्तों के कारण पति-पत्नी में कोई प्रोइवेसी नहीं रह जाती।'' लड़का भी ये कहकर अपनी सहमती दे देता है कि ठीक है, हमारे बीच में कोई नहीं होगा तुम्हारे माता-पिता भी नहीं। लड़के की ये सहमति मानों लड़की को अपनी गलती पर सोचने को मजबूर कर देती है। साथ ही पाठकों को भी एक कटु सत्य से अवगत करा देती है कि पारिवारिक विघटन के लिए आज की आधुनिक पढ़ी लिखी बेटियाँ भी उतनी ही जिम्मेदार है जितनी कि उनकी पारिवारिक परिस्थितियाँ !

ऐसा ही एक प्रश्न 'अद्वैत' नामक लघुकथा में भी स्वतः आ गया है। जब एक नगरवधु सन्यासी द्वारा अद्वैत पर किये गये प्रवचन पर व्यंग्य हंसी हँसती है। अगले दिन सन्यासी उस हंसी का कारण पूछते हैं तब सन्यासी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए वह कहती है जिस व्यक्ति ने उसे नगरवधु बनाया वह भी परमात्मा का तत्व था तो आप मुझे बताइए हम सब यदि उसी परमात्मा के तत्व हैं, देह कुछ भी नहीं है तो आप मुझे कोई ऐसा सूत्र दीजिए जिससे मैं अपने हर ग्राहक में परमात्मा के दर्शन कर सकूँ! निश्चित ही ऐसी लघुकथा विशेष तो होती ही है, समाज की वास्तविकता से भी रूबरू करा देती है और ये भी सिद्ध कर देती है कि पुरुष समाज कह तो देता है कि आज नारी सुरक्षित नहीं है। लेकिन यह नहीं बताता किसके कारण असुरक्षित है ? 'आधुनिका' आजकी उस महिला को चरितार्थ करती है जो आधुनिकता के चरम पर खड़ी है, दो साल से साथ रह रहे तान्या और अमोघ दोनों ही अलग विचारधाराओं के युवा हैं। अमोघ में आज भी पारिवारिक सोच दिखाई देती है। इसलिए शायद वो इस लिव इन रिलेशन को एक नाम देना चाहता है - शादी का प्रस्ताव रखकर। लेकिन तान्या उसके प्रस्ताव की खिल्ली उड़ाती है- यह कहकर कि ये कमिटमेंट और रोकटोक से बचने के लिए वो लिव इन रिलेशन में है। अमोद्य मुझे अपनी स्वतंत्रता प्यारी है। तुम्हें अपने लिए कोई मेरिज स्टफ देख लेना चाहिए। तान्या की नशे में कही गयी ये बातें अमोघ के सपने को ऐसे तोड़ देती है जैसे काँच का ग्लास। 'अहसास' भी पारिवारिक पृष्ठभूमि पर खड़ी लघुकथा है जो बहू और बेटी के अंतर को खत्म करने का आह्वान करती है। माता-पिता अपनी विवाहित पुत्री को अपने मायके आने पर जोर देते हैं। और बेटी भी माता-पिता की खुशी को दुगना कर देती है - अपनी आने की सहमति देकर। लेकिन बहू की बोलती आँखों में एक सवाल ससूर जी पढ़ लेते हैं कि उनकी बहू भी किसी की बेटी है जो अपने इस परिवार की जिम्मेदारी निभाते-निभाते महीनों से अपने माता-पिता से नहीं मिल पाई है। 'अंतर' भी सास बहू के ताने-बाने से बुनी लघुकथा है। जहाँ बहू केवल बहू और बेटी सबकुछ है! मालिनी जी की बेटी के घर दो महिनों के लिये उसकी सास और ननद का आना बेटी के लिए चिंता विषय बन जाता है लेकिन महेश का एक जवाब मालिनी जी को निरूत्तर कर देता है, जब वे यह कहते हैं कि तुम्हारी बेटी भी सब कर लेगी, जैसे हमारे बेटा बहू सब कर लेते हैं- एक दूसरे के सहयोग से।

'आवारा' समाज के दो मुँह वाले समाज को सामने लाती है जहाँ हम अपने और पराए के फर्क को नहीं पहचान पाते अपितु क्या गलत है- क्या सही है, यह भी नहीं सोच पाते। आँखों देखा हर बार सच नहीं होता यह समझना अभी बाकी है गली का आवारा कहे जाने वाला कल्लू इन सारी बातों का मुँह तोड़ जवाब है। जब शर्मा जी की बेटी से दुकान वाला भोलू जो शक्ल सूरत से बेहद शरीफ दिखाई देता था, वह गलत हरकत करते पकड़ा जाता है। जब उसे कल्लू अपनी होशियारी से पकड़ लेता है तब मोहल्ले वालों का यह कहना कि हर मोहल्ले में कल्लू जैसे दो चार आवारा होना चाहिए नए सोच को पुष्ट करती प्रतीत होती है यह लघुकथा।

डॉ.गरिमा दुबे जी अपने सृजन के नए आयाम यूँ ही तलाशे जिससे नए विचारों वाले समाज के दर्शन हो। हमारी शुभकामनाएं उनकी अनवरत सृजनयात्रा हेतु...

चयन : वाणी दवे शर्मा
मोबाइल : 09009457992

सिर्फ तुम और मैं

एक दूसरे से प्रेम करते थे दोनों। कॉलेज के दिनों से, अब शादी का इरादा भी कर लिया था। घरवालों को भनक थी लेकिन अभी कोई बात आगे नहीं बढ़ा रहा था। मिलने मिलाने, घूमने फिरने का सिलसिला जारी था। सॉफ्टवेयर कंपनी की अच्छी नौकरी थी तो कोई जल्दी या हड़बड़ी में भी नहीं थे दोनो। लड़की अक्सर कहती, ''सिर्फ तुम और तुम ही हो मेरे, हमेशा रहोगे ना''। लड़का निहाल हो जाता -''हाँ बस तुम्हारा ही रहूँगा, मेरे लिए भी तो सिर्फ तुम ही हो''। एक दिन लड़की बोली -''बस हम दोनों रहेंगें कोई और नहीं, तुम्हारे माँ बाबा भी नहीं, कोई नहीं होगा हमारे साथ, न भाई न बहन, बहुत कीच कीच होती है। पति पत्नी की कोई प्राइवेसी नहीं होती, तुम सिर्फ तुम और मैं, कोई नहीं होना चाहिए, हमारे बीच, है ना। लड़की ने लड़के की आंखों में आँखें डाल कर कहा। लड़का अचकचा सा गया, लड़की की कमर पर कसे हाथ की पकड़ ढीली पड़ ही रही थी कि उस पकड़ को फिर से मजबूत बनाते हुए लड़की की आंखों में दुगुनी तीव्रता से झांकते हुए, अर्थपूर्ण ढंग से बोला- ''हाँ मंजूर है, सिर्फ तुम और मैं, कोई नहीं, तुम्हारे माँ बाबा भी नहीं, न भाई न बहन, कोई नहीं बस सिर्फ तुम और मैं, कोई नहीं होगा हमारे बीच, है ना ''। प्यार से लड़के की कमर पर कसे लड़की के दोनों हाथ की पकड़ एकदम से बहुत ढीली हो गई थी।

अद्वैत

वह रोज शाम को चुपचाप मंदिर हो आती। घूंघट डाल कर। अंदर नहीं जाती अपराध बोझ से दब जाती। पल भर को ही सहीं उसके धधकते मन को चैन मिल जाता। जानती थी उस पर कईं नजरे पहरा देती थीं वो तो बड़ी बाई साब ने पता नही कैसे उसे यहाँ तक आने की छूट दे रखी थी कहकर - ''जा, अब भगवान भी तेरी पुनः प्रतिष्ठा नहीं कर सकता, जो एक बार चकले पर बैठी फिर किसी बेदी पर नहीं बैठती, जा जोड़ आ उसके हाथ जिसने तेरी किस्मत में यह चकला लिख दिया है ''। एक सन्यासी जो वहीं एक पेड़ के नीचे पिछले एक महीने से विराजे थे उसे रोज ऐसा करते देखते। एक दिन उसके पास जा कर पूछ बैठे तो वह घबरा कर वहां से चल दी। फिर धीरे धीरे उन्हें उसकी असलियत पता चल गई । वे उससे फिर कभी नहीं बोले। एक दिन वे अद्वैत दर्शन पर प्रवचन दे रहे थे परमात्मा के हर निर्माण में उसी एक तत्व के दर्शन की बात कर रहे थे, यह सुन वह व्यंग्य से मुस्कुराती वहां से चल दी। सन्यासी उसकी व्यंग्य दृष्टि से आहत हुए, रात भर नींद नहीं आई, अगले दिन साहस से सन्यासी उसके सामने थे। उसने खड़े हो प्रणाम किया, सन्यासी सहृदय थे मुस्कुराते बोले' क्या बात है बेटी, कल तुम अद्वैत दर्शन पर व्यंग्यात्मक तरीके से क्यों मुस्कुराई थी, तो उसने जवाब दिया, ''जिसने मुझे धोखा दिया, जिसने मुझे बेच दिया वह भी परमात्मा के तत्व थे स्वामी जी''। स्वामीजी अचकचा गए वह फिर बोली ''कल आप अद्वैत दर्शन की बात कर रहे थे, सब एक ही हैं उसी परमात्मा के तत्व, देह तो कुछ है ही नहीं, मुझे भी इसका कोईं सूत्र दे दीजिए ताकि मैं अपने हर ग्राहक में अद्वैत का दर्शन कर उसमें परमात्मा को देख सकूँ और अपनी देह का मुझे भान न रहे। सन्यासी निरूत्तर थे और वह अपने भाग्यविधाता के हाथ जोड़ आंखों में आंसू लिए वहां से चल दी।

आधुनिका

वे दोनों पिछले दो साल से साथ में थे। तान्या अब इस रिश्ते से बाहर आना चाहती थी, किन्तु अमोघ तो कुछ और ही सपने देख रहा था। अब वह इस लिव इन रिश्ते को विवाह में बदलना चाहता था। आज उसने सोच लिया था कि वह तान्या को मन की बात बता देगा, तान्या भी खुश हो जाएगी। सपने सजाते हुए वह घर पहुंचा तो तान्या अभी आई नहीं थी। उसने साथ लाया डिनर टेबल पर सजाया, अंगूठी, फूल सब रख अंधेरा कर वह उसका इंतजार करने लगा। दरवाजा बंद था एक चाबी तान्या के पास थी, तभी दरवाजा खुलने की आहट हुई, तान्या ने जैसे ही लाइट जला सारा कमरा जगमगा उठा, सजी हुई टेबल देख उसने हंसते हुए कहा, अरे न आज तुम्हारा जन्मदिन है न मेरा, और कोईं खास बात भी नहीं फिर आज ये किसलिए, अमोघ ने उसका हाथ हाथ में लेकर कहा, भूल गईं आज ही के दिन तो हम इस लिव इन रिलेशन में रहने लगे थे, कुछ देर ठहर कर बोला मैं इस लिव इन रिलेशनशिप को लाइफ लांग रिलेशनशिप बनाना चाहता हूँ। कुछ देर की चुप्पी के बाद जोर से खिलखिलाने की आवाज आई, आर यू मेड अमोघ,लाइफ लांग रिलेशनशिप, अच्छा हुआ जो तुमने सात जन्म की बात नहीं की, वह खिल्ली उड़ाती सी बोली, अरे ये कमिटमेंट, ये बंधन, पूछताछ, रोक-टोक से बचने के लिए तो लिव इन है,पूरी जिंदगी एक साथ गुजारने के ख्याल ही बेमानी है, कल को मुझे और कोईं पसंद आ जाये, तुम्हे कोईं और पसंद आ जाए और फिर कसमसाते रहो, घुटते रहो उस रिश्ते में,अरे छोड़ो अमोघ मुझे अपनी स्वतंत्रता प्यारी है और हाँ तुम्हे शादी ही करनी है तो कोईं मेरिज स्टफ देखो यार, अपने से तो यह होने से रहा, वैसे भी दो साल हो गए है अब तुमसे बोरियत भी होने लगी है, चलो गुड नाईट कहती, नशे में झूमती वह अंदर चली गई, उसकी टक्कर से टेबल पर रखा गिलास गिरकर टूट गया, साथ ही अमोघ के सपने भी।

अहसास

''अरे बिटिया पूरे पंद्रह दिन हो गए तुम्हे देखे, आ जाया करो माँ बाप हैं हम, मन करता है अपने बच्चों से मिलने का''। उधर से भी खुशी से भरी आवाज आ ''हाँ पापा कल आ जाऊँगी'', ''अच्छा बेटा कल मिलते हैं '' फोन रख उन्होंने अपनी पत्नी को कहा -''कल आ रहें हैं मुन्नी और कंवर साहब, देख लो क्या क्या बनवाना है इस बार तो पूरे पंद्रह दिन में आ रही है ऐसा लग रहा है मानो महीनों हो गए हों।'' तभी बहू चाय का कप टेबल पर रख बोली -''पापाजी चाय'', बहू ने कहा तो कुछ भी नहीं किन्तु न जाने क्यों उसकी आंखें कुछ बोलती सी लगी। वे अचकचा गए सहसा अहसास हुआ कि उनकी बहू भी तो किसी की बेटी है, और इस परिवार की जिम्मेदारी निभाते निभाते महीनों से वो अपने माता पिता से मिलने नहीं जा पाई है।

अंतर

अपनी बेटी से फोन पर बात कर रहीं थीं वे- ''क्या दो महीने के लिए, दोनो सास ननद, अरे बेटा कैसे संभालेगी तू, बच्चे, नौकरी और अब इनको भी, देख जितना हो उतना करना, काम वाली को ज्यादा पैसे दे देना, तू मत खपना, अपनी सेहत का ध्यान रखना, थोड़ा ठीक ठाक ही रहना, पूरी बिछ मत जाना, तू नहीं तो बहुत सीधी है, बहुत भोली, नहीं तो आना जाना ज्यादा होने लगेगा उनका तेरे यहां, तू फँस जाएगी, चतुराई से काम लेना '' सारे निर्देश अपनी बेटी को देते देख पति महेश ने मुस्कुराते हुए पूछा, ''क्या हुआ, क्या सीखा रही थी अपनी बेटी को? '', । मालिनी जी बोलीं '' अरे कुछ नहीं, उसकी सास और ननद दो महीने के लिए उसके पास आ रहीं हैं, मेरी फूल सी बच्ची कैसे करेगी उनके नखरे पूरे, और पूरे दो महीने क्या उसकी ननद और सास को अपने घर बार की चिंता नहीं जो चली गई रहने उसके पास, कैसे करेगी मेरी बच्ची ये सब, थक जाएगी।'' महेश जी ने अखबार मोड़कर रखते हुए कहा'' जैसे हमारे बेटा बहू करते हैं सब बहुत अच्छे से, एक दूसरे के सहयोग से, सदा साथ रहने वाले और साथ रखने वाले सास ससुर की सेवा, फिर तुम्हारी बेटी के पास तो उसकी सास ननद दो महीने के लिए ही जा रही है,

तो उनके बेटे बहू भी कर लेंगें, करना ही चाहिए तुम चिंता मत करो अपना घर देखो। '' मालिनी जी निरूत्तर थीं।

आवारा

''आवारा है आवारा पक्का, इसकी तो नजर ही बुरी है, अपनी बेटियों को बचाना इससे '' मोहल्ले के नुक्कड़ पर पान की दुकान लगाने वाले कैलाश जिसे सब कल्लू कहतें हैं के बारे में औरतें बात कर रही थी। जोर जोर से गाने बजाने और हर आने जाने वाले के बारे में दुकान में बैठे बैठे कमेंट्री करते रहने की उसकी आदत से सब परेशान थे। मुँहफट मुहलगा था सबको जानता, मोहल्ले की बात थी तो कोई खुल कर कुछ कहता नही, देखो भाई वो गुलाबी सलवार सूट में मिश्रा आँटी आ रही है, ऐसा लग रहा है जैसे फूलगोभी को गुलाबी रंग दे दिया हो, मिश्राइन सौ गालियां सन्नाति -''आग लगे तेरे मुह को कल्लू कहीं का, माँ बाप कोई है नहीं तभी ऐसा छुट्टा घुमता है दो जूते लगाउंगी, ''लगा लियो आँटी जी पर गुलाबी गोभी बोलना न छोडूंगा, वह भुनभुनाती चली जाती और वह ठे ठे कर हँस पड़ता। कभी अररर देखो देखो शर्मा जी की छोरी को केसरिया रंग में पूरी की पूरी उमा भारती दिख रही है। पैर पटकती शर्मा जी की छोरी घर चल देती, जिसने बड़े जतन से केसरिया सूट सिलवाया था अपनी भरी जवानी में संत की उपमा सुन बिदक जाती। बस ऐसे ही आवारा गर्दी करता और रात अपनी कोठरी में पड़ा रहता। कोई और नुकसान नही लेकिन बस बोलने में तो पूछों मत। वहीं कॉलोनी के परचून की दुकान का भोलू जिसकी शराफत की दाद देते, कभी मुँह से बोल न फूटता, कल्लू को देख आंख फेर लेता।

एक रात सोया पड़ा था कल्लू कि कुछ हलचल हुई, पड़ोसी दुकान में झांका तो पाया उस दुकान वाला रईस छोरा भोलू जो शक्ल से तो हद दर्जे का शरीफ दिखता था, ने शर्मा जी की छोरी के मुँह पर रूमाल बांध रखा था और उसके साथ गलत हरकत करने की कोशिश कर रहा था कि कल्लू ने जो छलांग लगाई कि ठीक उसके सामने वह सकपका गया, जो धुनाई की जो धुनाई की कि नानी याद आ गई इतने में मोहल्ले वाले भी आ गए, लड़की के हाथ पांव छुड़ा अपने चिर परिचित अंदाज में बोला थोड़ा लड़की को लड़ना भी सिखाओ शर्मा जी, और मैडम केवल केसरिया सूट पहनने से कुछ नहीं होता थोड़ा दमखम रखो भवानी, हर बार बचाने को कल्लू नही आएगा, कहता हुआ आवारा हूँ गाता वह चला, गुलाबी गोभी मिश्रा नई दुकानदार का कॉलर पकड़े पकड़े बोली तेरे जैसे शरीफों से तो इस मोहल्ले में कल्लू जैसे दोचार आवारा भले। स

गरिमा संजय दुबे

विगत छः सात वर्षों से कहानियाँ, आलेख, व्यंग्य, कविताएँ और लघुकथा लेखन में सक्रिय प्रदेश के कई पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन, वेबदुनिया न्यूज पोर्टल पर भी नियमित लेखन।
पुरस्कार - वामा साहित्य मंच इन्दौर, साहित्य पिडिया नई दिल्ली, मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर, लोक संस्कृति मंच इन्दौर, श्रीगौड़ ब्राह्मण समाज द्वारा पुरस्कार व सम्मान, इन्दौर क्षितिज संस्था इन्दौर द्वारा सम्मानित, नारी शक्ति सम्मान।
संप्रति : सहायक प्राध्यापक (अंग्रेजी साहित्य)
संपर्क : 18वीं, वंदना नगर एक्स., इन्दौर म.प्र.
मो.नं.9009046734

पुस्तकें मिली

पंचकोण (उपन्यास)
सिम्मी हर्षिता
ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली-110002
मूल्य रू.300/-

सिम्मी हर्षिता की लोकप्रिय कहानियाँ
प्रभात पैपरबैक,
नई दिल्ली - 110002
मूल्य रू.150/-

भरथरी सतक (मालवी पद्यानुवाद)
नरेन्द्र श्रीवास्तव 'नवीन'
जमुनाबाई लोक साहित्य संस्थान, उज्जैन
मूल्य रू.150/-

यादें (संस्मरण)
क़मर मेवाड़ी
प्रकाशक - नीरज बुक सेंटर दिल्ली-110092
मूल्य रू.395/-

यह मिथक नहीं (कहानी संग्रह)
अमरीक सिंह दीप
अमन प्रकाशन, कानपुर
मूल्य रू.175/-

लावण्य देवी (उपन्यास)
कुसुम खेमानी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
मूल्य रू.195/- (पेपर बैक)

जड़ियाबाई (उपन्यास)
कुसुम खेमानी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
मूल्य रू.150/- (पेपर बैक्स)

कुछ रेत- कुछ सीपियाँ...विचारों की
कुसुम खेमानी
साहित्य भण्डार,
इलाहाबाद-211003
मूल्य रू.300/-

संस्कृति के सुर्ख़ाब (साक्षात्कार)
निर्मला डोसी
अमन प्रकाशन, कानपुर
मूल्य रू.495/-

वार्षिक घोषणा

समाचार-पत्र का नाम	: समावर्तन
भाषा जिसमें प्रकाशित किया जाता है	: हिन्दी
प्रकाशन की समयावधि	: मासिक
सम्पादक का नाम	: श्रीराम दवे
राष्ट्रीयता	: भारतीय
पता	: 'माधवी' 129 दशहरा मैदान, उज्जैन (म.प्र.)
प्रकाशक का नाम	: अजय भट्टाचार्य
राष्ट्रीयता	: भारतीय
पता	: 'माधवी' 129 दशहरा मैदान, उज्जैन (म.प्र.)
मुद्रणालय जहाँ मुद्रण होता है	: आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.)

उपर्युक्त समस्त जानकारी सही दी गयी है।

अजय भट्टाचार्य
स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक

सहमति असहमति का विवेक

अभिषेक कुमार गौड़

(अंक 120 से 152 तक)

''दस्तोवज मेरी कृति है और कृतिकार के जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना तब घटती है, जब कृति स्वयं कृतिकार से बड़ी हो जाती है। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि एक समय के बाद दस्तावेज मुझ से बड़ी हो गई।''- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (अस्ति और भवति)

तीन दशक और 120 अंकों के बाद दस्तावेज के बारे में संपादक की सार्थक टिप्पणी है। दस्तावेज के शुरूआत में 25 अंक के लक्ष्य के साथ एक विचारधारा विकसित हुई थी, जो आज अपने निजी प्रयास से इस ऊँचाई पर पहुँची है। अब तक की यात्रा में इस पत्रिका में वैचारिक के लिए विमर्श पर जोर दिया है और इसके लिए किसी सस्ते नुस्खे का प्रयोग नहीं किया है। पत्रिका के सामने कई तरह के सवाल थे, चुनौतियाँ थीं, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी अपनी आत्मकथा 'अस्थि और भवति' में इस सकारात्मक आंदोलन के विषय में लिखते हैं-''भ्रष्टाचार, हिंसा, भोगवाद, संवदेनशील, असहिष्णुता और अलगाव के इस भयानक, समय में मनुष्य की मनुष्यता कैसे जीवित रहे, शब्दकर्मियों के सामने यह चुनौती है, यही चुनौती इस पत्रिका के सामने भी है।''

अराजकता, लूट और हिंसा के इस युग में मूल्यों की चर्चा और रक्षा करने वाले लोग कम ही बचे हैं। भ्रष्टाचार ने साहित्य को भी अपने कब्जे में ले रखा है। अतः ऐसे समय में दस्तावेज की चुनौतियाँ निरन्तर बढ़ती गईं हैं। दस्तावेज ने विभिन्न प्रयत्नों से इनसे टकराव जारी रखा है। इसलिए दस्तावेज के भविष्य पर चर्चा करते हुए संपादक ने अपने साहित्यिक उपनिवेश के बारे में कहा है कि ''देश भर के लेखक मुझे इसी के द्वारा और इसी के नाम से जानने लगे, इसने मुझे वहाँ पहुँचाया जहाँ मेरी पहुँच नहीं हो सकती थी। इसने मुझे छोटा ही नहीं, अपना अनुगामी भी बना दिया। अब इसे बंद करना अपने ही बनाए भवन को स्वयं गिरा देना होगा।'' मनुष्यता की बढ़ती माँग के बीच दस्तावेज जैसी पत्रिकाओं की जिम्मेदारी बढगई है। इसने अपने समय के साथ विशेष संवाद कायम किया है। लोकतंत्र की तमाम विडंबनाओं का प्रतिकार दस्तावेज ने पूरे साहस से किया। इसी क्रम में अक्टूबर- दिसम्बर 2008 में अंक 121 प्रकाशित हुआ। इस अंक के संपादकीय में 'राष्ट्रकवि और राष्ट्रीयता' के प्रश्न को उठाया गया है। राष्ट्रीयता एक व्यापक शब्द है, संकीर्ण अर्थों में राष्ट्रीयता और कवि को परिभाषित नहीं किया जा सकता। भौगोलिक सीमा से ऊपर उठकर मूल्यों की चर्चा सच्ची राष्ट्रीयता है। इसं अंक में प्रकाश मनु ने 'हिन्दी में बाल उपन्यास', भगवान सिंह ने 'रामराज्य के रूपक में ढला हिन्द स्वराज्य' शीर्षक से लेख लिखे हैं। समकालीन समय में भी 'राज्मराज्य को' लेकर बहस जारी है। भूमण्डलीकरण के इस आंतकी दौर में रामराज्य की कल्पना सुखद है, किन्तु उसका अर्थ विकृत न करते हुए इसे सर्वहितकारी व्यवस्था समझना चाहिए। उपन्यास जैसी लोकतांत्रिक विधा में बाल उपन्यास लिखे गये, किन्तु इनकी संख्या सीमित है। उन्मेष सिन्हा ने सरस्वती के माध्यम से नारी चेतना की खोजने का प्रयास किया है।

अंक 122 का संपादकीय 'वैश्विक आतंकवाद और मीडिया', 'तालिबान में औरत', 'राजनीति और मीडिया' में साहित्य संस्कृति' पर चर्चा की गई है। संस्मरण के अंतर्गत एकान्त श्रीवास्तव और सुमन राजे ने एक नई संस्कृति से परिचय कराया है। इस अंक के सभी लेख स्फूर्ति प्रदान करने वाले हैं। कफन में कमलकिशोर गोयनका का आलेख नये विमर्श को जन्म देता है। उनका चिंतन है कि कफन मृत्यु नहीं जीवन की कहानी है। प्रदीप जैन का आलेख 'प्रेमचन्द के पत्र और कुल्लियाते प्रेमचंद' सूचनापरक है। इस लेख में बहुत से संदर्भों को

प्रस्तुत किया गया है, जो हमारी सूचनाओं का विस्तार करते हैं।

अंक 123 में राजेन्द्र यादव पर 'हिन्दी के अविश्वसनीय विचारक' नाम से संपादकीय छपा है। इसके अलावा 2009 लोकसभा चुनाव, प्रभाकरण का अंत, संविधान विरोधीकृत्य नाम से संपादकीय का अन्य हिस्साा भी महत्त्वपूर्ण है। इस अंक में 29 नेपाली कविताएँ छपी हैं। जो नेपाली कविता की संवेदना एवं विषय वस्तु को समझने में अहम भूमिका निभाती है। रंजना राजदान ने अपने आलेख में 'आज की कविता में पर्यावरण' की चर्चा की है। इसी अंक में शिवकुमार मिश्र ने आचार्य नंददुलारे वाजपेयी की रचनावली की समीक्षा की है। इसी अंक में प्रभाकर माचवे के 16 पत्र और पत्र- विधा में रेणु पर चर्चा करते हुए उनके पत्र शामिल किये गये हैं। दस्तावेज के जिस अंक में संपादकीय लिखी गई है, वह पर्याप्त चर्चित हुई है। अंक 124 में बीसवीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ, कृषिभूमि का अधिग्रहण भारतीय सभ्यता पर आक्रमण लालगढ(नक्सल प्रभावित), लपटों में हिन्दी शीर्षक से विभिन्न साहित्यिक, सामाजिक राजनीतिक मुद्दों पर टिप्पणी की गई है। दस्तावेज ने समय-समय पर साहित्य से इतर जरूरी विषयों पर अपना पक्ष रखा है। भूमि अधिग्रहण, नक्सलवाद जैसे जरूरी विषयों पर लिखी संपादकीय इस बात की पुष्टि करती है। इस अंक में 'आपातकाल में समाचार माध्यमों का दुरूपयोग' शीर्षक से अरूण कुमार भगत का लेख प्रशंसनीय है। इस अंक में अन्य सभी शीर्षक भी महत्त्वपूर्ण हैं।अंक 100 गाँधी पर केन्द्रित था, जो अंक 125 गाँधी के 'हिन्द स्वराज' पर केन्द्रित है। दस्तावेज की सारी चिंता गतिविधि और संभावना के केन्द्र में आम आदमी है। आम आदमी की फिक्र में दस्तावेज ने हर मुमकिन कोशिश उसे स्वाधीन बनाने को लेकर की है। इस दुर्भाग्यपूर्ण समय में संपादक का सबसे ज्यादा विश्वास गाँधी और उनके विचारों पर है। इस अंक में संपादकीय सहित कुल 17 आलेख शामिल हैं। दस्तावेज के अंक 127 के संपादकीय में 'अज्ञेय जन्मशती पर', 'हिन्दी भाषा का भविष्य', 'साहित्यिक जिज्ञासा', 'जाति आधारित जनगणना', 'हिंसा की राजनीति और बुद्धिजीवी' जैसे विषय शामिल हैं। शंभुनाथ का लेख '21वीं सदी में हिन्दी शिक्षण', उन्मेष सिन्हा का लेख 'सत्ता विमर्श के लिए जरूरी प्रतिरोधी पाठ' इस अंक की विशेष उपलब्धियाँ हैं। पत्रिका के संपादकीय के विषय में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है- ''साहित्य की लक्ष्मण रेखा को लाँघते हुए, दस्तावेज ने राजनीति भ्रष्टाचार और तात्कालिक समस्याओं को उसी प्रकार रेखांकित किया जैसे- दैनिक और पक्षिक अखबार करते हैं। ऐसी टिप्पणियों में प्रधानमंत्री से लेकर मुख्यमंत्रियों और प्रमुख नेताओं के नाम का भी उल्लेख किया।'' पृ. 174 अंक 128 के संपादकीय में 'विकास की अवधारणा किसान और बुद्धिजीवी', 'प्रकृति पर्यावरण और मनुष्य', 'स्वास्थ्य शिक्षा और हमारा जनपद' जैसे विषय शामिल हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 150 वीं जयंती पर प्रयाग शुक्ल और देवेन्द्र कुमार देवेश के लेख शामिल हैं। राममनोहर लोहिया की किताब 'निराशा के कर्तव्य' पर नंद चतुर्वेदी भी इस अंक में उपस्थित हैं। सूर्यप्रसाद दीक्षित ने भारतीय साहित्य के लुप्तप्राय प्राचीन रूप पर विवेचना प्रस्तुत की है। गिरीश रस्तोगी ने मुदुला गर्ग की किताब 'मिलजुलमन' की समीक्षा की है। 'देशांतर' शीर्षक में पुष्पिता अवस्थी ने नीदरलैण्ड में 'हिन्दी भाषा और साहित्य स्वरूप' लेख प्रस्तुत किया है।

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का कथन है कि ''दस्तावेज की एक दृष्टि पाठकों को स्वाधीन बनाना भी है। हिन्दी प्रदेश में हीनता बोध कुछ ज्यादा ही है, इसे तोड़ने के लिए दस्तावेज अपने संपादकीयों में बराबर प्रयासरत् रहा।''

इसी क्रम में अंक 129 की संपादकीय 'अयोध्या फैसला : आस्था,

इतिहास और कानून' विषय पर केन्द्रित है। अज्ञेय का संस्मरण 'कलकत्ते की याद' तथा अज्ञेय से ओम निश्चल की बातचीत इस अंक की उपलब्धि कहे जा सकते हैं। नागार्जुन की बंग्ला कविताओं पर निशांत, निर्मल वर्मा के पत्रों पर रामशंकर द्विवेदी के लेख भी महत्त्वपूर्ण हैं। इस अंक की सभी कविताएँ प्रशंसनीय हैं। नंद चतुर्वेदी, रामदरश मिश्र तथा देवेन्द्र आर्य की ग़ज़ल एवं कविताएँ इस अंक में शामिल हुई हैं। रम्य रचना के अंतर्गत वेद प्रकाश पाण्डेय की प्रस्तुति 'घर हैं कितने रूप तुम्हारे' बेहद प्रभावी है। घुटन, टूटन, अविश्वास, टकराव, अजनबीपन के इस माहौल घर की याद दिलाता यह लेख सुखद है। आज तहस-नहस भरे माहौल में अचरजकारी सुख होता है कि निजी प्रयास से भी दस्तावेज जैसी पत्रिका निकाली जा सकती है। अपने एक लेख में अरूणेश नीरन ने कहा है -''शोषित मनुष्य और लघुमानव से अलग हटकर यह मनुष्य की खोज करेगी'' दस्तावेज का अंक 131 अप्रैल-जून 2011 में प्रकाशित हुआ। इस अंक का संपादकीय 'अज्ञेय विरोध के निहितार्थ', 'उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान पर वज्रपात', भ्रष्टाचार के विरूद्ध जनता' क्रिकेट का जुनून पर' केन्द्रित है। विषयों की विविधता से ही संपादक के दृष्टिकोण का पता चलता है। आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री से शशिभूषण द्विवेदी का साक्षात्कार इसी अंक में प्रस्तुत है। नागार्जुन की कविता पर भी तीन लेख इस अंक में शामिल हैं। इसके अलावा गौतम चटर्जी ने रवीन्द्रनाथ टैगोर के नाटकों पर, वासुदेव मोही ने सिंधी कविता के छंदशास्त्र पर विचार किया है। इस अंक में कविताएँ औसत रहीं हैं। अंक 132 का संपादकीय अन्ना हजारे का आंदोलन और उसके विरोध पर लिखा गया है। 2011 में अन्ना ने पूरे देश में एक स्वतः स्फूर्त आंदोलन खड़ा कर दिया था। कुछ बुद्धिजीवियों ने एक खास तरह का विरोध अन्ना के आंदोलन का किया। संपादक ने उनको नसीहत देते हुए लिखा है- ''भारतीय जन में आत्मविश्वास भरने और उसे हीनताबोध से बचाने के लिए अन्ना जैसे व्यक्ति की सजीव उपस्थिति वांछनीय है।'' इस अंक में हिन्दी, पंजाबी, मराठी तथा ओड़िया कविताएँ प्रस्तुत की गई हैं। शंभुनाथ का लेख 'पूर्वोत्तर की भाषाएँ और संस्कृत हिन्दी', कृपाशंकर सिंह का 'कविता की पूर्णता का प्रश्न' तथा राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय का लेख 'जीवन में कविता' महत्त्वपूर्ण हैं। नंदकिशोर आचार्य की महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'अहिंसा विश्वकोश का मूल्यांकन' कृष्णदत्त पालीवाल ने इसी अंक में प्रस्तुत किया है।

अंक 133 का संपादकीय 'तानाशाही और लोकतंत्र' दस्तावेज को विशेष बनाता है। यह संपादकीय पाकिस्तान के लोकतांत्रिक संकट पर केन्द्रित है। इस प्रकार दस्तावेज ने सीमाओं के परे जाकर यह साबित किया है कि उसकी चिंता की केन्द्र में मनुष्य है। दस्तावेज के संदर्भ में नागार्जुन की एक कविता शामिल करें तो उसका बयान कुछ इस प्रकार है-

''कहाँ से मिली तुम्हें इतनी अनुभूतियाँ
पीड़ित मनुष्यता के निम्नतम स्तर की''

दस्तावेज के संपादक की यह चिंता आज आख्यान बन चुकी है। अपने समय के केन्द्रीय प्रश्नों से वह सम्बोधित रहे हैं। उनका प्रयास एक सुंदर, समझदार और संवेदनशील समाज रचने का है। रवीन्द्रनाथ टैगोर की 150वीं जयंती पर दस्तावेज ने उन्हें याद करते हुए कई अंकों में उनसे संबंधित सामग्री प्रकाशित की है। एक नोबेल पुरस्कार से सम्मानित लेखक को याद करने का बेहतर साहित्यिक माध्यम दूसरा नहीं हो सकता है।

अंक 135 में पंजाबी, नेपाली, असमिया, राजस्थानी तथा हिन्दी कविताएँ प्रस्तुत की गई हैं। इनमें से पंजाबी, असमिया और राजस्थानी कविता का अनुवाद क्रमशः योगेश्वर कौर, दिनकर कुमार, अतुल चतुर्वेदी ने किया है। इस अंक में संपादकीय नहीं लिखी गई, किन्तु विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने 'सीओल में समय' नाम से यात्रा वृत्तान्त प्रस्तुत किया है। सीओल और भारत में बहुत सी समानताओं का जिक्र इस वृत्तान्त में हुआ है।

अंक 136 में भी संपादकीय नहीं लिखी गई। इस अंक में सभी लेख महत्त्वपूर्ण हैं। इस अंक में शंभुनाथ ने 'राष्ट्रीय जागरण और हिन्दू', रामाशंकर द्विवेदी ने 'अज्ञेय की पत्रकारिता', भारत यायावर ने 'रेणु के साथ', प्रकाश ने 'कविता में समय और समयातीत', जीवन नामदुंग ने 'नेपाली कविता में छंदशास्त्र' शीर्षक से लेख प्रस्तुत किये हैं। इसी अंक में रमेशचन्द्र शाह के उपन्यास 'कथा सनातन' की समीक्षा रमेश दवे ने तथा ओमप्रकाश वाल्मीकि के कविता संग्रह 'शब्द झूठ नहीं बोलते' की समीक्षा दीपक प्रकाश त्यागी ने की है। मिथक चिंतन के अंतर्गत अजित कुमार सिंह ने 'बालिकुमार अंगद : आत्मकथ्य' प्रस्तुत किया है। अंक 137 में संपादकीय के अलावा लगभग दो तिहाई हिस्सा बांग्ला साहित्यकार सुनील गंगोपाध्याय पर केन्द्रित है। संपादकीय के अंतर्गत विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने उनके लेखन, लोकप्रियता तथा मनुष्यता को याद किया है। 'पुस्तकें' शीर्षक के अंतर्गत ज्योत्स्ना मिलन की किताब 'केशर माँ' का मूल्यांकन मुकेश वर्मा ने किया है। इस अंक में दस्तावेज के पाठकों के पत्र प्रकाशित किये गये हैं, जिनसे इस पत्रिका की दमदार उपस्थिति का पता चलता है। गौरतलब है कि जिन अंकों में संपादकीय नहीं लिखी गई है वे कुछ फीके-फीके से जान पड़ते हैं। अपने हर अंक के स्तंभों के साथ-साथ इसकी संपादकीय ने पाठकों को प्रभावित किया है। अंक 139 में तीन भाग हैं- लेख, कविता और कहानियाँ। दस्तावेज में कविताएँ शुरू से ही प्रकाशित होती थीं, किन्तु कथा- साहित्य कम शामिल हुआ है। इस अंक में पाँच कहानियाँ शामिल करके संपादक ने इस रिक्तता को भरा है। 'लेख' शीर्षक में शामिल सभी चार लेख ओड़िया साहित्य पर केन्द्रित हैं। इसके अलावा विभिन्न कवियों की कुल मिलाकर 16 कविताएँ इस अंक में शामिल हैं। अंक 140 में देवेन्द्र चौबे ने 'किसान प्रतिरोध और आंदोलन के कुछ साहित्यिक संदर्भ' शीर्षक से उत्कृष्ट लेख प्रस्तुत किया है। इसके संदर्भ बहुत ही ज्ञानवर्द्धक हैं। शरद पगारे ने राष्ट्रीय चेतना में ऐतिहासिक उपन्यासों के योगदान की पड़ताल की है। भवानी प्रसाद मिश्र की कविता पर वशिष्ठ अनूप, व्यास मणि त्रिपाठी तथा दिवा भट्ट के लेख भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य की रोचक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। इस अंक में कई बेहतरीन पुस्तकों का मूल्यांकन किया गया है। इनमें रमेशचंद्र शाह की कविता, वाजश्रवा के बहाने (कुँवर नारायण), पाव भर जीरे का ब्रह्मभोज (अशोक वाजपेयी), अपने-अपने अज्ञेय (ओम थानवी) आग की हँसी (रामदरश मिश्र) प्रमुख रूप से शामिल हैं। कई बार दस्तावेज के माध्यम से ऐसा अदेखा सच प्रस्तुत हुआ है, जो हमें विचलित कर जाता है। मनुष्य विरोधी ताकतों के खिलाफ दस्तावेज ने एक सत्याग्रह शुरू किया, जो आज भी निरन्तर चालू है। अंक 141 में भारत यायावर का लेख 'यह निराला का भिक्षुक कौन' महत्त्वपूर्ण है। इसमें किसानों के क्रमशः मजूदर बनते जाने का जिक्र किया गया है। प्रवासी साहित्यकार अभिमन्यु अनत का लेख 'मॉरिशस में भारतीय संस्कृति और उसे घेरे चुनौतियाँ भी प्रमुखता से शामिल हैं। इस अंक में ए. अरविंदाक्षन, राजेन्द्र उपाध्याय, श्यामसुंदर दुबे आदि कवियों की कविताएँ शामिल हैं तथा 'पुस्तकें' के अंतर्गत 'धरती अधखिला फूल' (एकांत श्रीवास्तव), उपन्यास की जमीन (सं. कृष्णकुमार) जैसी किताबों का मूल्यांकन किया गया है।

अंक 142 में चन्द्र त्रिखा का यात्रावृत्त 'जर्मनी की धरती पर' निखारयुक्त है। इस अंक में 'भारतीय भाषा और साहित्य' पर जितेन्द्र कुमार सिंह तथा 'कृष्णा सोबती' पर छबिल कुमार मेहेर, 'मुक्ति प्रसंग और भक्तिकाव्य' पर शशिकला त्रिपाठी के लेख चर्चित रहे। 'समकालीन भारतीय साहित्य' के अंतर्गत सीताकांत महापात्र की कविताएँ प्रस्तुत की गई हैं। 'पुस्तकें' शीर्षक के अंतर्गत काशीनाथ सिंह का बेहद चर्चित तथा विवादित उपन्यास 'काशी का अस्सी' का मूल्यांकन अखिल मिश्र ने किया है। इसके अलावा कई महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों के पत्र इस अंक में शामिल हैं।

अंक 144 की शुरूआत 'कविता पर एक वक्तव्य' शीर्षक से धूमिल के लेख से होती है। इस लेख में धूमिल की एक पंक्ति शामिल करना जरूरी लगता है- ''वक्त ने बेईमान होने के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी है। इस संदर्भ में ईमानदारी की चर्चा केवल फटी हुई नकाब ही सिद्ध होगी।'' इसी क्रम में धूमिल ने अपने रचनाकर्म की चर्चा की है। राजाराम भादू ने 'आधुनिकीकरण और भाषाई अस्मिता का सवाल' अपने लेख में उठाया है। शची मिश्र ने 'लोकमानस में सीता के बहाने स्त्री की व्यथा' के प्रश्न उठाये हैं। इसके अलावा देशांतर, पात्र तथा पुस्तकें शीर्षक के अंतर्गत प्रस्तुत सामग्री भी महत्त्वपूर्ण है। अंक 145 के संपादकीय में एक बार फिर से गाँधी को याद किया गया है। गाँधी की शक्ति उनकी नैतिकता थी। समकालीन समय में मनुष्य के सारे क्रिया-कलाप नीति के खिलाफ जा रहे हैं। आज का पूरा समय गाँधी विरोध का है, अतः ऐसे में मनुष्य विरोधी शक्तियाँ हावी हो जायेंगी, यही चिंता संपादक को भी है। इसी अंक में दुबामिश कबीले के सरदार सीएटूल का संदेश प्रकाशित किया गया है। संपादक की टिप्पणी है कि- ''ऐसा वहीं लिख सकता है जिसने धरती माँ को स्वयं माँ बनकर प्यार किया।'' आज निरंतर हो रहे भूमि अधिग्रहण के बीच यह लेख बताता है कि धरती से कटकर हम जिंदा लाश बनकर रह जाएँगे।

इस अंक में विशेष के अंतर्गत 'मुक्तिबोध की कुछ अधूरी कविताएँ' (रमेश मुक्तिबोध), 'श्रीकांत वर्मा का गद्य' (अरविंद त्रिपाठी), वह ट्रैजेडी 'जो बावड़ी में अड़ गई' (राजेन्द्र मिश्र) जैसे लेख संवाद एवं बहसों का सिलसिला बनाये रखते हैं। कविताओं के अंतर्गत गुजराती, पंजाबी, तमिल, नेपाली, अंग्रेजी, हिन्दी कविताएँ प्रस्तुत की गईं हैं। पुस्तकों के अंतर्गत नरेन्द्र कोहली, कांतिकुमार जैन, शरद पगारे की पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रस्तुत की गईं हैं।

अंक 146 में विवेक देवराय के लेख 'स्वामी विवेकानन्द का आर्थिक दर्शन' प्रकाशित हुआ है। स्वामी विवेकानन्द ने धार्मिक मत की सफलता के लिए आर्थिक पक्ष को महत्त्वपूर्ण माना है। अरविंद त्रिपाठी ने श्रीकांत वर्मा के राजनीतिक जीवन पर लेख प्रस्तुत किया है। अपने राजनीतिक सरोकारों की वजह से साहित्यिक बिरादरी में श्रीकांत वर्मा को लेकर एक तरह का विरोधभाव रहा है। साहित्य की मान्यता रही कि राजनीति का प्रतिपक्ष साहित्य है, उसमें किसी तरह का समझौता संभव नहीं। उदय प्रताप सिंह ने आलोचना की जवाबदेही पर बात की है, तो प्रदीप त्रिपाठी ने 'कल्पना' पत्रिका के साहित्यिक योगदान की पड़ताल की है। इस अंक की कविताओं में जयप्रकाश मानस की कविताएँ सर्वाधिक प्रभावित करती हैं।

अंक 140 के बाद विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने संपादकीय कम लिखा है, जिसकी कमी पाठकों को खली है। दरअसल संपादकीय लिखकर इस पत्रिका ने बहुत से प्रभावशाली लेखकों का भी प्रतिवाद किया है। यही वजह रही कि बहुत सी पत्रिकाओं में दस्तावेज के संपादकीय को पुनर्मुद्रित किया गया है। अंक 150 में लिखी संपादकीय गौतम बुद्ध पर केन्द्रित है। दस्तावेज की शुरूआत गाँधी जयंती से हुई, अंक 100 गाँधी पर अंक 125 'हिन्द स्वराज' पर तथा अंक 150 बौद्ध धर्म पर केन्द्रित है। कहने का आशय यह है कि संपादक ने पूरी तरह हिंसा का विकल्प प्रस्तुत किया है। इस घातक समय में संपादक की चिंता लड़ाई को जारी रखने की है किन्तु इसके लिए वह किसी भी प्रकार से हिंसा को जायज नहीं ठहराते हैं।

बुद्ध के चिंतन-दर्शन का प्रभाव समूचे विश्व पर पड़ा है। इस अंक में संपादकीय के अलावा 21 लेख बुद्ध पर केन्द्रित हैं। इन लेखों के माध्यम से बौद्ध धर्म के विविध पक्षों तथा आज के समय में उसकी प्रासंगिकता को समझने की चेष्टा की गई है। इस अंक के प्रमुख लेखक रवीन्द्रनाथ टैगोर, राधावल्लभ त्रिपाठी, हरिवंशराय बच्चन जैसे विद्वान शामिल हैं।

अंक 151 में 'हिन्दी आलोचना की दुर्स्थिति' पर अवधेश कुमार सिंह, 'सांस्कृतिक प्रभुत्ववाद और हिंदी मीडिया' पर व्यासमणि त्रिपाठी, आलोचक डा. नगेन्द्र पर शशिभूषण सिंह के लेख शामिल है। अज्ञेय पर राजेन्द्र उपाध्याय का संस्मरण प्रभावी है। इस अंक में 101 से 150 अंकों तक दस्तावेज के प्रकाशित रचनाओं एवं लेखकों का ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है।

जुलाई-सितम्बर 2016 में दस्तावेज का अंक 152 प्रकाशित हुआ। इसमें नंद भारद्वाज ने 'साहित्य आलोचना की आधार-भूमि' पर विस्तृत चर्चा की है। आनंद कुमार शुक्ल ने पत्रों के माध्यम से हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्त्व पर प्रकाश डाला है। ललित निबंध के अंतर्गत नीरजा माधव का निबंध 'बरस रहे हैं अश्रुत स्वर' शामिल हैं। पुस्तकों के अंतर्गत 'इस बार होली में' (रामदरश मिश्र), खबरें एवं अन्य कविताएँ (गंगा प्रसाद विमल), सम्पूर्ण कहानियाँ (सुदर्शन वशिष्ठ), तुलसी और गाँधी (श्री भगवान सिंह), आलोचना की उत्तर परम्परा (रमेश दवे) की समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

अपनी इस विराट यात्रा में दस्तावेज ने बहुत से नये लेखकों को स्थापित किया। इससे जुड़े बहुत से लेखक ऐसे भी थे, जो बाद में अपने चरम तक पहुँचे। पत्रिका के सभी स्तंभों ने एक सिलसिले को आगे बढ़ाया, जो अब तक बरकरार है। कुल 152 अंकों का ब्यौरा देखें तो 59 संपादकीय, 1957 कविताएँ, 684 लेख एवं टिप्पणी, 594 पुस्तक समीक्षा, 73 बहस एवं परिचर्चा, 4 रचना एवं आलोचना, हजारों पत्र, 98 यात्रावृत्त-संस्मरण, 20 मिथक चिंतन, तथा नाटक, रूपक, देशांतर, समकालीन भारतीय लेखन के अलावा 46 विशेषांक दस्तावेज ने प्रकाशित किये।

इन आँकड़ों से पता चलता है कि साहित्य ने हर विधा पर बात करते हुए विभिन्न विमर्शों को उठाया गया है। मिथक चिंतन ने परम्परा एवं आधुनिकता के द्वन्द्व को प्रस्तुत किया, मूल्यांकन के अंतर्गत समकालीन समय की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की जानकारी प्राप्त हुई। इसकी संपादकीय ने साहित्य से इतर अन्य सामाजिक मुद्दों पर भी बहस शुरू की। संवाद का जो सिलसिला 1978 में शुरू हुआ, वह आज भी पूरी मजबूती से कायम है; यह दस्तावेज पत्रिका का सबसे सकारात्मक पहलू है। दस्तावेज ने व्यापक संदर्भ में प्रतिरोध की जो परंपरा कायम की उसे मंगलेश डबराल की इन पंक्तियों के द्वारा बेहतर ढंग से समझा जा सकता है-

''मैंने देखा मैं बचा हुआ हूँ और साँस
ले रहा हूँ और मैं क्रूरता नहीं करता
बल्कि जो निर्भय होकर क्रूरता किये जाते हैं
उनके विरूद्ध मेरी घृणा बची हुई है यह काफी है।''

प्रवक्ता (हिन्दी)
जनता इण्टर कॉलेज, झबीरन (सहारनपुर)
मो.नं.-9919973740
ई-मेल- gaur.abhishek2@Gmail.com

समाप्त

व्यवहारिक मूल्यों को उजास देती लघुकथाएँ

बी.एल.आच्छा

लम्हों की गाथा सीमा जैन का पहला लघुकथा संग्रह है। इन दिनों लघुकथा का ज्वार साहित्य क्षेत्र में उछालें ले रहा है और प्रकाशन की बहुतायत में/पर जो लघुकथाएँ अपने अनुभव के धरातल पर जितने गठे हुए विन्यास के साथ आती है, वे निश्चय ही प्रभावित करती हैं। यों हर किसी के पास अपने अनुभव का हिस्सा है, वह व्यापक होकर सामाजिक यथार्थ बन जाता है, पर यही यथार्थ जब हमारे वैयक्तिक या सामाजिक धरातल को उदात्त सोच के साथ बिना किसी शिक्षा उपदेश और आदर्श के व्यावहारिक दृष्टि देता है, तो सहज ग्राह्य हो जाता है। जैसे भूगर्भ की जलीय तरलता सृजन के लिए अनिवार्य है, उसी तरह हमारी सामाजिक.मानसिक पृष्ट भूमि में ऐसी तरलता का व्यावहारिक संस्कार उजास देता है। सीमा जैन की लघु कथाओं का धरातल अपने भीतर इसी उष्मा और उजास को संजोता है। इस उजास में नये पुराने की विवक दृष्टि और नये प्रस्थान की खुली मानसिकता सारी नकारात्मकता को धकेलकर जीने योग्य व्यावहारिकता को मूल्यपरक बनाती है। इन लघुकथाओं में अभाव और भोग के बीच की फाँक का दर्द है। अभाव से उपजे भटकावों में भी लक्ष्य केन्द्रित पारिवारिक समझ है। धर्म जाति के बंधनों का अतिक्रमण करती रिश्तों की पारिवारिक हार्दिकता है। जिन्दगी की सँकरीली पगडण्डियों को अपने उदान्त व्यवहार से राजमार्ग बना देने की व्यावहारिकता है। अपनी संतानों के प्रति वृद्धावस्था में घर करती आशंकाओं के बीच आश्वस्ति है। पारंपरिक परिवारों में नयी पीढ़ी का विजन है। मोबाइल संस्कृति में पगी आधुनिक माताओं पर गहरा तंज है। गरीबी और अशिक्षा में भी उत्तरदायित्व निभाती औरत की भावभरी सीख है। यों पुरूष मनोवृत्ति, बाबावाद, निरर्थक पूजावाद, पुराने रूढ़िवादी सोच, मालिकों के संवेदनहीन व्यवहार, आंतक की मार, भ्रूण हत्या, रिश्तों का दोहरापन, सोशल मीडिया के खतरे जैसे अनेक विषयों को इन लघुकथाओं में विविधता के साथ संजोया गया है। पर सीमित धरातल के बावजूद इन लघुकथों में यथार्थ से गुजरती हुई वह दृष्टि ही प्रभावी है, जो जीने योग्य रास्तों की तलाश करती है। परिवारिक धरातल पर बुनी गयी लघुकथा 'पानी' का अक्ष केवल घर नहीं है, बल्कि पर्यावरण के लिए प्राकृतिक संसाधनों को सहेजने की युगीन सोच भी है। पुत्र का मां के प्रति गहरा लगाव और अभावों में गुजरी उसकी जीवन कथा को तमाम सुविधाओं से तुष्ट करने का पुत्र का मनोभाव मूल्यपरक है। पर रेगिस्तान में कोसो दूर से सिर पर पानी लाने वाली मॉ जब स्विमिंग पुल के पानी को बेटे की मल्टी में देखती हैं तो यह वाक्य उसकी तड़प बन जाता है.''जिन चार घड़े पानी ने पूरी जिन्दगी का सुख ले लिया, उस पानी का ये हाल'' त्यागभरी सूखी जिन्दगी और भोग के ये रूप सांकेतिक रूप से प्राकृतिक संसाधनों को सहेजने की दिशा देते हैं। इन लघुकथाओं में लेखिका प्रवेश नहीं करती, न ही आदर्शों की बात करती है, बल्कि सांकेतिक रूप से उन युक्तियों को संजोती है, जो दिशा बोधक है। व्यावहारिक संतुलन को साधते हैं। इन लघुकथाओं के पात्रों में सहज विवेक है, जो अभावों या यंत्रणाओं में मुक्कलम रास्ता निकालते हैं। मसलन, भविष्य लघुकथा में ताऊ के भोगवादी वैभव में भतीजा शराब के जूठे बर्तन उठाकर भी क्लान्त और विद्रोही नहीं है, उसके भीतर पिता के इलाज की प्रतिज्ञा रची बसी है, जो माँ को भी आश्वस्त कर देती है। ये भीतरी रिश्ते यदि 'रोशनी' में जात-पाँत को किनारे कर देते हैं तो 'हद हो गई' में अनजान लोगों से हृदय को लिपटा देते हैं। 'हद हो गई' का पहला परिदृश्य जितना सँकरीला है, उतना ही दूसरा परिदृश्य इसी वाक्य को दोहराकर न केवल हृदय की राह को चौड़ा कर देता है, बल्कि माँ की पीढ़ी को भी सीख देता है। 'डर' में संतान में माता.पिता की सुविधा का वह झूला है, जो संतानों के प्रति बढ़ती हुई वृद्धों की आशंका को निर्मूल कर देता है। 'फाँस' में पीढ़ियों के कैनवास पर नयी बहू का विजन, 'परिवार' मे अनाथालय में बड़ी हुई लड़की का सेवाभावी संस्कार, 'आकार' में 'सेवा' का नया नजरिया, 'हालत' में भाभी-ननद में समानता का सोच, 'पापा सही थे' लघुकथा में युवा पीढ़ी के भटकाव को रोकता पिता का विवके, 'दूसरे की मॉ? में कर्तव्य भाव का उदान्त विस्तार, 'उऋण' में 'मातृप्रेम' जैसे अनेक भावात्मक पक्ष पूरी संवेदनीयता के साथ या तो पुरानेपन को गला देते हैं, या व्यावहारिक युक्तियों से पारिवारिक संवाद को रिश्तों के नयेपन से उजला कर देते हैं। पारिवारिक रिश्तों का सामाजिक विस्तार करती हुई कुछ लघुकथाओं में तंज भी हैं। मलसन 'बचपन' लघुकथा में मोबाइल और हाउजी में उलझी मम्मियाँ और खेलों के लिए तरसते बच्चें। बड़ों का गेमियता बचपन सवाल खड़े करता है। 'गाइड' में अंग्रेजी.फ्रेंच, और मोबाइल के बगैर जीना इम्पोसिबल मानने वाली लड़की के समानान्तर महज सलवार सूट में आत्म विश्वास के साथ शिक्षा पूरी करने वाली बहनजीनुमा लड़की की दृढ़ता अपना प्रतिमान बनाती है। पर पारिवारिक किस्म की इन लघुकथाओं में उगती हुई नयी स्त्री भी है, जो पुरानी कैंचुल का परित्याग कर अपने आत्मतेज से पाठकों को कौंध देती है। 'कुछ नया' की पत्नी टीवी पर अपनी बात कहते संकोच नहीं करती और पति की डाँट का पूरे आत्मतेज से उत्तर देती है. ''कुछ दुखियारी औरतों को ये कहना जरूरी था कि पति की मार खाकर, सास के ताने और जुल्म सहकर भी अपने हुनर के बल पर वहाँ पहुँचा जा सकता है।'' आर्थिक स्वावलंबन के लिए यह औरत दुख को अपना साथी बनाकर जीवन संघर्ष को मूल्य मानती है। 'दूसरा रूप' में तो पत्नी का आँखें तरेरता हुआ संवाद ही विवके युक्त नारी के भीतरी तेज का प्रतिरूप बन गया है. ''जिस दिन मैंने अपना दूसरा रूप दिखा दिया उस दिन तुमकों समझ में आ जाएगा, सहायता की जरूरत किसे ज्यादा है''।

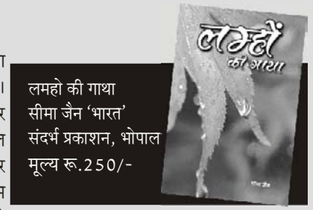

लमहो की गाथा
सीमा जैन 'भारत'
संदर्भ प्रकाशन, भोपाल
मूल्य रू.250/-

पारिवारिक पृष्ठभूमि से रिले मिले सामाजिक परिप्रेक्ष्य का एक पार्श्व मालिक-नौकर के रिश्तों का है। कुछ लघुकथाएँ लेखिका की संवेदनशीलता और व्यावहारिक समझ का परिचय देती है।। कामवाली भी आखिर मनुष्य है और उसे क्या पारिवारिक निकटता दी जा सकती है। 'सफाई की पाठशाला' सारी शर्तों को मानने के बावजूद हाशिये पर रखी गयी बाई सवाल करती है।. ''मुझे घर में ही शौचालय मिल जाएगा'' स्वच्छता का सेवक स्वच्छता की सुविधा से कितना दूर है, क्योंकि इस घर में अलग से व्यवस्था नहीं हैं। 'समझदार' में यह दोहरापन बेलाग होकर बराबरी का हक जतलाता है। ये लघुकथाएँ अपने मंतव्य और बनावट में बेहद सुलझी हुई है। इनमें ताना-बाना भी उलझनों को सफाई से पेश करता है और बिना किसी उपदेश या आदर्शपरक संदेश के ये लघुकथाएँ उदात्त दृष्टि से अपनी राह खोज लेती हैं। एक तरह से हमारा पारिवारिक, समाज शास्त्र इन लघुकथाओं का वर्तमान बना है, और उसके तारों का उलझा-सुलझा स्पन्दन इनके भीतर से गूँजता है। इनमें भावात्मकता भी है, बदलाव का सोच भी है, कहीं-कहीं व्यंग्य की तीखी मार भी है। कहीं दोहरे चारित्र पर आघात करते व्यंग्य भी हैं, कहीं तकनीक के अतिचार से घर के सदस्यों में पारिवारिकता की अनदेखी पर व्यंगय भी है, कहीं पारिवार में मायके-ससुराल के प्रति दोहरे आचरण पर प्रहार भी हैं। लेखिका संवादों की प्रत्यंचा से ऐसे आघाती तीर चलाने में भी सक्षम हैं. माँ चिढ़कर बोली. ''आ गया न संगत का असर, कितना भी दूर रखों, खेत के मूँगफली और आलू जोर मार ही गये।'' पापा ने जवाब दिया. ''अब मिट्टी से पैदा हुई आदतें मिट्टी को खींच लेती हैं।'' माँ के पीहर.ससुरालवादी दोहरेपन को पछीटते इन संवादों में प्रतीक गहरे अर्थ देते हैं, व्यंग्य भी। इसके विपरीत कुछ संवाद-सौहार्द की रोशनी उगाते हैं. ये लिफाफे के अलग-अलग रंग प्रेम का रंग भी बदल देंगे। इसकी शुरूआत तुम कर रही हो।'' यह संवाद माँ का नहीं, छोटी बेटी का है। यही प्रीतिकर आश्वस्ति इन लघुकथाओं में मूल्यपरक बन गयी है। 'लम्हों की गाथा' में कथा तत्व मौजूद है, कभी.कभी तो पीढ़ियों का समकाल में अवतरण होता है पर वह कालदोष नहीं बनता ये लम्हें पीढ़ियों की गाथा यानी पुराने उलझे रिश्तों.व्यवहारों का सामाजिक इतिहास रचते हैं, पर इनसे टकराकर अपनी युक्ति परक राह भी खोज लेते हैं। शीर्षक बहुत व्यंजक है इसीलिए कि इनमें हमारे पारिवारिक-सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं का इतिहास है, पर लम्हों की लंबाई में जीती इन लघुकथाओं में वह उलझन और सुलझन बन जाता है। अपनी बनावट में बेहद सरल और अदायगी में भावात्मक, स्पन्दन के लिए ये लघुकथाएँ पाठकों तक सहज संप्रेषणीय हैं।

36, क्लीमेन्ट्स रोड़ सरवना स्टोर्स के पीछे
पुरूषवाकम्, चेन्नई (तमिलनाडु) पिन - 600007
मो. 94250-83335

कृति के सम्पूर्ण निकष पर मुकम्मल चर्चा

रेशमी पाण्डा मुखर्जी

कथाकार राजी सेठ का प्रथम उपन्यास तत्सम 1983 में प्रकाशित हुआ। आज तैंतीस वर्षों के दौरान इस उपन्यास पर कई बेहतरीन समीक्षाएं छपीं, विचार-गोष्ठियों में इस पर सांगोपांग चर्चाएं हुईं। कई श्रेष्ठ विद्वानों ने अपनी दृश्टि से इसे परखा, अपने अभिमत प्रदान किए। मधुरेश ने इसे मृत्यु से जीवन की कथा, डॉ प्रभाकर श्रोत्रिय ने इसे वीणा पर राग मालकोंस, डॉ अशोक जैरथ ने अन्त चेतना प्रवाह शैली का सांगोपांग निर्वाह करने वाला हिंदी का प्रथम उपन्यास, सलीम खान ने इसे आत्मकेंद्रित व व्यक्तिवादी किस्म का उपन्यास कहा है। कई क्षेत्रों में इस कृति पर शोध कार्य भी सम्पन्न हुए। लीक से हटकर लिखे गए इस उपन्यास ने निस्संदेह हिंदी साहित्य में विचार-लहरियों के उफान उठाए। इस वर्ष डॉ लक्ष्मी पांडेय के संपादन में यह किताब 'निकश पर तत्सम' पाठकों के समक्ष आई। एक ऐसी किताब जिसमें आद्योपांत 'तत्सम' पर लिखी गई विविधमुखी चर्चाओं व विचारकों के मत-मतान्तर को समग्र रूप में समेटा गया है।

'तत्सम' के चुंबकत्व का जिक्र करती हुई संपादक ने पूरे उपन्यास को उसके मुख्य पात्र वसुधा के साथ खंगाला है। आधुनिक युग के मानदंडों पर भारतीय मॉडर्न नारी की रूपरेखा के आधार पर वसुधा के चरित्र-चित्रण पर गहराई से विचार किया है। पाठक भूमिका से गुजरते हुए अपने आप को अधूरा-सा महसूस करने लगता है, यदि उसे 'तत्सम' से गुजरने का मौका नसीब न हुआ हो। यह भूमिका उसे 'तत्सम' को पढ़ने, उसके भीतरी तहों तक पहुंचने के लिए जरूर उकसायेगी। उपन्यास से गुजरने के पश्चात वह फिर इस कृति के खंड 'ख' में संकलित 32 लेखों को आत्मसात कर पाएगा। इन लेखों में विद्वानों ने 'तत्सम' के आधार पर नारी समस्या से लेकर उसके जीवन-दर्शन की परख की गई है। साठोत्तरी उपन्यासों में 'तत्सम' के स्थान पर विचार करने के बहाने हिंदी उपन्यास की आधुनिक विकास यात्रा पर भी नजर दौड़ाई गई है। पाठक जानते है कि राजी सेठ मनोविश्लेषण के सूक्ष्म तारों के आधार पर अपने औपन्यासिक पात्रों का बखूबी निर्माण करतीं हैं। इस ग्रंथ में ऐसे कई लेख संकलित हैं जिनमें नारी के अंतर्मन की सूक्ष्म रेखाओं को राजी सेठ की दृष्टि से तलाशने का सफल प्रयास है। उदाहरणार्थ शशिभूषण सिंहल लिखते हैं 'तत्सम अपने समय का बहुचर्चित उपन्यास रहा। उसकी महता उसमें चित्रित कथा-सूत्र की नहीं पर उस माध्यम से सम्पन्न होती उन आंतरिक यात्राओं की है जिनसे गुजरते पात्र अपने को मृत्यु से जीवन, नकार से सकार, आत्मकेंद्रिकता से एक सोद्देश्य जीवन-दृष्टि तक पहुंचने के लिए तैयार करते हैं।? पृ-152

उक्त कृति में ऐसे लेख भी संकलित हैं जिनमें आधुनिक जीवन-पद्धति में भारतीय नारी की बदलती हुई भूमिका के आधार पर वसुधा की निर्माण-भूमि का यथोचित परीक्षण किया गया है। जैसे राजेंद्र मिश्र का 'औरत की कहानी 'तत्सम' से तद्भव तक, गोपाल राय का 'प्रगतिशील चेतना का उपन्यास : तत्सम', सुरेश उनियाल का 'अकेली नारी की सामाजिक स्वीकृति का सवाल', डॉ डी.एन. प्रसाद का 'वसुधा का निर्णय', सरोज शुक्ल का 'नारी जीवन का नया आयाम : तत्सम' आदि। डॉ माधुरी छेड़ा के अनुसार, 'हालांकि वसुधा की मानसिकता में अंतर तभी से शुरू हो चुका था जब वह विवेक से मिली थी। विवेक के साथ वह इस मुद्दे को लेकर बहस भी करती है। पर क्या यह बहस सचमुच विवेक के साथ की गयी थी ? या अपने-आपसे बहस की गयी थी? विवेक के बहाने मानो वसुधा अपने-आपसे बहस कर रही है। पृ-145

कई विचारकों ने 'तत्सम' को अंतर्मुखी उपन्यास करार दिया है। राजी सेठ ने मनोविज्ञान का आसरा लिया है, विचारकों ने भी खुले दिल से इसे स्वीकार किया है। सरोज शुक्ल के विचारानुसार, 'तत्सम एक सामाजिक उपन्यास तो है ही, परंतु उससे भी परे वह एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। राजी सेठ ने इंसानी मनोभावों का बड़ा ही सूक्ष्म व सटीक विश्लेषण व विवेचन किया है। तत्सम में भारतीय दर्शन के मूल्य जगह-जगह बिखरे हैं। पृ- 197 । पुस्तक में ऐसे आलेख भी शामिल हैं जिनमें वसुधा, विवेक व आनंद के माध्यम से राजी सेठ द्वारा विश्लेषित स्त्री-पुरूष के संबंध की सटीक परख की गई है। डॉ प्रभा सक्सेना के शब्दों में, 'उपन्यास में स्वतंत्रता व मुक्ति के प्रश्न को भी उठाया गया है। बहुत बारीकी से संकेत किया गया है कि जिस समाज में पुरूष सही अर्थ में मुक्त व स्वतंत्र है, उस समाज में नारी भी स्वतः स्वतंत्रता व मुक्ति के एहसास को प्राप्त कर लेती है। डॉ ललित चंद्र, विवेक, श्रीमान इंटलेक्चुअल के समीप आखिर वसुधा क्यों नहीं मुक्ति की सांस ले पाती है' पृ- 156 'तत्सम' के कलात्मक सौंदर्य पर लिखे गए कई लेखों को भी देखा जा सकता है जिनमें उपन्यास के भाषा सौंदर्य से लेकर उसके शिल्प पर गहन विवेचना हुई है। राजी सेठ ने निश्चित तौर पर पाठकों को नवीन शिल्प सौंदर्य का आस्वादन कराया है तभी तो प्रमोद कुमार चौधरी का लेख 'राजी सेठ के 'तत्सम' उपन्यास की भाशा एवं शिल्प विधान? तथा डॉ प्रभा सक्सेना का 'कलात्मक उपन्यास : तत्सम' में इस कलात्मकता को परखा गया है।

'निकश पर तत्सम'
संपादक- डॉ लक्ष्मी पांडेय
अनुज्ञा प्रकाशन, दिल्ली, 2017

पुस्तक की एक और विशेषता यह है कि इसमें रमेशचंद्र शाह द्वारा लिखित 'Not much to rare about Indian literature' व चंद्रा निशा सिंह का 'Tat Sam' नामक दो लेख अंग्रेजी में छापे गए हैं। संपादक चाहती तो इनका हिंदी अनुवाद भी छपवा सकती थीं पर उनका उद्दे य भाषिक वैविध्य व सौंदर्य से पाठकों को रू-ब-रू करना है। हरि भटनागर जी ने पाठकों के मंच से 'तत्सम' की विवेचना की है। उन्होंने सागर, नागौद, जावरा, शाजापुर, सिरोहा, बुरहानपुर, नीमच आदि क्षेत्रों से तत्सम के श्वेत- श्याम पक्षों पर पाठकों की राय को उद्घृत किया है। यह निश्चित रूप से एक स्वागत योग्य अभिनव प्रयास है। राजी सेठ के व्यक्तित्व, लेखन-जगत व उनकी कलम की धार को समझने के लिए उक्त पुस्तक के खंड 'क' में संकलित आत्मकथ्य के अंतर्गत उनके बयान व लेख यथेष्ट सहायक हैं। यह आत्मकथ्य उनकी एक कविता 'दुख उनको भी थे' से आरंभ होता है। मेरे साथ एक दिन फोन पर बातें करतीं हुई राजी जी ने यह तथ्य शेयर किया था कि कविता लिखना उन्हें बहुत प्रिय है परंतु गद्य लेखन का इतना सारा काम फैला हुआ है कि उन्हें समेटते-समेटते कविताओं का संकलन प्रकाशित करने की योजना वर्षों से पिछड़ रही है। उक्त पुस्तक में उनकी और भी कुछ कविताएं पाठकों के हाथ लगी हैं यथा 'पूछो तो सही', 'देख लेना तुम-1', व 'देख लेना तुम-2' आदि। लेखन उनके व्यक्तित्व को विकास व सार्थकता प्रदान करने का जरिया बना। वे अपने लेखों में इसी जरिए की पूर्णता पर विचार व्यक्त करती हैं। पुस्तक के तृतीय खंड में 'तत्सम' के विभिन्न पहलुओं को चर्चा का विषय बनाते हुए विद्वानों द्वारा राजी जी से पूछे गए प्रश्नों का सिलसिला चलाया गया। इन प्रश्नों के माध्यम से 'तत्सम' को परत-दर-परत खंगाला गया है। साथ लेखन के प्रति उनकी जिजीविषा को भी पाठकों ने आत्मसात किया है। सारसंक्षेप यह है कि 'निकष पर तत्सम' में निःसंदेह 'तत्सम' के प्रति बहस तलब जिज्ञासा की तुष्टि की गई है। यह कृति 'तत्सम' के किसी भी पक्ष को नजरंदाज करने की त्रुटि से मुक्त है। सत्य को सामने लाना ही लेखक व लेखन के साहस का परिचायक है। लक्ष्मी पांडेय व उनकी इस पुस्तक में संकलित लेखों के कलमकारों ने इस कृति के साथ पूरा न्याय किया है। यह पुस्तक आगामी दिनों में किसी पुस्तक पर विविध क्षेत्रों में परीक्षण करते हुए विचारकों के लेखों को संकलित करने की प्रेरणा देती है। किसी रचना पर इस प्रकार मुकम्मल चर्चा निश्चित तौर पर स्वागतयोग्य प्रयास है।

2-ए, उत्तरपल्ली, सोदपुर, कोलकाता-700110
मो-09433675671
e-mail : reshmi1975@yahoo.com

हाइकु संग्रह बूँद की गूँज लोकार्पित

नागपुर। गत दिनों कवयित्री कमलेश चौरसिया के हायकू संग्रह 'बूँद की गूँज' का लोकार्पण 'भारतीय साहित्य' के संपादक आशीष कन्धवे (दिल्ली) के आतिथ्य एवं प्राध्यापक मिथिलेश अवस्थी की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। श्रीमती इंदिरा किसलय ने लोकर्पित कृति समीक्षा प्रस्तुत की। इस अवसर पर योगेन्द्र अग्रवाल, राहुल शर्मा, ज्योति द्विवेदी, सुनीता गुप्ता, मधुवासु, वंदना सहाय, राकेश चौरसिया आदि कई साहित्यप्रेमी उपस्थित थे। अतिथियों के प्रति आभार माना उषा अग्रवाल ने।

रजत जयंती वर्ष 9 से 11 मार्च तक उत्सव महाकालेश्वर

भोपाल। मंदिरों में निहित सांस्कृतिक चेतना, आध्यात्मिक मनीषा और धार्मिक आस्था की महिमा को मंडित करने तथा तीर्थ भूमियों, देवस्थलों में सगीत कला की सात्विक और शालीन परंपरा को अक्षुण्य बनाये रखने की दिशा में भोपाल की अग्रणी साहित्य, संगीत और कलाओं की मानक संस्था मधुवन ने सन 1993 में भारत की ऐतिहासिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक सिद्ध भूमि उज्जयिनी में उत्सव महाकालेश्वर संगीत समारोह का शुभारंभ सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् के अधिष्ठा राजाधिराज मृत्युंजय भूतभावन महाकालेश्वर के पावन दिव्य मंदिर प्रांगण में अपनी तथा समूचे कला जगत की ओर से उनके पावन श्री चरणों में आस्था की भस्म और श्रद्धा के बिल्व-पत्र अर्पित करने की भावना से किया, जिसमें महाकाल मंदिर समिति का उल्लेखनीय योगदान रहा। अनवरत 16 वर्षों तक यह परंपरा निर्वाध रूप से श्री महाकालेश्वर का आलोकिक रूप से अभिषेक करती रही, शासन-प्रशासन के असहयोग के कारण यह लोकजीवी आयोजन उज्जैन में न होकर अन्य स्थानों पर किया जाता रहा, क्योंकि इस लोकधर्मी उत्सव में लोक श्रद्धा लोक आस्था और लोक चेतना का संसार रचा बसा था, यह सच है सत्ता जीवी आयोजन की आयु, सत्ता की आयु के साथ चलती है और लोकजीवी आयोजन लोक आयु प्राप्त करते हैं लोक कभी न तो मरता है न ही नष्ट होता है। इसलिये मधुवन का उत्सव महाकालेश्वर संगीत समारोह भी लोक आयु प्राप्त कर 27वें वर्ष में प्रवेश कर अपना रजत जयंती वर्ष महाकाल की पावन नगरी में 'संगीत की पंचकोषी यात्रा' के रूप में करके लोक आयु का पुण्य प्राप्त करने के लिये इस वर्ष रामघाट, चिंतामण गणेश, कालभैरव, गढ़कालिका, हरसिद्धि के पावन मंदिरों में 9 मार्च से 11 मार्च 2019 तक गायन, वादन और नृत्य की सभाएं आयोजित करेगा। उज्जयिनी में होने वाले इस आयोजन को सफल बनाने में अवंतिका नगरी के ख्याति प्राप्त एवं समर्पित संगीतकार, साहित्यकार, पत्रकार और बुद्धिजीवी इस उत्सव के स्तंभ होंगे। ज्ञातव्य है कि इस महत्त्वपूर्ण आयोजन में उज्जैन नगर, प्रदेश व देश के अनेक संगीतकार अपनी आस्था की भस्म और श्रद्धा के बिल्व पत्र चढ़ने उत्सव में भाग लेकर सांगीतिक कुंभ की रचना करेंगे।

प्रस्तुति : पं.सुरेश तांतेड़, निदेशक-मधुवन

कृति 'साथ नहीं देती परछाई' लोकार्पित

इंदौर। गत दिनों कवि प्रदीप नवीन के ग़ज़ल संग्रह 'साथ नहीं देती परछाई' का लोकार्पण श्री आलोक त्यागी (दिल्ली) तथा श्री सत्यनारायण सत्तन की उपस्थिति में संपन्न हुआ। कृति चर्चा डॉ.दीपा व्यास ने की। कार्यक्रम का संचालन हरेराम वाजपेयी ने किया। श्री मध्यभारत हिन्दी साााहित्य समिति द्वारा आयोजित इस कार्यक्रम में डॉ.शरद पगारे, बलराम अवस्थी, श्रीमती ममता त्यागी, नियति सप्रे, डॉ.कला जोशी सहित कई गणमान्य लोग उपस्थित थे। इस अवसर पर कवि श्री प्रदीप नवीन ने दो ग़ज़लों का पाठ भी किया। अंत में आभार माना 'वीणा' के संपादक श्री राकेश शर्मा ने।

प्रस्तुति : अरविन्द ओझा

उद्भ्रांत की दो काव्यकृतियों को लेकर करार

नोएडा। गत दिनों वरिष्ठ कवि रमाकांत शर्मा 'उद्भ्रांत' की दो लोकप्रिय काव्यकृतियों 'प्रज्ञावेणु' और 'रूद्रावतार' के ऑडियो-वीडियो निर्माण को लेकर करार हुआ है। यह करार दूरदर्शन में आने वाले चर्चित धारावाहिक पंखुड़िया के निर्माता-निर्देशक योगेश कुमार ने किया। इसके तहत उद्भ्रांत को नौ लाख रूपये और सात फीसदी रॉयल्टी दी जाएगी। संभवतः यह अभी तक के हिन्दी काव्य इतिहास में सबसे बड़ा करार है। ज्ञातव्य है कि 'प्रज्ञावेणु' रमाकांत शर्मा उद्भ्रांत द्वारा रचित खड़ी बोली हिन्दी के मुक्त छंद में श्रीमद भगवद्गीता का यथारूप पुनर्सृजन है। इसे 1998 में प्रकाशित किया गया और विश्व पुस्तक मेले में कवि केदारनाथ सिंह ने इसका लोकार्पण किया था। इस पर डॉ.नित्यानंद तिवारी की प्रस्तुति और नरेन्द्र कोहली के संचालन में दूरदर्शन पर आधे घंटे के प्रज्ञावेणु विमर्श नाम से दो एपिसोड भी प्रसारित हो चुके हैं। वहीं 'रूद्रावतार' मिथकीय द्वंद्व कविता है। तथा इसकी तुलना निराला जी की प्रसिद्ध कविता राम की शक्ति पूजा से की जाती रही है।

प्रस्तुति - सुनील

मराठी की लोकप्रिय कहानियाँ लोकार्पित

नई दिल्ली। विज्ञापन भवन नई दिल्ली में दामोदर खड़से द्वारा संपादित व प्रभात प्रकाशन की ओर से प्रकाशित 'मराठी की लोकप्रिय कहानियां' का विमोचन प्रधानमंत्री कार्यालय के मंत्री डॉ.जितेंद्र सिंह द्वारा संपन्न हुआ। इस अवसर पर कथाकार डॉ.ऋतु शुक्ला, डॉ.प्रो.ललितांबा, अंतरिक्ष विभाग के सचिव डॉ.शिवम, परमाणु ऊर्जा विभाग के सचिव डॉ.व्यास, अंतरिक्ष विभाग की संयुक्त निदेशक डॉ.सरला तथा परमाणु ऊर्जा विभाग के संयुक्त निदेशक डॉ.अचलेश्वर सिंह आदि विशेष रूप से उपस्थित थे।

'कथा समवेत' द्वारा कथाकारों का सम्मान

सुल्तानपुर। स्थानीय जिला पंचायत संभागार में 'कथा समवेत' पत्रिका द्वारा आयोजित 'माँ धनपती देवी स्मृति कथा साहित्य प्रतियोगिता-2018 में चयनित कथाकारों में आलम आज़ाद (प्रतापगढ़), अरविंद क्लेरेंस (प्रयागराज), निशाल गहलौत (लखनऊ), हेमलता यादव (नईदिल्ली), अनाति श्रीवास्तव (जयपुर), शिवाशंकर पाण्डेय को अंगवस्त्र, धनराशि, सम्मान पत्र एवं स्मृति चिह्न प्रदान करके सम्मानित किया गया। समारोह का आरंभ माँ सरस्वती और माँ धनपती देवी की प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्ज्वलन एवं माल्यार्पण के साथ हुआ। दो सत्रों के इस आयोजन में प्रथम सत्र की अध्यक्षता डॉ.सूर्यदीप यादव (नाडियाड) ने किया। इस कार्यक्रम के आयोजक तथा समवेत के सम्पादक डॉ.शोभानाथ शुक्ल ने समारोह में आये अतिथियों एवं कहानीकारों का स्वागत करतमे हुए कहा कि पुरस्कृत कहानियाँ आज के समय में सार्थक हस्तक्षेप की कहानियाँ हैं। सत्र का संचालन अवनीश त्रिपाठी ने किया। कार्यक्रम के दूसरे सत्र में 'सरकारी उपेक्षा और हिन्दी का बढ़ता बाजार' विषय पर एक सार्थक बहस हुई। जिसमें सर्वश्री विषय प्रवर्तन करते हुए डॉ.शोभानाथ शुक्ल, डॉ.ओंकारनाथ द्विवेदी, शैलेन्द्र श्रीवास्तव, वीरेंद्र त्रिपाठी, हनुमान प्रसाद मिश्र, डॉ.करुणेश भट्ट ने भाग लिया। बाद में तीन पुस्तकों का लोकार्पण तथा एक काव्य संध्या भी आयोजित हुई।

गुफ्तगू का कैफी आजमी जन्मशताब्दी समारोह

प्रयागराज। गत दिनों 'गुफ्तगू' की ओर से हिन्दुस्तानी एकेडेमी में श्री बुद्धिसेन शर्मा प्रो.एहसान हसन, पत्रकार मुनेश्वर मिश्र के आतिथ्य में तथा श्री इकबाल दानिश की अध्यक्षता में वरिष्ठ शायर कैफ़ी आजमी को उनकी शताब्दी के अवसर पर आदर के साथ याद किया गया। इस अवसर पर श्री इम्तियाज अहमद ग़ाज़ी की पुस्तक एहसास-ए-ग़ज़ल का विमोचन भी हुआ तथा संस्था द्वारा देशभर के बारह रचनाकारों को कैफी आज़मी सम्मान प्रदान किया गया। बाद में उपस्थित शायरों और अदीबों ने अपने कलामों से आयोजित मुशायरे को यादगार बनाया।

प्रस्तुति : रामलखन चौरसिया

वसंत राशिनकर स्मृति सम्मान समारोह संपन्न

इंदौर। आपले वाचनालय के संस्थापक संस्कृति पुरुष वसंत राशिनकर की स्मृति में प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले अ.भा. सम्मान समारोह का गरिमापूर्ण आयोजन आपले वाचनालय सभागृह में किया गया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे विद्वान डॉ.विठ्ठल माधव पागे एवं अतिथिद्वय प्रो.सरोज कुमार व अश्विन खरे ने अपने उद्बोधन में कहा कि कवि, मूर्तिकार और समाजसेवी वसंत राशिनकर द्वारा आपले वाचनालय के माध्यम से समाज में रचनात्मकता के लिए किया गया काम अतुलनीय है। इस सम्मान समारोह में ठाणे के युवा कवि गीतेश गजानन शिंदे को समारोह के सर्वोच्च सम्मान कविवर्य वसंत राशिनकर स्मृति.अ.भा.सम्मान से सम्मानित किया गया। उल्लेखनीय कृतियों को दिए जाने वाले वसंत काव्य साधना अ.भा.सम्मान से औरंगाबाद के गुलाबराव पाथरकर, बुरहानपुर की अनुराधा मुजुमदार, गोवा की मंदा धनराग सुगिरे, मुम्बई के रमेश सावंत और इन्दौर की माधवी करमळकर को अतिथियों द्वारा सम्मानित किया गया। इस अवसर पर वरिष्ठ कवियत्री अरुणा खरगोणकर की अध्यक्षता में एक कवि सम्मेलन भी हुआ जिसमें उपस्थित कवियों ने प्रभावी कविता पाठ किया। कार्यक्रम का संचालन आभानिवसरकर और श्रीति राशिनकर ने किया।

प्रस्तुति : संदीप राशिनकर

सदाशिव कौतुक को 'अक्षर आदित्य' सम्मान

इंदौर। गत दिनों मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा भोपाल में 25वां अक्षर आदित्य सम्मान 2018 ख्यात रचनाकार श्री सदाशिव कौतुक (इन्दौर) को सप्रे संग्रहालय के संस्थापक पद्मश्री विजयदत्त श्रीधर के मुख्य आतिथ्य तथा समावर्तन के सम्पादक मण्डल के अध्यक्ष प्रो.रमेश दवे के सारस्वत आतिथ्य में प्रदान किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री बटुक चतुर्वेदी ने की। स्वागत उद्बोधन संघ के अध्यक्ष डॉ.रामवल्लभ आचार्य ने दिया तथा संचालन श्री युगेश शर्मा ने किया। इस अवसर पर इन्दौर के डॉ.शरद पगारे, प्रतापसिंह सोढ़ी, प्रदीप नवीन सहित इन्दौर भोपाल और अन्य स्थानों के कई सृजनधर्मी उपस्थित थे।

प्रस्तुति : प्रभु त्रिवेदी, इन्दौर

डॉ.स्नेह ठाकुर को राष्ट्रभाषा गौरव सम्मान

नई दिल्ली। गत दिनों संसद के केन्द्रीय कक्ष में आयोजित संसदीय हिन्दी परिषद के 'राष्ट्रभाषा उत्सव' में कवयित्री लेखिका एवं संपादक-प्रकाशक 'वसुधा' डॉ.स्नेह ठाकुर (कैनेडा) का राष्ट्रभाषा गौरव सम्मान से सम्मानित किया। समारोह की अध्यक्षता पद्मभूषण डॉ.सुभाष कश्यप (पूर्व महासचिव लोकसभा) द्वारा की गई तथा प्रमुख आतिथ्य पूर्व केन्द्रीय मंत्री एवं राज्यसभा सांसद डॉ.सत्यनारायण जटिया का था। इस अवसर पर कई गणमान्य लोगों की उपस्थिति थी।

श्रीकृष्ण 'सरल' शताब्दी समापन समारोह संपन्न

उज्जैन। गत दिनों शा.शिक्षा महाविद्यालय एवं सरल काव्यांजलि साहित्यिक संस्था के संयुक्त तत्वावधान में श्रीकृष्ण 'सरल' शताब्दी समापन समारोह धूमधाम से मनाया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री सतीश राठी (इन्दौर) ने की। मुख्य अतिथि के रूप में प्राचार्य डॉ.अरुण प्रकाश पाण्डेय थे तथा विशेष अतिथि डॉ.पुष्पा चौरसिया और पत्रकार अनिलसिंह चंदेल थे। इस अवसर पर नगर के वरिष्ठ जिमनास्टिक कोच श्री एम.जी.सुपेकर का शाल-श्रीफल एवं अभिनंदन पत्र देकर सम्मान किया गया। संस्था के संजय जौहरी ने श्री सुपेकर के खेल जीवन पर प्रकाश डाला। कार्यक्रम के प्रारंभ में संस्था अध्यक्ष श्री नितिन पोळ ने स्वागत भाषण दिया। इस अवसर पर सरलजी की पुत्री अनिता शर्मा, शशिमोहन श्रीवास्तव, प्रकाश चित्तौड़ा, महेन्द्र ज्ञानी, रामप्रकाश गुप्ता, इसरार मो.खान, अशोक शर्मा, राकेश कटारे आदि उपस्थित थे। कार्यक्रम में अतिथियों को संस्था द्वारा प्रतीक चिह्न देकर सम्मानित किया गया। संचालन परमानंद शर्मा 'अमन' ने किया। आभार डॉ.संदीप नाडकर्णी ने माना।

प्रस्तुति : राजेन्द्र देवधरे 'दर्पण'

भूल सुधार

समावर्तन के जनवरी 2019 अंक में त्रुटिवश पृष्ठ 8 पर स्व.शैषेन्द्र शर्मा का प्रयाण 30 मई 2007 के स्थान पर 30 मई 2008 एवं पृष्ठ 60 पर 'गांधी की वाग्मिता' आलेख में गांधीजी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 के स्थान पर 22 अक्टूबर 1869 हो गया है। पाठकों से अनुरोध है कि कृपया तदनुसार पढ़ने कर कष्ट करें एवं उन्हें हुई असुविधा के लिए क्षमा करें। - संपादक

अनंतिम

हिन्दी कहानियों के नये आयामों पर सार्थक चर्चा करने से पहिले जरूरी है कि उसके इतिहास पर एक नजर डाली जाए जो बहुत पुराना नहीं हैं, यही मुश्किल से सौ-सवा सौ साल का। बहुत प्रामाणिक काल-गणना के मान से उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक अथवा एक-दो दशक पहिले से। इस प्रसंग को ज्यादा दूर तक नहीं खींचा जा सकता है। उसके बाद के समय या बेहतर तौर पर कहा जाये तो बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक बाद ही कहानी के क्राफ्ट को रचनात्मक और कलात्मक रूप में बनते देखा जाता है। उस दौरान हिन्दी कहानी को पालित-पोषित करने में संस्कृत और फारसी के साहित्य के अलावा अन्य समृद्ध भारतीय भाषाओं यथा बांग्ला, मराठी तथा लोक-कथाओं का श्रेय रहा जिसे पश्चिम से ग्रहण की गई साहित्यिक-वृत्ति का भरपूर सहारा मिला लेकिन उसने अपनी जमीन नहीं खोई, हालांकि भाषा के प्रयोगों और शिल्प की विविध शैलियों को आत्मसात् जरूर किया। किन्तु महत्वपूर्ण यह कि उस दौर की कहानी का जबर्दस्त गुण विरासत में मिली किस्सागोई रहा जिसे आज भी खारिज या खत्म नहीं किया जा सका है।

हिन्दी कहानी की यात्रा का दूसरा समय उसे कहा जाना चाहिए जब उसने मजबूती से चलना तथा अपने समय और समाज को गहरी अंतर्दृष्टि से देखना शुरू किया। देश की सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक- सांस्कृतिक स्थितियों, देश में हो रही उथल-पुथल, विभिन्न रूढ़ियों और रिवाजों को लेकर सुधारवादी आंदोलन, स्वतंत्रता की चेतना और अनेक विमर्शों की चर्चा ने कहानी को क्रमशः समाजोन्मुख बनाया। इस दौर में कहानी ने अपने आधारों को परखा और अपनी दृष्टि विकसित की। लेकिन कहानी अपनी कहानी कहती रही पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया कि क्यों और कैसे कही जा रही है ! साहित्य की हर विधा को अपनी आलोचना से सामना करना जरूरी होता है लेकिन कहानी की आलोचना लगभग शून्य रही क्योंकि इसके पहिले मूर्धन्य आलोचक गण कविता पर ही सौ जान से फिदा थे। शुरूआती दौर में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छोटी कहानियों पर चर्चा की, लेकिन बहुत कम, उसमें भी कवियों के योगदान को सराहा, हालांकि कहानी के ?एटीट्यूड' की प्रशंसा की लेकिन खास तवज्जो नहीं दी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के सामने साहित्य को लेकर ज्यादा महत्वपूर्ण काम थे परिणामतः तत्कालीन कहानियों के इतिहास या विकास पर उन्होंने भी लगभग गौर नहीं किया। डॉ0 रामविलास शर्मा ने ?प्रेमचंद और उनका युग' जरूर लिखी। कथा विवेचन और उस पर विचार करती उनकी दूसरी पुस्तक भी है, लेकिन बहुत गंभीरता से, एकाग्र होकर कहानी पर निगाह नहीं डाली। उनका महत्व अन्य विधाओं में भरपूर रहा। निश्चय ही, उस समय कविता के आगे कहानी पानी भर रही थी, हालांकि विराट रूप से मुंशी प्रेमचंद, जैनेन्द्र कुमार, सुदर्शन, कौशिक आदि सामने आ चुके थे। हिन्दी भाषा और उसके साहित्य को प्रेमचंद जी का ऐतिहासिक अवदान कभी नहीं भूलना चाहिए जिन्होंने भाषा और कथानक की सम्प्रेष्णीयता के बल पर तत्कालीन समय को अपनी कहानियों और उपन्यासों में उतारकर देश में लोकप्रिय तथा ग्राह्य बनाया। आज भी हिन्दी साहित्य में आम जन कहानी के नाम पर प्रेमचंद को जानता है। यह एक ऐसा अजूबा तथ्य है जो एक साथ ऐतिहासिक है और सामयिक भी, परिणामतः एक ओर से सौभाग्य है और दूसरी ओर से दुर्भाग्य। सौभाग्य तो जग-जाहिर है, दुर्भाग्य इसलिए कि इस आंधी में प्रेमचंद की परम्परा के महान लेखकों की कृतियों को उस तरह की लोकप्रियता और सनद नहीं मिली जैसी कि मिलना चाहिए थी क्योंकि वे भी मामूली नहीं बल्कि महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

प्रेमचंद की लोकप्रियता और समाज में प्रतिष्ठा के कारणों की गहरी पड़ताल लगातार की जाना चाहिए ताकि सम-काल के लेखकों को खोये हुए सूत्र मिल सके, अपने रास्ते का उजाला मिल सके और जनता की नब्ज पर हाथ रखना आ सके जो प्रेमचंद की विशेषता है।

इस काल-यात्रा के अनुशीलन से यह बात तो साफ होती है कि सन् 1950 के बाद एक सशक्त विधा के रूप में कहानी/उपन्यास के भाग खुलने लगे थे लेकिन तब तक उसे ऐसा कोई सक्षम आलोचक नहीं मिला जैसे कि कविता को लाइन लगाकर मिले। फिर भी यदि कथा-साहित्य ना केवल जड़ों से जीवित रहा बल्कि पुष्पित-पल्लवित होता रहा तो इसके लिए अपनी परम्परा और लोक में गहरी रूचि रखने वाली जनता को धन्यवाद देना चाहिए जिसने प्रेमपूर्वक पढ़ा, आदर से सिर-माथे रखा और पड़ोसी तक पहुँचाया।

इस उपेक्षा और तिरस्कार से कहानी को नुक्सान तो काफी हुए पर इस अंधकार में एक वरदान मिला, जैसे घोर घटाओं से आच्छादित गगन में बिजली की एक चमक। हिन्दी कहानी को तथाकथित गॉड-फादरों की अनुपस्थिति में अपने दम पर आगे बढ़ना पड़ा और कविता के लिए मूल्यों और प्रतिमानों की तरह कहानी के आलोचकीय मूल्यों का निर्माण नहीं होने से उसने अपना रास्ता खुद बनाया। इस तथ्य को सन् 1950 के बाद के वर्षों में यकीनी तौर पर देखा जा सकता है जब कहानीकारों ने लेखन के साथ आलोचना का भी धर्म निबाहा। इस अनोखे सामंजस्य से उस दौरान किए गए रचनात्मक प्रयोगों और छेड़ी गई बहसों ने कहानी को काटा-छांटा भी और सजाया-संवारा भी। यह प्रयोग-धर्मिता आज भी जारी है जो कहानी के हक में सुखकर है। इस महत्वपूर्ण काम को अंजाम देने में कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, श्रीकांत वर्मा आदि जैसे यशस्वी लेखकों के अलावा डॉ0 इंद्रनाथ मदान, डॉ0 धनंजय वर्मा, डॉ0 देवी शंकर अवस्थी आदि जैसे प्रखर आलोचकों के योगदान को सराहा जाना चाहिए जिन्होंने कथा-साहित्य को नई दृष्टि दी।

आगे देखें तो कहानी धीरे धीरे पत्र-पत्रिकाओं में गौरतलब जगह बताने लगी क्योंकि भारतीय मनुष्य स्वभाव से किस्सा- कहानी का शौकीन है और किस्सागोई की परम्परा कवित्त से पुरानी भले ही ना हो लेकिन उसके आसपास जरूर है। कविता की ताकत के पीछे दो मजबूत बातें रही हैं, एक तो दूसरी छंदबद्धता और तत्संबंधी भाषा-कौशल, दूसरा उसकी गेयता जो संगीत से सुसंगत बैठती है। अब यह अच्छा खासा संदर्भ है, जब आज की कविता पर तरस खाया जा सकता है जिसके पास न छंदबद्धता और न ही गेयता। इस अभाव के कारण आम जन के बीच उसकी साख नहीं रही लेकिन मैं इस पर ज्यादा विचार नहीं करूँगा क्योंकि मेरे अधिकांश मित्र कवि हैं और मुझे कविता से ज्यादा मित्रता प्यारी है, क्योंकि मैं उनके स्वभाव के आयामों और उनकी मित्रता के परिणामों से मैं डरता भी हूँ।

इसलिए इस बात को यहीं विसर्जित करें और कथा की ओर फिर लौटें जो आजादी के बाद देश के नये वातावरण में हो रहे सामाजिक-राजनैतिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप हो रहे वैचारिक द्वन्द्वों और आंदोलनों से डटकर प्रभावित हुई। इस तरह कथा का शास्त्र संपन्न हुआ, यह भी कि कहीं कहीं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं को लेकर गुट बनाकर भी आंदोलन चलाये गये। मेरे विचार से, साहित्य में बाजारवाद ने इसी तरह कदम रखा। नई कहानी/सचेतन कहानी/साठोत्तरी कहानी/अकहानी/जनवादी कहानी- कितने सारे आंदोलन चले और एक बड़ी संख्या में हिन्दी साहित्य को महत्वपूर्ण लेखकों की सोहबत मिली। फिर यह समय भी आया जिसे आज ''युवा कहानी'' का काल कहा जा रहा है जब काशीनाथ सिंह जी के शब्दों में ''नई सदी में कुछ होते होते एक युवा पीढ़ी चुपके चुपके कहानी के आंगन में दाखिल हो गई।'' यह आगमन भी आज समय की कसौटी पर है इसलिए अभी कोई टिप्पणी करना न्यायोचित नहीं होगा, फिलहाल बेहतर होगा कि गुजरे हुए वक्त के ऐतिहासिक मुकामों का जायजा लेते हुए आज के समय में लिखी जा रही कहानी के वर्तमान परिदृश्य तथा भविष्य की संभावनाओं पर निगाह डाली जाए।

फिलहाल इतना ही। इस नाजुक मुद्दं पर चर्चा करने के लिए हम अगले अंक में मिलेंगे, तब तक के लिए विदा।

मोबाइलः 94250-14166

Follow us on /RNTUniv www.rntu.ac.in

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY™

MADHYA PRADESH, BHOPAL *(Formerly known as AISECT University)*

AN AISECT GROUP UNIVERSITY

Approved by : AICTE, NCTE, BCI, INC, M.P. PARAMEDICAL COUNCIL | Recognized by : UGC | Member of : AIU, ACU

Where aspirations become achievements!

nirf
INDIA RANKINGS 2017
(Ministry of Human Resources and Development, Govt. of India)
Among all Central, State, Private and Deemed universities

Ranked amongst Top 20 Engineering Universities in India — competition success review

Ranked amongst India's Top 30 Private Universities 2018 — INDIA TODAY

Awarded ★★★★ Rating for Best University of India 2018 — CAREERCONNECT

BEST ENGG. COLLEGE WITH AAA RANKING 2018 — करियर्स 360

Recognised as one of the Leading Private Universities of India — OUTLOOK

Ranked Number 2 in Madhya Pradesh 2018 — competition success review

COURSES OFFERED 2018-19

Engineering & Technology | Management | Arts | Commerce Computer Science & IT | Paramedical | YogaScience | Agriculture | Mass Communication | Law | Nursing | Education | Ph.D. & M.Phil. in selected subjects through separate entrance tests

AWARDS AND ACCOLADES

- Most Innovative University of Central India" by News 18
- RNTU awarded Madhya Pradesh Gaurav Samman 2018
- RNTU Awarded as India's first Skill based University by Career Connect Magazine 2018
- ASSOCHAM INDIA Excellence in Education, Training & Development Award 2018
- World Education Summit 2017 & 2017 (Dubai)

A UNIT OF AISECT™ GROUP OF UNIVERSITIES
India's Leading Higher Education Group

CHHATTISGARH | MADHYA PRADESH | JHARKHAND | BIHAR

Contact us :
9893350135, 8085384458, 9826812783

UNIVERSITY CAMPUS : Bhopal-Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, MP, India, Ph.: 0755-6766100, 6766113
City Office : 3rd Floor, Sarnath Complex, Board Office Square, Shivaji Nagar, Bhopal - 462016,
Ph.: 0755-4289606, 8109347769, Email : info@rntu.ac.in